RNI. No. : DELHIN/2004/12377

प्रवासी संसार

देश-देशान्तर में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सेतु

वर्ष : 10, अंक : 2 जनवरी-मार्च, 2014

सम्पादक
राकेश पाण्डेय

अतिथि संपादक
तेजेन्द्र शर्मा

सम्पादकीय कार्यालय
5/23, गीता कॉलोनी
दिल्ली-110031 (भारत)

Editor
Rakesh Pandey
5/23, Geeta Colony, Delhi-110031 (India)

वेबसाइट : www.pravasisansar.com
ई-मेल : pravasisansar@gmail.com
दूरभाष : 91+11-9810180765

मूल्य
एक प्रति : रु. 100/-

पश्चिमी देशों के हिन्दी साहित्य पर विशेष

प्रवासी संसार में प्रकाशित लेखों व व्यक्त विचार तथा दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखकों के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। चैक या ड्राफ्ट द्वारा भुगतान प्रवासी संसार, दिल्ली के नाम देय है। पत्रिका से सम्बन्धित सभी विवाद दिल्ली स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।
प्रकाशक, मुद्रक तथा सत्वाधिकारी सुषमा पाण्डेय द्वारा 5/23, गीता कॉलोनी, दिल्ली-110 031 से प्रकाशित एवं जी॰ आर॰ प्रिंट्र्स, 9/3399, गांधी नगर, दिल्ली-31 द्वारा मुद्रित।

अनुक्रम

सम्पादकीय

प्रवासी भारतीय दिवस एवं भारतीय भाषाएं — *राकेश पाण्डेय* — 4

अतिथि सम्पादक की कलम से

कलम प्रवासी हो गई... — *तेजेन्द्र शर्मा* — 5

लेख

हम हैं भारतवंशी... — *नरेश भारतीय* — 6
देश की स्मृतियां संजोए प्रवासी भारतीय कहानियां — *हरियश राय* — 8
प्रवासी साहित्य और चुनौतियाँ — *मधु अरोड़ा* — 12
लंदन से हिंदी प्रसारण का माहात्म्य — *कैलाश बुधवार* — 16
यू.के. में हिंदी–ब्रिटेन में हिंदी रेडियो के पहले महानायक रवि शर्मा — *तेजेन्द्र शर्मा* — 18
विभिन्न रस और रंग बिखेरती अमेरिका की कविता — *सुधा ओम ढींगरा* — 20
ब्रिटेन में हिंदी कविता — *डॉ. वंदना मुकेश* — 23
यू.के. में अमरदीप के शानदार तीस साल — *डॉ. जगदीश मित्र कौशल* — 26
समकालीन भारतीय साहित्य में प्रवासी हिंदी साहित्य — *अर्चना पैन्यूली* — 28
प्रवासी हिंदी कहानियों में वृद्धावस्था — *विजय शर्मा* — 33

साक्षात्कार

अस्वीकृति का अर्थ यह नहीं होता कि रचना स्तरीय नहीं है–पूर्णिमा वर्मन — *मधु अरोड़ा* — 39

व्यंग्य

आज का आलोचक — *अमरेन्द्र कुमार* — 41

उपन्यास अंश

गांवों का शहर–लैस्टर — *नीना पॉल* — 44

कहानी

ढीठ मुस्कुराहटें — *ज़किया ज़ुबैरी* — 53
दरारें — *अरुण सभरवाल* — 57
कतार से कटा घर — *अनिल प्रभा कुमार* — 61

लघु कथा

पछतावा — *प्राण शर्मा* — 7
खाली आँखें — *शैलजा सक्सेना* — 15

चादर — *रेखा मैत्र* 17
संवेदना के लिये समय — *पूर्णिमा वर्मन* 32
चुम्बन — *प्राण शर्मा* 38
तब से गुलाब लाल होने लगा — *उषा वर्मा* 52

कविता

अमरेन्द्र कुमार 67
अनिल प्रभा कुमार 71
अनिता कपूर 73
दिव्या माथुर 75
जय वर्मा 76
डॉ. कृष्ण कुमार 77
मीना चोपड़ा 80
मोहन राणा 81
रेखा मैत्र 82
शैलजा सक्सेना 83
शन्नो अग्रवाल 85
शिखा वार्ष्णेय 86
उषा वर्मा 87
तेजेन्द्र शर्मा 89

ग़ज़ल

प्राण शर्मा 92
पूर्णिमा वर्मन 92
श्रद्धा जैन 93

ENGLISH STORY

Grave Profits — *तेजेन्द्र शर्मा* 95

पुस्तक चर्चा

दुनिया चलने का नाम — *पंडित सुरेश नीरव* 100

साहित्यिक गतिविधियाँ

विश्व हिंदी दिवस 2014 – विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस — *गुलशन सुखलाल* 101
उद्‌भव सांस्कृतिक सम्मान समारोह 2013 — *शिव सचदेवा* 103
भारतीय जीवन मूल्यों को अपनायें युवा–महेन्द्र चौधरी — *गोपाल अरोड़ा* 104

सम्पादकीय

प्रवासी भारतीय दिवस एवं भारतीय भाषाएं

♦ राकेश पाण्डेय

देश की राजनीति ऐसे मंथन के दौर से गुजर रही है, जिसमें सबकुछ अस्त-व्यस्त सा दिख रहा है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं पर आरोप-प्रत्यारोप जारी हैं। ऐसे में दिल्ली की राजधानी के विज्ञान भवन में 12वें प्रवासी दिवस का आयोजन होना कम महत्वपूर्ण नहीं है। जहाँ पर विदेशों से आये प्रवासी भारतीय भारत में हो रही राजनीति पर पैनी दृष्टि रखे हुए थे और अपनी खुलकर राय व्यक्त कर रहे थे। उनकी नब्ज़ भी भारतीय राजनीति की लय पर धड़क रही थी। बहुत सारे विभिन्न मतों के लोग एकत्रित थे लेकिन सबके मन की चाह यही थी कि भारत भ्रष्टाचार मुक्त हो और सोने की चिड़िया फिर से बने और उन्हें भारत आने पर तरह-तरह की कानूनी अड़चनों से निज़ात मिले और वह अपना व्यवसाय या कारोबार स्थापित कर सकें। यह प्रवासी दिवस युवा पीढ़ी पर केन्द्रित था। इस बार 18 से 26 साल के युवा/युवतियों का 'भारत को जानिये' कार्यक्रम के तहत चयन किया गया था जिनको कि 3 सप्ताह तक भारत में घुमाया गया ताकि अपनी माटी को जानें और पहचानें।

इस वर्ष भी पूर्व वर्ष की भाँति प्रवासी भारतीय सम्मान दिये गये, लेकिन मेरी दृष्टि में दक्षिण अफ्रीका में सांसद ईला गांधी जी जो कि महात्मा गांधी जी की पौत्री हैं और दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी के विचारों की अलख़ जगाये रखती हैं व गांधी डेवलपमेंट ट्रस्ट की न्यासी भी हैं, उन्हें सम्मानित कर भारत सरकार ने निश्चित ही सराहनीय कार्य किया है, मैं उन्हें भी बधाई देता हूँ।

प्रवासी भारतीय दिवस को लेकर मेरी एक पीड़ा अभी भी बनी हुई है। सरकार से अनेक बार कहने व लिखने के बावजूद भी भारतीय भाषाओं का इसमें कोई स्थान नहीं बन पाया है। तमाम देशों में प्रवासी हिन्दी साहित्य रचा जा रहा है। आज तक कभी भी उसे स्थान नहीं मिला। मुझे प्रवासी भारतीय दिवस की एक घटना याद आती है कि एक बार मॉरीशस के प्रसिद्ध हिन्दी लेखक अभिमन्यु अनत को वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया था। उन्होंने आयोजकों को सूचित कर दिया था कि मैं अपना भाषण हिन्दी में दूँगा, जिसका अंग्रेज़ी अनुवाद श्रोताओं को उपलब्ध कराना मंत्रालय का दायित्व था; परन्तु दुर्भाग्य से मंत्रालय यह कार्य नहीं कर सका तो अनत जी पर दबाव डाला जाने लगा कि वह अपना भाषण अंग्रेज़ी में दें। मुझे याद है कि अनत जी ने अपना भाषण हिन्दी में देना आरम्भ किया तो सत्र अध्यक्षता कर रहे डॉ० करण सिंह ने उन्हें रोकना आरम्भ किया और बार-बार यह कहना आरम्भ किया कि अनत जी आप बैठ जाइये, किन्तु अनत जी नहीं बैठे और हिन्दी में उन्होंने लिखित भाषण पूरा किया और कहा कि हिन्दी मेरी धमनियों की भाषा है। तभी से मैं अनत जी का और क़ायल हो गया। हिन्दी के नाम पर राजा-महाराजा, बड़े-बड़े लम्बरदार अनेक कार्यक्रमों के मुख्य अतिथि और अध्यक्ष तो बनते हैं, लेकिन अन्दर से ये सब लोग बहुत बौने होते हैं। इसी का ख़ामियाज़ा हमारी भावी पीढ़ियाँ भुगतेंगी, वे अपनी भाषा और संस्कृति को खो देंगी, वे भारतीय अथवा भारतीय मूल के तो होंगे किन्तु उनमें भारतीयता नहीं होगी। इसी संकट से लड़ने के लिए इस प्रकार के भारतीय आयोजनों में भारतीय भाषाओं का समावेश आवश्यक है। मात्र कत्थक नृत्य करा देने से सरकारी खानापूर्ति तो पूरी हो सकती है, लेकिन सार्थक परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते। अब समय आ गया है मुड़कर देखने का कि हमने क्या खोया, क्या पाया?

प्रवासी दिवस आयोजन के बाद गोपियों जैसे अनेक संगठन महत्वपूर्ण तो हुए किन्तु उनके कई टुकड़े हो गये। विश्व की राजनीति में जिस प्रकार अमेरिका और चीन का दबदबा बढ़ता जा रहा है, ऐसे में भारत के प्रवासी भारतीय भारत के महत्त्व को विश्व-पटल पर रेखांकित कर सकते हैं। इसके साथ ही भारतीय भाषाओं के साहित्य को प्रवासी भारतीय दिवस का अंग बनाना एक महत्वपूर्ण कदम होगा जिसे कि उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

यह अंक प्रवासी पश्चिमी देशों के हिन्दी रचनाकारों पर केन्द्रित है। वहाँ पर रचे जा रहे साहित्य को भाई तेजेन्द्र शर्मा के माध्यम से आगे लाने का प्रयास किया है। एक दिन तेजेन्द्र भाई का फोन आया कि क्यों न इस प्रकार के पश्चिम देशों के अंक की रूपरेखा तैयार की जाये। मुझे उनका सुझाव भा गया और अब यह अंक आप सभी सुधी पाठकों के हाथों में है।

तेजेन्द्र जी वर्तमान समय के सक्रिय प्रवासी लेखक हैं। वह बहुत सी बातें करते हैं जिनसे मैं सहमत नहीं होता; किन्तु यही उनकी जीवंतता है कि विचार मंथन करने के बाद वह सहमत भी हो जाते हैं। शायद वह वर्तमान में अकेले ऐसे प्रवासी लेखक हैं जिन्हें हिन्दी के अन्य भारतीय लेखकों के समान ही पढ़ा जाता है। कई लेख मैंने अपनी दृष्टि के अनुसार उनसे कहकर कई रचनाकारों से लिखवाये हैं जो कि पाठकों को नई जानकारी देंगे।

अन्त में, नववर्ष प्रवासी संसार के सभी चाहने वालों को मंगलमय हो!

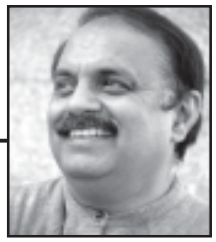

कलम प्रवासी हो गई...

♦ तेजेन्द्र शर्मा

मित्रो, हिन्दी साहित्य में प्रवासी साहित्य एक नये खाँचे के रूप में स्थापित हो चुका है। हमने कभी नहीं चाहा कि हमें इस नाम से पुकारा जाए। अपने भाषणों में, अपने लेखों में, निजी बातचीत में, गोष्ठियों में, हर जगह यह लड़ाई मैं लड़ता रहा हूं कि भारत से बाहर लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य को प्रवासी का आरक्षण न दिया जाए। मगर यह हो न सका...

किन्तु सोचने की बात यह है कि यदि हमारे लिखे साहित्य पर प्रवासी का ठप्पा लग ही गया है तो हमें अपनी बात अलग से कहने और अपने हक प्राप्त करने की भी पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। यमुना नगर में कथा यू.के. और डी.ए.वी. गर्ल्ज कॉलेज द्वारा आयोजित प्रवासी कहानी सम्मेलनों और मुंबई में कथा यू.के. एवं एस.आई.ई.एस. कॉलेज द्वारा आयोजित प्रवासी साहित्य सम्मेलन के दौरान यह प्रस्ताव पारित किया गया कि हर विश्वविद्यालय में प्रवासी हिन्दी साहित्य का एक अलग से पेपर होना चाहिये। इन सम्मेलनों में भारत के मुख्य विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों के प्रमुखों ने भाग लिया और हमें यह आश्वासन दिया कि उनके विश्वविद्यालयों में प्रवासी लेखन के कोर्स शुरू किये जाएंगे। चौधरी चरण सिंह एवं महात्मा बुद्ध विश्वविद्यालयों ने तो अपने यहाँ प्रवासी हिन्दी साहित्य पर पेपर शुरू भी कर दिये हैं।

प्रवासी संसार पत्रिका इस पक्ष को लेकर बहुत महत्वपूर्ण काम कर रही है। इस पत्रिका के संपादक श्री राकेश पाण्डेय के साथ मेरे निजी सम्बन्ध एक लम्बे अर्से से हैं। उन्हें विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य ने हमेशा आकर्षित किया है। वर्ष 2011 में भी उन्होंने मुझ पर विश्वास व्यक्त करते हुए अपनी पत्रिका का एक विशेषांक निकालने का जिम्मा दिया था जिसमें प्रवासी कथा लेखन को प्रमुखता दी गई थी।

एक दिन हम दोनों की बातचीत के दौरान यह सवाल उभरा कि हम जब भी प्रवासी हिन्दी साहित्य की बात करते हैं, तो मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद और फिजी की बात करके रह जाते हैं। भारतीय आलोचक भी अभिमन्यु अनत से आगे नहीं बढ़ पाए। अधिक से अधिक उषा प्रियंवदा का नाम ले लिया जाता है जबकि उषा जी ने अपना श्रेष्ठ लेखन भारत में रहते हुए ही किया।

मेरा मानना है कि भारत के पश्चिम में प्रवासियों की एक अलग किस्म की पौध है जो अपनी मर्जी से प्रवासी बने हैं, जिनके लिये भारत भी तीर्थस्थान नहीं है। वे विदेश में बैठ कर भी भारत की राजनीतिक, सामाजिक स्थितियों और उपलब्धियों के साथ जुड़े हुए हैं। मोदी, राहुल गांधी और केजरीवाल उनके लिये उतने ही प्रासंगिक हैं जितने कि भारतवासियों के लिये। अब अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन, यूरोप एवं खाड़ी देशों के भारतवंशियों और भारतवासियों में कुछ खास अन्तर नहीं रह गया है। इंटरनेट और ग्लोबलाइजेशन ने दूरियाँ मिटा दी हैं। इन देशों में लिखा जा रहा हिन्दी साहित्य हमारे लिये बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि यह साहित्य इन साहित्यकारों के अपनाए हुए देशों और भारत के बीच एक पुल का काम कर सकता है।

यही सोच कर इस अंक की परिकल्पना भी की गई। इसमें इन्हीं देशों के रचनाकारों की रचनाएं शामिल की गई हैं। इसमें कविता, कहानी, लघुकथा, उपन्यास अंश, लेख सभी शामिल हैं। हमने ब्रिटेन की हिन्दी पत्रकारिता को भी इस अंक में समेटने का प्रयास किया है। प्रवासी साहित्य के विद्यार्थियों के लिये कुछ ऐसे लेख भी शामिल हैं जो भारत के प्रतिष्ठित आलोचकों ने लिखे हैं। जो विद्यार्थी प्रवासी लेखन पर शोध में रुचि रखते होंगे, यह विशेषांक उनके भी काम आएगा।

इस विशेषांक में हमने एक पहल और की है कि हिन्दी से अंग्रेज़ी में अनूदित प्रवासी लेखन भी आपके लिये पेश किया है। शायद आगे यह सभी हिन्दी पत्रिकाओं के लिये जरूरी स्तम्भ बन जाए।

भारत में हिन्दी साहित्य में गुटबाजियाँ देख कर कष्ट होता है। ये गुट अपने-अपने लेखकों को प्रतिष्ठा दिलाने और उनका प्रचार करने के अलावा हिन्दी साहित्य के लिये कुछ विशेष नहीं करते। हमारी कामना है कि यह प्रवृत्ति प्रवासी लेखकों में न आए; क्योंकि बने तो हम भी उसी मिट्टी के हैं। शायद हमारे अपनाए हुए देशों का मिट्टी पानी हम में कुछ बदलाव ले आए।

मैं अपने मित्र राकेश पाण्डेय का इस मामले में विशेष तौर से धन्यवाद दूँगा कि उन्होंने इस अंक में किसी भी प्रकार की दखलअन्दाजी नहीं की। हां, एक या दो जगह सकारात्मक विचार देकर मेरा मार्गदर्शन अवश्य किया। इस वादे के साथ कि राकेश जब-जब मुझे आवाज़ देगा, मैं मौजूद रहूँगा, यह अंक आपके सामने है।

हम हैं भारतवंशी...

♦ नरेश भारतीय, लंदन

अपने देश भारत में प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में जब कभी यह टिप्पणी देखने सुनने को मिलती है कि "वे लोग तो अपने सुख के लिए देश छोड़ कर भाग गए थे तो मेरे जैसे अनेक उन भारतवंशियों के मन को चोट पहुंचती है जो बरसों से विदेश में बसे होने पर भी भारत के साथ अपना नाता पूर्ववत् अटूट बनाए हुए हैं। भले ही वे अपनी योजना से या नियति वश विदेशवासी बने होंगे पर उनके जीवन का एक बहुत बड़ा सच यही है कि मन से वे अपनी जन्मभूमि से कभी अलग हुए ही नहीं। वे दूर रह कर भी अपने जीवन का हर पल भारत को ही जीते हैं। हज़ारों ऐसे भारतीय अपने बुढ़ापे में वतन लौट कर शेष बचे श्वासों में उसी प्राणवायु को फिर से भर लेना चाहते हैं जो उसकी धरती पर जन्म लेते ही पहलेपहल उन्होंने अपने फेफड़ों में भरी थी। पुनः पुनः उसकी पवित्रामाटी की सुगंध से खिंच कर वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य भारत पहुंचते हैं। कोई क्या जानेगा कि उनसे ऐसा क्योंकर होता चला जाता है? इसका रहस्य वे लोग कैसे जानेंगे जिन्होंने कभी प्रवासी, अप्रवासी, आप्रवासी, अनिवासी और भी जाने कितने विशेषणों से अलंकृत होने और विदेशी भारतीय तक कहलाए जाने की व्यथा को नहीं सहा।

आज विश्व की एक आर्थिक महाशक्ति बनने की भारत की क्षमता की बाखूबी चर्चा के बने रहते भी लाखों भारतवासियों में विदेश जाकर जीवन को बेहतर बनाने की धुन कम नहीं हुई है। भारत में श्रेष्ठ उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद अधिकांश युवा अमरीका जाने का स्वप्न पूरा करने के लिए अवसर की तलाश में जुट जाते हैं। जो विदेश पहुंच जाते हैं वहीं रच बस जाते हैं। जो चाहते हुए भी विदेश नहीं जा पाते, निराश और व्यथित होते हैं। उन्हें लगता है कि वे अपने देश की अपेक्षा विदेश में अधिक सफल हो सकते हैं। इसके विपरीत निस्संदेह, करोड़ों ऐसे भी हैं जिन्हें भारत को छोड़ कर अन्यत्र कहीं जाने की न तो कोई सम्भावना दिखती है और न ही उन्होंने इसकी कभी कोई आवश्यकता ही समझी है। मैं ऐसे भारतीयों का अभिनंदन करता हूँ जो देश की धरती पर बने रहते और हर दिन उभरने वाली नई चुनौतियों के साथ जूझते हुए भी शान से जीते हैं। समस्याओं के हल खोजते हैं। अपने वोट बल से राजनीतिकों को सावधान, सचेत करते हुए देश में व्यापक भ्रष्टाचार, गरीबी और जाति, वर्ण, वर्ग विभेद से उत्पन्न अनेक गंभीर समस्याओं के समाधान में सही व्यवस्था बिठाने के लिए अनवरत संघर्षरत हैं।

आज के बदलते विश्व परिवेश में किसी का कहीं से भी विदेश जाकर रहना, बसना, जीना और अपने मूल देश के साथ भी सम्बन्ध की निरंतरता को बनाए रखना आम हो गया है। इसे किसी भी दृष्टि से अनैतिक या राष्ट्रहित विरोधी नहीं माना जा सकता। भारतीयों ने तो विदेशों में जाकर न सिर्फ अपने लिए ही धन कमाया है; बल्कि कई तरीकों से भारत का हित साधन भी किया है। यदि माँ अपने उन बेटों का विस्मरण नहीं करती जो उसके पास इसलिए नहीं रह पाते क्योंकि उन्हें धनार्जन के लिए परदेस जाना पड़ता है तो उसके परदेसी बेटे बेटियाँ भी हजारों मील दूर रहते हुए अपनी माँ से नाता नहीं तोड़ते। उसके हर सुख दुःख में शरीक होते हैं। कहीं भी हों अपने भाई बहनों के साथ भी पूर्ववत् सम्बन्ध बनाए रखते हैं। यह स्नेह सम्बन्ध सूत्र अटूट है, अभेद्य है, एक शाश्वत सत्य है। यही सत्य प्रवासी भारतीय समाज और उसकी मूल संस्कृति और राष्ट्र के बीच सम्बन्धों की प्रगाढ़ता को रेखांकित करता है। कोई भी देश इस अवधारणा का अपवाद नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि लाखों ब्रिटिश जो कभी ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, कनाडा, अमरीका और आस पास के यूरोपीय देशों में जा बसे थे अपने मूल देश ब्रिटेन को नहीं भूले। न ही ब्रिटेन ने आज तक उन्हें भुलाया है। उनके पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध अपने मूल देश के साथ पूर्ववत बने हुए हैं। उनके बीच जोड़क तत्व हैं उनकी संस्कृति और साहित्य जिनकी संवाहिका है उनके मूल देश ब्रिटेन की भाषा अंग्रेज़ी।

कोई भी प्रवासी भारतीय भारत से दूर बसे होने पर भी अपने मूल देश की दशा, दिशा, मान, अपमान, उन्नति, अवनति और उस भूखंड पर होने वाली छोटी बड़ी राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक हलचल से अप्रभावित नहीं रह सकता। मानसिक दृष्टि से उसने भारत को न तो त्यागा है और न ही उसका बहिष्कार किया है। स्वार्जित संसाधनों से स्वदेश के प्रति अनेक तरीकों से अपना कर्तव्यपालन करने की तत्परता दिखाई है। विदेशवास में भारतवंशियों के संघर्षकाल का एक लम्बा इतिहास है जिसके अध्ययन की आवश्यकता है। भारत में अपने शासन के दौरान अंग्रेजों ने अफ्रीकी देशों से गुलामों को अन्य देशों में ले जाकर अपने साम्राज्यी लक्ष्यों की पूर्ति का साधन बनाया था। बड़ी संख्या में भारतीयों को भी मजदूर बना कर अपने अनेक उपनिवेशों में अपनी अनेक योजनाओं को कारगर बनाने के लिए ले गए थे। ब्रिटिश गुआना, सूरीनाम, फिजी, त्रिनिदाद, मारीशस इनमें से कुछ देश हैं जहाँ आज से लगभग सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व भारतीय जा बसे थे। इन स्थितियों में भी उनके और भारत के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध निरंतर बने रहे। इन देशों में भारतवंशियों के द्वारा हिन्दी

भाषा में साहित्य सर्जन हो रहा है। इन देशों के भारत के साथ स्नेहिल कूटनीतिक सम्बन्ध हैं।

1947 में, भारत की स्वतंत्रता के बाद से ब्रिटेन, अमरीका, और खाड़ी के देशों में जाने वाले भारतीयों के जीवन ने कई मोड़ देखे हैं। साढ़े छह दशकों के कालखंड में जिन भारतीयों ने अपने निजी कारणों से अपने देश को छोड़ कर ब्रिटेन की धरती पर कदम रखे थे, उन्हें प्रारंभिक वर्षों में स्थानीय लोगों से घोर उपेक्षा और अपमान सहना पड़ा। मूलवासी अंग्रेजों की दृष्टि में आप्रवासी भारतीय विजातीय होने के कारण दीन हीन और त्याज्य थे। पूर्व साम्राज्यवादी ब्रिटेन की सरकार को दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अति शोचनीय स्थिति में पहुंची अपनी अर्थव्यवस्था को सँभालने सुधारने के लिए पूर्व उपनिवेशों के द्वार खटखटाने पड़े थे। अपने उद्योगों के उत्पादन स्तर को उबारने के लिए उसे अपने अभावग्रस्त मानव संसाधनों की आपूर्ति की आवश्यकता थी। ब्रिटेन की सड़कों पर जब विदेशी चेहरों की संख्या में निरंतर वृद्धि होती दिखाई दी तो उस अंग्रेज़ जनसामान्य का साम्राज्यकालीन गौरव आहत हुआ जो गोरे काले के बीच भेद की अपनी परम्परागत सोच से अभी मुक्त नहीं हो पाया था। उन्हें लगा कि भिन्न सभ्यता संस्कृति के विदेशी उनके देश में आकर उनकी रोटी रोज़ी छीन रहे हैं, अपने घर बसा लेते हैं और इस तरह से उनकी संतानों को उनके सुखद भविष्य से वंचित कर रहे हैं। ऐसे प्रतिकूल वातावरण में भी भारतीय डटे रहे। आत्मविश्वास के साथ अपने परिश्रम, ईमानदारी और स्थानीय समाज के साथ मधुर सम्बन्ध कायम करने में जुटे रहे। भारत के प्रति पश्चिम की सोच में आमूल चूल परिवर्तन करने के एक महत्वपूर्ण दौर के प्रारम्भ का माध्यम बन गए। इन प्रवासी भारतीयों ने भारत समर्पित सामाजिकता को विस्तार दिया। अपनी मूल सांकृतिक पहचान बनाए रखी, हिन्दी पत्रकारिता एवं साहित्य रचना के लिए भी तत्परता दिखाई।

मैंने लगभग पचास वर्ष पूर्व 1964 में लन्दन में किराए के एक छोटे से अपने कमरे की चहारदीवारी में मात्र एक दीप जला कर पहली दीवाली मनाई थी। उसी दीप के आलोक में पहले से वहाँ बसे भारतीयों को ढूँढने और भारत के साथ हम सबके जुड़े रहने के लिए अपना संस्कृति ध्वज थामा था। उस एक दीप से अनेक दीप जलाए जाकर दीपावली मनाए जाने की परम्परा को पनपते जाना मैंने देखा है। इस प्रकार जलते जाने वाले दीपों की संख्या में अनवरत वृद्धि होती चली गई। माना जाता है कि कलम में तलवार से अधिक ताकत होती है। शुरू के संघर्ष काल में तब के प्रवासी भारतीयों की कलमें भी उठीं थीं। उनके लेखन में अपने वतन की यादें थीं और परदेसी भारतीय एकता का आह्ववान भी था। जब यह सुनने में आता है कि इन लेखनियों से अपने स्वदेशप्रेम को अभिव्यक्ति देने वाले प्रवासी जीवन सत्यों पर आधरित, साहित्य को भारत के कुछ हिन्दी लेखकों के द्वारा 'नोस्टालजिक' कह कर ठुकरा देना उनके पूर्वाग्रही और संकुचित दृष्टिकोण का परिचय देता है। किसी ज़माने में विदेश में सुविधाओं के अभाव के बावजूद हिन्दी में पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन प्रयोगों के प्रारम्भ से लेकर श्रेष्ठ साहित्य रचना करने के अपने अक्षुण्ण उपक्रम में विदेशवासी भारतीयों ने भारत के साथ जुड़े रहने की अपनी अटूट प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। विदेशों और भारत के बीच सेतुबंध निर्माण का काम किया है। विश्व के कोने कोने में बसा भारत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अद्वितीय भारतीय अवधारणा को अर्थ प्रदान कर रहा है। परदेशी सही पर हैं हम भारतवंशी।

न.भा. 19.9.2013 लन्दन ●

लघु कथा

पछतावा

✦ **प्राण शर्मा, कॉवेण्टरी, ब्रिटेन**

कुलदीप ब्रिटिश होम स्टोर में घुसा ही था कि उसे अँगरेज़ पड़ोसन ट्रेसी मिल गयी। नयी-नकोर ड्रेस में वो खूब जँच रही थी। कुलदीप तारीफ में बोल पड़ा - 'ट्रेसी, तुम तो इस लिबास में बहुत ही स्मार्ट और सुन्दर दिख रही हो।' सुनकर वह बहुत खुश हुई।

'सच ?' उसने मुस्कराहट बिखेरते हुए पूछा।

'बिलकुल सच।'

'तुमने तो खुश कर दिया है। आज मेरा सारा दिन खुशी से बीतेगा।'

'धन्यवाद!'

ट्रेसी के उन्मुक्त उत्तर से प्रसन्न हो कर कुलदीप आगे बढ़ गया। कुछ कदम वो आगे बढ़ा ही था कि उसे अपनी हिंदू पड़ोसन शान्ति मिल गयी। उसको भी खूबसूरत ड्रेस में देख कर वह चौंक गया। वह तारीफ किये बिना रह नहीं सका-'शांति जी, आप इस लिबास में बहुत सुन्दर दिखाई दे रही हैं।'

'क्या कहा ?' वो कड़े स्वर में बोली।

'आप इस लिबास में बहुत सुन्दर दिखाई दे रही हैं।' कुलदीप ने कुछ डर कर अपना वाक्य दोहराया।

'बंद कर बकवास ! तेरे घर में माँ-बहनें हैं ? उन्हें छेड़ा कर !'

शांति गुस्से में बोल कर बाहर निकल गयी।

●

देश की स्मृतियाँ संजोए प्रवासी भारतीय कहानियाँ

✦ हरियश राय

प्रवासी साहित्य लिखा तो विदेशों में जा रहा है, लेकिन उसकी जड़ें भारत में निहित हैं। भारतीय लोक भारतीय परम्पराओं में है। विदेशों में रह रहे हिन्दी के कथाकार पूरी शिद्दत और गहराई के साथ भारतीय समाज, भारतीय जीवन स्थितियाँ, भारतीय परिवेश और भारतीय मूल्य से जुड़े हुए हैं। भारतीय मन विदेशों में रहकर भी विदेशी नहीं हो सका। भारतीय संस्कार और भारत में बिताए गए दिनों की स्मृतियाँ उनके मन में गहरे समाए हुए हैं और ये संस्कार एक अंतरू सलिला की तरह उनके जीवन को संचालित करते हैं। बेहतर जीवन की तलाश में भारतीय सात समंदर पार दूसरे देशों में जाकर बस तो जाते हैं, लेकिन उनका मन इसी देश में भटकता रहता है। यहाँ की परम्पराओं के बीच, यहाँ के रीति-रिवाजों के बीच, पीछे रह गए अपने परिवारों के बीच। उनका भारतीय मन बार-बार अपने देश आने के लिए छटपटाता रहता है। आर्थिक सम्पन्नता हासिल कर लेने के बावजूद वे भारत में बिताए अपने अतीत को नहीं भूल पाते। यह अतीत उनकी स्मृतियों में हमेशा बसा रहता है। अपने देश से दूर रहकर यह अतीत ही उनके लिए प्रेरणास्रोत का काम करता है। विदेशों में हो रहा भारतीय लेखन कमोवेश इसी आधार भूमि पर खड़ा है।

सुदर्शन सुनेजा की कहानी 'अखबार वाला' को इसी परिवेश में देखा और समझा जाना चाहिए।

विदेशों में रह रहे भारतीयों की सबसे बड़ी समस्या बेगानेपन की है। वे इस बेगानेपन के परिवेश से बाहर निकलना चाहते हैं, लेकिन परिस्थितियाँ और संदर्भ इजाजत नहीं देते। विदेशी परिवेश के संदर्भ और वहां के मूल्य उन्हें रास नहीं आते, जिसके कारण एकाकीपन और बेगानापन लगातार बढ़ता रहता है।

अजनबीपन और बेगानेपन के अनेक संदर्भ इस 'अखबार वाला' कहानी में देखने को मिलते हैं। पश्चिमी संस्कृति में जहाँ एकाकीपन और बेगानापन है, वहीं भारतीय संस्कृति में परस्पर संवाद और मेल जोल है। भारतीय मन अपने संस्कारों से ही इनमें रचा बसा है। ये संस्कार व्यक्ति के अवचेतन मन में रचे बसे रहते हैं और अपने परिवेश से अलग होने पर ये मुखरता से सामने आ जाते हैं और संवादहीनता की स्थिति में बेगानेपन को जन्म देते हैं।

मृत्यु पर तेरह दिन का शोक, मृत व्यक्ति को पूरी गरिमा और सामूहिकता के साथ विदाई, चिर वियोग को व्यक्त करने वाला रुदन, पूरे कुटुम्ब का और समाज का शोक संतप्त होकर अंतिम यात्रा में शामिल होना, गीता के अट्ठारहवें अध्याय का पाठ, नैनं छिद्राणि शस्तामणि ..... का उद्घोष और सामूहिक विलाप अंतिम यात्रा की पहचान है। गली मौहल्ले के लोगों का अंतिम यात्रा में शामिल होना, पड़ोसियों के घरों द्वारा दिवंगत व्यक्ति के परिवार के लिए खाने पीने का इंतजाम करना, उनके दुखों को कम करने के लिए सांत्वना देना, भारतीय संदर्भों की खास पहचान है। घर में गीता के श्लोकों का पाठ करना भारतीय संस्कारों में शामिल है। ऐसे संस्कारों से युक्त मन जब विदेश में किसी की अंतिम यात्रा में शामिल होना चाहे और वह उसको नसीब न हो और तो और उसका चेहरा तक भी न देख सके तो भारतीय मन बेहद विचलित हो उठता है। सुदर्शन सुनेजा ने इन्हीं संदर्भों और मानसिकता को केंद्र में रखकर 'अखबार वाला' कहानी का ताना बाना बुना है।

जया एक अर्से से पराए देश में रह रही है। अपने देश की आबोहवा, वहाँ का परिवेश, वहाँ की स्मृतियाँ, उसके मन में इतनी गहराई से रची बसी हैं कि वर्षों बाद भी धूमिल नहीं होतीं। गाहे-बगाहे ये स्मृतियाँ अवचेतन मन से निकलकर चेतन मन में समा जाती हैं। इन स्मृतियों के सहारे जया अपने आप को जीवित रखती, अपने आपको जीवन जगत से जोड़े रखती, अन्यथा उसकी हर सुबह अधूरेपन के ग्रहण से ग्रसित हो जाती।

जया इस एकाकीपन को तोड़ना चाहती है, वह किसी न किसी रूप में दिवंगत व्यक्ति को अपनी संवेदना पहुँचाना चाहती है, वह केवल एक बार दिवंगत व्यक्ति का चेहरा देखना चाहती है, वह किसी को दो शब्द कहने के लिए आतुर हो उठती है। उसके मन में मानवीय आद्रता भर जाती है। वह अपने मन को समझा नहीं पाती कि कोई दुनिया छोड़कर चला जाए और वह उसके लिए आँसू तक न बहा सके। जया की आँखों में अनायास ही नमी उभर आती है। उसकी शिराएं तन जाती हैं। वह दिवंगत व्यक्ति के घर में प्रवेश करती है। वहाँ उसे उनका पुत्रनुमा लड़का मिलता है, जिसके एक हाथ में काफी का मग और दूसरे हाथ में सिगरेट रहती है। कहानी में यह बेगानापन बहुत गहराई से सामने आता है।

'हाईवे-47' कहानी में विदेशों में रह रहे भारतीय मध्य-वर्ग के चरित्र, उसके अंतर्विरोध, उसकी अपनी आंकाक्षाओं को बहुत गहराई और शिद्दत से सामने रखा गया है।

इन्हीं मध्यमवर्गीय जीवन संदर्भों, उसकी सोच, उसका अपना जीवन जीने की आत्मकेंद्रित चाह, अपनी आवश्यकता अनुसार सम्बन्धों को स्वीकारना और त्याग जैसे मूल्यों से गुजरती हुई मध्यवर्गीय जीवन के नए पक्ष को सामने लाती है। कहानी के केंद्र

में शुभ है जो उत्तर प्रदेश की रहने वाली है और यूरोप के कोपनहेगन शहर में रह रही है। उसके महँगे इलाज का खर्चा सरकार उठाती है और उसकी बीमारी उसकी समस्या न होकर सरकार की समस्या है। अब शुभ यूरोप के इस शहर में कैसे आ गई, इसकी अजीब दास्तान है जिसमें मध्यवर्गीय आकांक्षाओं और सपनों की उड़ान है जो अंतत: एक रिक्तता और शून्यता ही पैदा करती है। यह मध्यवर्ग जीवन में बदलाव तो चाहता है, लेकिन इस बदलाव की भारी कीमत उसे चुकानी पड़ती है। इसी बदलाव की चाह में उसका पति डैनमार्क की टैक्निकल यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर बनकर आ गया और यहाँ आकर यूरोपीय समाज और संस्कृति के मोह पाश में बंध गया और अपनी पत्नी शुभ से तलाक लेने के बारे में सोचने लगा। वह भारत के उत्तर प्रदेश में रह रही अपनी पत्नी से तलाक की याचना करता है, एक बार नहीं कई बार। वह कोपनहेगन से शुभ को पत्र लिखता कि वह उसे तलाक दे दे; क्योंकि उसका सम्बन्ध एना नाम की किसी दूसरी लड़की से हो गया है, जबकि शुभ को इस बात का इंतजार था कि वह उसे उत्तर प्रदेश से कोपनहेगन ले जायेगा। छ: माह तक वह इंतजार करती रही, पर एक दिन शुभ को पत्र आया और पत्र पढ़कर वह दहल गई। तब उसने अपने पति से तलाक लेने की एक शर्त रखी कि वह उसे व बच्चों को पहले कोपनहेगन बुलाने का इंतजाम करे। हिन्दुस्तान के एक पूरब प्रदेश की संकुचित सामाजिक धारणा में वह तलाक के लेबल्ज़ के साथ निर्वाह नहीं कर सकती। फिर दो पुत्रों को वह अपने पिता के सहयोग के बिना नहीं पाल सकती।

यह कहानी भारतीय मध्यमवर्ग के अंतर्विरोध और मध्यवर्ग की अजीब दास्तान को रेखांकित करती हुई संवेदनात्मक स्तर पर पाठकों को उद्वेलित करती है।

अचला शर्मा की कहानी 'मेहरचंद की दुआ' अप्रवासी बनकर रहने वाले लोगों की मन:स्थितियों को, उनके समझौतों को, उनके सरोकारों को, पूरी गहराई और आत्मीयता के साथ व्यक्त करने में सक्षम है।

कहानी का प्रमुख पात्र मेहरचंद अस्थायी वीजा मिलने के बाद हिन्दुस्तान में रह रही अपनी अपनी बीवी से यह वायदा करके लंदन आ जाता है कि लंदन में नौकरी मिलते ही सब ठीक हो जाएगा। और यहाँ आकर उसे एक एक पाउंड के लिए इतनी जद्दोजहद करनी पड़ी कि उसे अपना नाम तक भुला देना पड़ा। नाई की दुकान पर हिन्दू ग्राहकों के बाल काटने पर दुकान के मकान मालिक ने उसका नाम मेहरचंद रख दिया। पहले तो मेहरचंद को ठीक नहीं लगा, पर रोजी रोटी का सवाल उसके सामने आ गया तो उसने सोचा, 'नाम बदलने से उसका दीन ईमान थोड़े ही बदल जायेगा। फिर रोजी रोटी का मामला है।'

इस तरह मेहरचंद नाम बदलकर गैरकानूनी तरीके से लंदन में रहने लगता है। गैर कानूनी तरीके से अपनी रिहाइश को कानूनी रूप देने के लिए हरि भाई आशा बँधाते हैं कि अगर इस इलेक्शन में लिबरल डेमोक्रेट जीत जाते हैं तो गैर कानूनी तरीके से रहने वाले लोगों को कानूनी ढंग से रहने की इजाजत मिल जाएगी। मेहरचंद को यकीन नहीं होता कि ऐसा भी हो सकता है और वह जानना चाहता है तो नवीन भाई बताते हैं कि कानूनी तरीके से इस देश में रहने का मतलब होता है कि दो साल का वर्क परमिट मिलना और उसके बाद परमानेंट वीजा मिलना और परमानेंट वीजा मिलने के बाद वह अपने देश पाकिस्तान आ जा सकता है और अपने रिश्तेदारों को भी यहां बुला सकता है।

तब मेहरचंद की जिंदगी में एक नया सपना जागता है और इस सपने को पूरा करने का रास्ता नवीन भाई बताते हैं कि ''पर टोरी जीते चाहे लेबर जीते, कोई भी बिना लिबरल डेमोक्रेट पार्टी के सरकार नहीं बना सकता और एक बार लिबरल पार्टी सरकार में आ गई तो अपनी बात मनवा ही लेगी। बस तू दुआ कर मेहरचंद।''

बस तब से मेहरचंद की जिंदगी में लिबरल पार्टी के लिए दुआ करना ही सब कुछ हो जाता है। दुआ तो क्या वह तो शुक्रआने की नमाज भी पढ़ लिया करेगा।

अचला शर्मा ने इस कहानी में मेहरचंद जैसे लोगों की व्यथा कथा को बहुत ही बारीकी से संवेदनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया है। कहानी में मेहरचंद का यह सपना एक अंतसलिला की तरह चलता है।

मेहरचंद का जीवन स्तर सुधरने के बाद वह साफ सुथरे घर में जाना चाहता है। लेकिन किराए इतने ज्यादा हैं कि वह कोई फ्लैट अपने दम पर किराए पर नहीं ले सकता। तब नवीन भाई रास्ता सुझाते हैं कि दो कमरे का फ्लैट किराए पर ले लो। तुझे तो एक ही कमरे की जरूरत है, दूसरा कमरा किराए पर दे देना।

पर किराएदार मिलेगा कैसे ?

यह समस्या भी जल्दी ही हल हो जाती है। मेहरचंद को एक लड़की का फोन आता है जो किराए पर कमरा लेना चाहती है। पर यह लड़की कौन है?

अचला शर्मा ने ऐसे चरित्र का गठन किया जो मेहरचंद की तरह ही बेसहारा और असहाय है। उसके बारे में कहा गया है, मेहरचंद नवीन भाई के कहने से उस लड़की 'नैन' को कमरा किराए पर दे देता है। धीरे-धीरे नैन से उसकी दोस्ती होती है और यह दोस्ती अंतरंगता में बदल जाती है। नैन उसके लिए खाना बनाती है, घर को साफ सुथरा रखती है और दोनों रात को खाना एक ही टेबल पर खाते हैं, पर सोते अलग अलग हैं। एक दिन यह सीमा भी खत्म हो जाती है। नैन पहल करती है और खुद मेहरचंद के पास आकर उसके साथ सोती है। मेहरचंद कई साल बाद औरत के जिस्म की गरमी महसूस करते हैं, पर सुबह फजर की नमाज से पहले नैन अपने कमरे में चली जाती है। यह सिलसिला बदस्तूर चलता रहता है। लिव इन रिलेशन्स का रिश्ता मेहरचंद और नैन में बन गया है। नैन हर महीने का किराया नियमित चुकाती है और रोज रात को उसके साथ सोती है।

अचला शर्मा ने पाश्चात्य संस्कृति के नए संबंधों को इस कहानी में जगह देकर कहानी को ज्यादा अर्थवान ओर प्रासंगिक बनाया है। लिव इन रिलेशन्स सम्बन्ध स्थायी सम्बन्ध नहीं है, केवल एक दूसरे की जरूरतों के अनुकूल सम्बन्ध है।

मेहरचंद को लगता है कि उसकी दुआ का असर होगा और एक दिन उसका स्टेटस लीगल हो जाएगा। जब स्टेटस लीगल हो जाएगा तो तुम क्या करोगे, एक दिन नैन पूछती है तो मेहरचंद जवाब देता है–एक बार मुल्क का चक्कर लगाऊँगा। ग्यारह साल हो गए फैमिली को देखे हुए।

उसके बाद क्या करोगे।

पप्पू को यहाँ बुला लूँगा।

उसके बाद।

अभी सोचा नहीं ..... तुम बताओ, तुम क्या करेगी? वह कुछ नहीं बोली सिर्फ देखती रही।

यहाँ पर आकर कहानी एक दूसरा मोड़ लेती है और नैन सोचती है कि यदि इसका स्टेटस लीगल हो गया और यदि इसने अपने परिवार को यहां बुला लिया तो जिस तरह से वह यहाँ रह रही है, वह नहीं रह सकेगी। वह एक कदम और आगे बढ़ाती है और एक बारीक-सी नाइटी पहने मेहरचंद के कमरे में जाती है। उस समय मेहरचंद नमाज पढ़ रहा होता है और नमाज के बाद दुआ माँगता है– 'ऐ मेरे अल्लाह! लिबरल डेमोक्रेट की सरकार बना दे।'

दुआ के बाद मेहरचंद की नजरें नैन पर आकर टिक जाती हैं। उस रात नैन अपने कमरे में वापस नहीं जाती। सुबह उठकर मेहरचंद देखता है कि नैन उसकी बगल में सो रही है। नैन की एक बाँह उसकी गर्दन पर लिपटी है। उसके कुछ बाल माथे पर बिखरे हैं। नैन के साथ एक ही कमरे में एक ही बिस्तर में यूं नींद से जगने का यह पहला तजुर्बा है जो उसे बड़ा सुकून दे रहा है। पर उस रात के बाद नैन अपने कमरे में नहीं जाती। मेहरचंद को लगता है कि अल्लाह मियाँ ने उसके नेक कामों से खुश होकर उसे बख्शीश दी है। अचानक मेहरआलम के दिल में ख्याल आया कि अगर पप्पू यहाँ आ गया तो सब कुछ बदल जायेगा। उसकी जिंदगी जैसी चल रही है, वह नहीं रहेगी और इस पल वह नहीं चाहता कि उसके आस पास एक जर्रा भी बदले। तब उसकी दुआ बदल जाती है और लेटे ही लेटे वह दुआ करता है अल्लाह मियां, लिबरल डेमोक्रेट जीतें या हारें, सरकार में आएं चाहे न आएं, मुझे लीगल स्टेटस मिले या न मिले, मैं तेरे रहमो करम से जैसा हूँ, बहुत खुश हूं। मेरे अल्लाह! मुझ गुनाहगार बंदे पर यह करम फरमाता रह। आमीन, सुम्मां आमीन।

विदेशों में रह रहे भारतीयों की मन:स्थिति का एक धरातल इस कहानी में देखने को मिलता है और दूसरा धरातल अमरेन्द्र कुमार की कहानी 'चिड़िया' में देखने को मिलता है। कहानी को पढ़ते हुए महाकवि वड्र्सवर्थ की एक कविता याद हो आई 'द वर्ल्ड इज टू मच विद अस'। अर्थात् यह दुनिया मेरे साथ साथ हमेशा चलती है। प्रकृति के सौंदर्य में अपने अलग-अलग रूपों में मेरे साथ रहती है। विकास और विलासिता के हम चाहे जितने भी साधन इकट्ठे करें, लेकिन जो सुख हमें सूर्योदय और सूर्यास्त देखने में, सर्दियों में धूप में बैठने में, बारिश में किसी पेड़ की ओट में खड़े होने में, विराट सागर और उन्नत पर्वत को देखने में, खुले आकाश और मूसलाधार बारिश को देखने में मिलता है, वह और कहीं नहीं मिलता। इसलिए मनुष्य और प्रकृति का रिश्ता बेहद सुंदर, अनुपम और सघन है। इसी रिश्ते के कारण ही मनुष्य बार-बार प्रकृति की ओर जाता है। मनुष्य चेतना का सहज स्वभाव है कि वह इस विश्व को व्यक्त ही नहीं करती, बल्कि अपनी सापेक्ष स्वयाता के साथ रचकर सुंदर भी बनाती है। इस प्रक्रिया में मनुष्य जीवन, जगत और प्रकृति पर अपनी पकड़ गहरी और मजबूत करता है। हमारा सांस्कृतिक विकास इसी प्रक्रिया का सुफल है।

कहानी की शुरूआत लेखक अपने को चिड़ियों से जोड़कर करता है। वह देखता है कि केक के टुकड़े को खाने के लिए चिड़ियाँ आपस में लड़ झगड़ रही हैं। उनमें से एक ऐसी चिड़िया भी है जिसने अपने आपको इस संघर्ष से अलग रखा हुआ है; क्योंकि उसे पता है कि भोजन के इस संघर्ष में उसका कोई मूल्य नहीं है। अमरेन्द्र कुमार उस चिड़िया के साथ अपना तादात्म्यनबिठाते हैं और पूरी कहानी में 'मैं' और चिड़िया के संवेदनात्मक संबंध और गहराते चलते हैं। एक बार चिड़ियाँ अपने किसी साथी को ले आती है। दोनों चिड़िया देर तक उस घर में अठखेलियाँ करतीं हुई फुर्र से उड़ जाती हैं।

कहानी अपने उत्कर्ष पर तब पहुँचती है जब 'मैं' बीमार होता है और चिड़िया उसके पास होती है। चिड़िया के माध्यम से अत्यंत कोमल संबंधों को उजागर किया गया है। यह भारतीय मन: स्थितियों की एक विशेष कहानी है।

तेजेन्द्र शर्मा अपनी कहानियों में विदेशों में रह रहे भारतीय मन और भारतीय मन:स्थितियों को उकेरने वाले महत्वपूर्ण कथाकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में विस्थापित भारतीय मन की अनेक पर्तों को उद्घाटित किया है। उनकी कहानियों में इग्लैंड में रह रहे भारतीयों के अपने देश वापस लौटने की पीड़ा गहराई से सामने आती है। साथ ही उनकी कहानियों में भिन्न देश की संस्कृति, एक अलग जीवन शैली के कई स्तर सामने आते हैं। तेजेद्र शर्मा अपनी कहानियों में मध्यवर्ग के अंतर्विरोध को सामने लाने के साथ साथ विदेशों में रह रहे भारतीयों के मन को, उनकी पीड़ाओं को पकड़ने की एक सार्थक कोशिश करते हैं। यह पीड़ा वहाँ जाकर रहने के कारण ही नहीं, बल्कि एक अलग संस्कृति, एक अलग जीवन शैली को आत्मसात न कर पाने के कारण भी है। एकदम अपरिचित, अनजाने माहौल में अपने आपको ढालना आसान भी नहीं है। व्यक्ति के संस्कार, उसकी सोच, उसकी पसंद, उसकी रुचियाँ, उसके शौक

अप्रत्यक्ष रूप में हमेशा उसके साथ रहते है। विदेशों में रहकर ये संस्कार ज्यादा हावी हो जाते हैं। इन संस्कारों से न तो मुक्ति सम्भव है। दूसरे देश के संस्कारों और जीवनशैली को अपनाना आसान नहीं है। तेजेन्द्र शर्मा अपनी कहानियों में इस छटपटाहट को बहुत गहराई से और शिद्दत के साथ व्यक्त करते हैं।

उनकी कहानी 'कब्र का मुनाफा' एक तरफ वैश्वीकरण और वैश्वीकरण से उत्पन्न परिवेश तथा उस परिवेश से जन्मी बाजार अर्थव्यवस्था की ओर इशारा करती है तो दूसरी तरफ इस बाजार अर्थव्यवस्था से विकसित पारिवारिक संबंधों में बिखराव, एकाकीपन जैसे कई धरातलों को स्पर्श करती है। पारिवारिक संबंधों की प्रगाढ़ता का पैमाना जब धन और भौतिक सुविधाओं को बना दिया जाए तो सदियों से चले आ रहे हमारे जीवन मूल्य और मान्यताएं बदल जाएंगी। हमारी अपनी मूल्य पद्धति में उदारता है, सहिष्णुता है, परदुख कातरता है, सहनशीलता है, इस मूल्य पद्धति के केंद्र में मनुष्य है। अब इस मूल्य पद्धति के केंद्र में मनुष्य के स्थान पर धन और भौतिक सुविधाओं को रख देंगे तो अमानवीयता ही जन्म लेगी। तेजेन्द्र की यह कहानी मनुष्यता को अमानवीयता में तब्दील होने की दास्तान भी कहती है।

कहानी संवेदनात्मक धरातलों के अनेक स्तरों को स्पर्श करती हुई सामंती सोच, नारीवादी आंदोलन, उपभोक्ता संस्कृति के बीच से नारी की अस्मिता के सवालों को भी सामने रखती है। जिस परिवेश की कहानी तेजेंद्र कहते हैं उस परिवेश की नारियाँ अपनी मुक्ति के रास्ते भी खुद तलाश करती हैं। वह अपने स्तर से अपनी आवाज बुलंद करती हैं। नादिरा घर का सौदा सुल्फत लाने से मना कर देती है। खलील उसकी इस हरकत से कुढ़ता रह जाता है और उसकी समझ में नहीं आता कि वह नादिरा को कैसे अपने वश में करे। पर नादिरा को भी अपने रास्ते तलाशने आते हैं। श्रीमती खलील जैदी के नाम से आए पत्र को पढ़ने पर उसे पता चलता है कि खलील ने उसके मरने के बाद उसे दफनाने के लिए कब्रिस्तान में कब्र बुक कराई है तो वह अपने विरोध के स्वरों को तेज कर देती है। वह सोचती है कि क्या उसका यह घर जिंदा कब्रिस्तान नहीं है कि उसके लिए कब्र बुक कराई जाए। क्या इस घर में खलील उसके लिए नर्क का जल्लाद नहीं है कि उसके मरने के बाद भी उसकी बगल में रहा जाए। क्या मरने के बाद भी उसे चैन नहीं मिलेगा।

दरअसल यह सामंती सोच मध्यवर्ग में ज्यादा मुखर रूप से सामने आई, जहाँ स्त्रियां अपने आपको ज्यादा घुटन भरे माहौल में पाती हैं लेकिन धीरे-धीरे पुरुषों की इस सोच के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करती हैं।

तेजेंद्र शर्मा अपनी कहानियों में भारत से बाहर रहने वाले भारतीयों की पीड़ा को व्यक्त करते हैं। संवेदनात्मक धरातल पर यह पीड़ा कई स्तरों पर व्यक्त होती है। पीड़ा का एक स्तर अपनी भारतीय परम्पराओं, लोक व्यवहारों, रीति-रिवाजों की स्मृति को अपने मन में बसाए विदेश में रहने की बाध्यता है तो दूसरा स्तर विदेशी परिवेश को आत्मसात न कर पाना है।

'पासपोर्ट का रंग' एक ऐसी कहानी है जिसमें पंडित गोपाल दास त्रिखा को ब्रिटिश पासपोर्ट लेने के लिए ब्रिटेन की महारानी के प्रति निष्ठा रखने के लिए कसमें खानी पड़ती हैं। लेकिन उसका मन ब्रिटेन में रहने के लिए बिल्कुल नहीं है। वह सोचता है, ब्रिटेन की नागरिकता लेने से मर जाना कहीं बेहतर है। क्योंकि उसने अपनी सारी जवानी इन गोरे साहबों से लड़ने में ही बिताई है। जिसके लिए उसकी बाँह में गोली लगी थी और उस बाँह में स्टील की एक राड लगी हुई है। प्रधानमंत्री द्वारा दोहरी नागरिकता के बारे में की गई घोषणाओं के बावजूद भी उसे दोहरी नागरिकता नहीं मिली तो उसे लगता है कि प्रधानमंत्री की घोषणा केवल राजनीतिक घोषणा थी तो वह बेहद खिन्न हो उठता है और ऐसे देश की नागरिकता ले लेता है जहाँ जाने के लिए भारतीय पासपोर्ट और ब्रिटिश पासपोर्ट की जरूरत नहीं होती।

विदेशों में रह कर लिखने वाले कथाकार विदेशों में रहकर भी भारतीय परिवेश से अलग नहीं हुए। उनके लेखन में भारत की ललक और यहाँ बिताए गए दिन गहरे उनके मन में गहरे समाए रहते हैं। वे किसी कारण से बार-बार अपने लेखन में भारत की ओर लौटते हैं। अपनी कहानियों में वे संवदनात्मक स्तर पर अपने लिए एक समानान्तर दुनियाँ विकसित करते है। जो इनकी कहानियों की मूल शक्ति है और वही प्रवासी कहानियों को ज्यादा अर्थवान और प्राणवान बनाती है।

●

प्रवासी साहित्य और चुनौतियाँ

✦ मधु अरोड़ा

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, 'साहित्य में जो मनोवृत्ति दिखाई पड़ती है, उसका निर्माण सामाजिक, राजनैतिक, वैचारिक आदि परिस्थितियों के अनुरूप होता है। दूसरी बात कि साहित्य की एक धारा हमारे सामने मौजूद होती है। इस धारा में समय-समय पर बदलाव दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं परिवर्तनों का सामंजस्य सामाजिक परिवर्तनों के साथ साहित्य में दिखाना होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में यदि हिन्दी के पाठकों की बात करें तो दो श्रेणियां दिखाई देती हैं : एक वे लोग–जो लिखते है और दूसरों को पड़ते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं, अपने गुट बना लेते हैं, दूसरों की आलोचना करते हैं, आत्म मुग्धता के शिकार हैं, ये लोग संख्या में कम हैं; किन्तु समझते हैं कि सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य का वर्तमान व भविष्य वे ही तय करते हैं। दूसरे, वे पाठक गण हैं जिनके लिए तथाकथित साहित्य रचा जाता है; किन्तु उनकी पसंद-नापसंद को महत्त्व नहीं दिया जाता है, एक आम पाठक साधारण भाषा में लिखा वह साहित्य पसंद करता है जो उसके मन की, उसके परिवेश की बात करता हो। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो साहित्य की परंपरा जनता की चित्तप्रवृत्तियों से प्रभावित होती है और जनता की चित्तवृत्ति बहुत से साहित्येतर कारकों से निर्मित होती है।

इसी परिप्रेक्ष्य में प्रवासी हिंदी लेखन पर गौर करने की जरूरत है कि वहाँ जो लेखन हो रहा है, क्या उसे मुख्यधारा के लेखन के समकक्ष रखा जा सकता है? प्रवासी लेखन पर बात करें, उससे पहले सवाल उठता है कि यह मुख्यधारा क्या है और क्या इसके तहत विधाओं के लेखन के लिये कोई मानदंड हैं जिनकी कसौटी पर लेखन को कसा जाये? दरअसल गत कुछ वर्षों से हिंदी साहित्य जगत में कई धाराएं चल रही हैं और वे अपने पूरे उफान पर हैं और उनके बीच दलित लेखन, स्त्री-लेखन, प्रगतिशील लेखन, आंचलिक लेखन, वामपंथी लेखन, दक्षिणपंथी लेखन पिस रहे हैं और उनमें एक नया लेखन और समाविष्ट हो गया-प्रवासी लेखन। अब साहित्य में जो इतनी धाराएं समानांतर रूप से चल रही हैं तो एक बात सामने आ रही है कि यह लेखन न होकर जाति और लिंग आधारित लेखन हो गया है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो हम हिंदी वाले अपने आपको बाँटने की बड़ी भारी क्षमता रखते हैं। हमने ये चौखटे खुद बनाये हैं, अपनी अलग पहचान बनाने के चक्कर में।

इन हालात को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि लेखकों के आगे एक भ्रामक स्थिति पैदा हो गई है कि उसका लेखन किस श्रेणी के तहत रखा जायेगा। तो आप ही बताइये कि जब हम किसी धारा विशेष के तहत लेखन करेंगे तो वह सही अर्थों में लेखन नहीं होगा बल्कि वर्ग-विशेष को संतुष्ट करने का लेखन होगा। मेरी समझ से हम पहले खुद से संतुष्ट हो लें, यह बहुत जरूरी होगा। मेरे नजरिये से मुख्य धारा का मतलब है कि जो कहानियाँ मानवीय सरोकारों से जुड़ी हों, जिनके लिखने का कुछ मकसद हो, सिर्फ लिखने के लिये न लिखा जा रहा हो। जो कहानियाँ पाठक को सोचने के लिये विवश करें, उनके दिलो-दिमाग को उद्वेलित करें, जिन रचनाओं को पढ़कर सामाजिक बदलाव की सकारात्मक सोच उत्पन्न हो सके। ऐसी कहानियों को मैं मुख्यधारा के अन्तर्गत मानने के हक में हूँ। चाहे वे कहानियाँ प्रवासी लेखकों की ही क्यों न हों।

प्रवासी लेखन को लेकर मैंने मुख्यधारा के लिये वरिष्ठ रचनाकारों, आलोचकों द्वारा निर्धारित मानदंडों को खंगाला पर ऐसा विशेष कुछ हाथ नहीं लगा। ऐसे में मुझे फेसबुक के अपने साहित्य के मित्र याद आये और वहाँ मुख्यधारा के मानदंडों के मुद्दे को उठाया। वहाँ से मुझे अपने सवाल का जवाब मिला पर वह भी स्पष्ट कुछ भी नहीं। विचार-विमर्श हुआ। मित्रों ने मुख्यधारा के नाम पर चल रहे भेद-भाव पर अपना आक्रोश जताया कि जिन लोगों ने रचनाकारों को खुद के सर्टिफिकेट से उन्हें मुख्यधारा का लेखक बनाने का जबरन ठप्पा लगाने का ठेका लिया है, उन्हें यह अधिकार किसने दिया है।

वहीं यू.ए.ई. के रचनाकार कृष्णबिहारी के अनुसार, 'आज की तारीख में हिंदी में सामयिक लेखन जहाँ भी हो रहा है वह हिंदी साहित्य ही नहीं बल्कि किसी भी भाषा की मुख्यधारा से जुड़ा लेखन है। प्रवासी लेखन नाम मिल जाने से या किसी के द्वारा कह दिये जाने से रचनाकार पर कोई अच्छी या बुरा असर नहीं पड़ता।' वहीं भारत की चर्चित समीक्षक सरिता शर्मा कहती हैं, 'मुख्यधारा में होने लायक और उनमें होना दोनों अलग-अलग बातें हैं। इसमें भारतीय या प्रवासी का कोई खास भेदभाव नहीं है। साथ ही साहित्य में राजनीति और किसी धारा में शामिल होने का जुगाड़ खतरनाक है।'

इसी बात को आगे बढ़ाते हुए पुनीत बिसारिया तो जरा तल्ख होकर कहते हैं, 'हिंदी में हर ध्वजाधारी साहित्यकार की अपनी एक मुख्यधारा है। वास्तविकता तो यह है कि साहित्य की मुख्यधारा को कुछ लोगों ने अपनी ओर मोड़ लिया है और उनके विचारों से ही हम संचालित होने लगे हैं। साहित्य की पहली शर्त पठनीयता है, जिस पर यदि ये खरे उतरते हैं तो इन्हें साहित्य की मुख्यधारा का अहंकार साहित्य कोटि से क्यों बहिष्कृत रखना चाहता है? मेरे इन मित्रों की बातचीत के आधार पर एक बात तो सामने आती है कि संवेदनाएं सार्वभौमिक हैं। साहित्य में तो विचारधारा ही महत्वपूर्ण है। यदि

मुख्यधारा का अस्तित्व या इसे साहित्य के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करना ही चाहें तो इसे 'कालजयी साहित्य' के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है, बतौर एक मापदंड और कसौटी। हिंदी में अच्छा लिखा जा रहा है, यह सच है लेकिन फिर भी सवाल 'कालजयी' तक आकर रुक जाता है।

अब जहाँ तक प्रवासी लेखन की बात है तो उषा प्रियवंदा, सुषम बेदी, तेजेन्द्र शर्मा का लेखन धाराओं के विवादों से परे, मुख्यधारा के तहत गिना जाता है। इन्हें भारत के स्थापित रचनाकारों में गिना जाता है। मसलन, उषा प्रियवंदा की कहानी 'वापसी' जो मील का पत्थर है। सुषम बेदी का 'मैंने नाता तोड़ा' बहुचर्चित उपन्यास है। भारत में ही नहीं दुनिया भर में औरत के शरीर को लेकर उसे हर तरह से सहना पड़ा है। घर में अपने ही चाचा-मामा लोभ संवरण नहीं कर पाते। यह हर घर की कहानी है। अमरीका में तो सौतेला बाप भी लड़की का दुश्मन होता है। घर-घर की कहानी यही है पर लोग छुपाते फिरते हैं। आप ही बताएं कि क्या भारत के घरों में यह नहीं होता? तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ देह की कीमत, ढिबरी टाइट उन्हें भारत के स्थापित रचनाकारों की श्रेणी में ला खड़ा करती हैं। इसलिये इन रचनाकारों के लेखन पर बात करने के बजाय भारत से बाहर लिखे जा रहे साहित्य की उन रचनाओं को आपके सामने रखना चाहूँगी जिन्हें सामाजिक सरोकारों की वजह से मुख्यधारा की कहानियों में शामिल करने पर विचार किया जा सकता है।

मुझे यह कहने में बिल्कुल संकोच नहीं है कि मैंने अपने इस पेपर में समाहित रचनाओं के रचनाकारों के पूरे लेखन को नहीं पढ़ा है। व्यावहारिक रूप से यह संभव भी नहीं है। जिस प्रकार चावल गले या नहीं, यह देखने के लिये दो-चार चावल उँगली से दबाकर देखे जाते हैं, न कि भगौने के पूरे चावल। उसी प्रकार जो रचनाएं अपने को सहजता से पढ़वा ले जायें, जिनमें सामाजिक सरोकार हों, भाषा सरल हो, डिक्शनरी देखकर शब्दों का प्रयोग न किया गया हो, कठिन शब्दों का प्रयोग पाठक की एकाग्रता को भंग करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में मैंने अमेरिका, यू.के., कैनेडा और मॉरीशस के रचनाकारों की कुछ कहानियाँ पढ़ीं।

यू.के. की रचनाकार उषा वर्मा की कहानी 'रौनी' रंगभेद के शिकार रौनी नामक बच्चे की कहानी है जहाँ वह फॉस्टर अभिभावक के साथ दर-दर भटकने को अभिशप्त है। बाल मनोविज्ञान की यह कहानी उस बच्चे की मानसिक कहानी बयां करती है जहां वह अपने स्कूल के एक टीचर मि. ह्यूबर्ट की हैवानियत का शिकार होता रहता है। वह रौनी के साथ सेक्स करते हैं और साथ ही किसी का बताने पर उसे स्कूल से निकलवाने की धमकी भी देते हैं। उसका काला होना ही मानो उसका कसूर है और इसका आभास उसे कदम-दर-कदम कराया जाता है। यह कहानी भारत के परिवेश को व्यक्त नहीं करती? क्या भारत में होमो सेक्सुअल नहीं हैं? भारत में रंगभेद न सही पर जाति भेद के आधार पर इस तरह की हरकतें की जाती हैं। कारण अलग-अलग हो सकते हैं पर मानसिकता तो एक ही है।

इसी प्रकार यू.एस.ए. की कहानीकार सुधा ओम ढींगरा की कहानी 'क्षितिज से परे' एक ऐसे दंपत्ति की कहानी है जहाँ पत्नी सारंगी अपने पति सुलभ से शादी के चालीस साल बाद बच्चों के सैटल होने के बाद तलाक का फैसला लेती है। अपने अस्तित्व की तलाश में वह पति के सारे अत्याचार सहती रही और जब पानी सिर से ऊपर हो गया तब उसने फैसला किया और महसूस किया कि सोच और समझ दोनों में वह अपने पति सुलभ से बहुत आगे निकल गई है। उसके अनुसार, 'मेरी प्राथमिकताएं बदल गई हैं...भावनात्मक स्तर पर मैं उनसे बहुत दूर निकल चुकी हूं...क्षितिज से परे...मैं सचमुच सुलभ से 'रिलेट' नहीं कर सकती। इस कहानी को पढ़ने के बाद मुझे लगा कि जहाँ भारत में शादी के 40 वर्ष बाद नारी जिन्दगी जीने के लिये विवश होती है, भले ही उसे कितनी ही प्रताड़ना मिले। वह तलाक लेने के विषय में सोच नहीं पाती, वहीं विदेशों में महिला उम्र के ढलते पड़ाव में भी तलाक लेने का साहस करती है।

लेस्टर की कथाकार नीना पॉल की कहानी 'आखिरी गीत' बाल मनोविज्ञान की कहानी है जहाँ पति कपिल और पत्नी अंजलि के बीच नीरज आ जाता है। नीरज और अंजलि के किन्हीं कमजोर क्षणों का संसर्ग सोनल के रूप में सामने आता है जिसके परिणामस्वरूप कपिल घर छोड़कर चले जाते हैं ताकि अंजलि नीरज के साथ रहे। बावजूद इसके वे अंजलि अैर बेटी सोनल से बहुत प्यार करते हैं। सोनल को यह गलतफहमी है कि पापा छोड़कर गये और वह अपने पिता कपिल से मिलना ही नहीं चाहती पर जब मां के आग्रह पर वह अपने भाई चिराग के साथ अपने पिता के यहाँ छुट्टियाँ बिताने जाती है तो पता चलता है कि उसके पिता को फेफड़ों का कैंसर है और वे चंद महीनों के मेहमान हैं। तब वह अपने पिता की सारी इच्छाएं पूरी करने की कोशिश करती है और यहाँ तक कि वह अपने पिता के लिखे आखिरी गीत को अपना पहला गीत बनाकर पिता के संगीत को आगे ले जाती है और इस तरह अपने पिता को एक तरह से वह अनोखे रूप से श्रद्धाजंलि देती है, साथ ही जब उसे पिता के घर छोड़ने का कारण पता चलता है तो वह अचानक कह बैठती है, 'आई डोंट बिलीव दिस। इट वाज यू माम।' बच्चे के मन की कशमकश से ओतप्रोत यह कहानी बाल-मन की कथा और विदेशों में पारिवारिक विघटन की कहानी कहती है।

यू.एस.ए. की कथाकार सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी अखबारवाला पाठकों को नि:स्तब्ध कर देनेवाली कहानी है। यहाँ जीवन को केवल जीवन समझकर जिया जाता है, वह भी अपने लिये...केवल अपने लिये। ठीक, स्वस्थ, भरपूर सुविधाओं से भरा-पूरा होना-जीने की अनिवार्य शर्त है। उसके बाहर सब मिथ्या है। सुदर्शनजी की यह कहानी बहुत ही मार्मिक है और पाठकों को विदेशों की वस्तुस्थिति से परिचित कराती है। वहाँ हर इंसान को खुद में ही बन्द रहना होता है। न एक-दूसरे से बोलना न चालना। विदेशों की संवेदनहीनता को

जिस प्रकार सुदर्शनजी ने दर्शाया है, वह सच में पठनीय है और यही संवेदनहीनता भारत में भी प्रवेश करती जा रही है।

मॉरीशस के कथाकार वेणीमाधव रामखेलावन की कहानी जय दुर्गे एक ऐसे मजदूर की दास्तान है जो जमींदार के अत्याचारों से पीड़ित है। भारत से ले जाये गये इन मजदूरों के साथ जो अमानवीय व्यवहार किया जाता है, उसकी दास्तान है यह कहानी, साथ ही ईश्वर के प्रति उस आस्था की कहानी जिनको ये मजदूर अपने साथ ले जाते हैं और वहाँ भी पूजते हैं, जैसे भारत में देवी-देवताओं को पूजा जाता है। इनकी यह आस्था इस कहावत को चरितार्थ करती है कि मानो तो पत्थर भी देवता हैं और न मानों तो देवता भी पत्थर हैं। तो बात आस्था की है जिसके बल पर भिख्खू अपने बेटे बुधवा की मौत का बदला जमींदार को मारकर लेता है। मॉरीशस में भारतीय मजदूरों पर किये जानेवाले अत्याचारों की मार्मिक कहानी है यह। यह कहानी पढ़ते समय मेरे जेहन में भारत में किसानों द्वारा की जा रही आत्महत्या की घटनाएं लगातार आती रहीं और मन-मस्तिष्क को मँथती रहीं।

यू.एस.ए. के रचनाकार उमेश अग्निहोत्री की कहानी क्या हम दोस्त नहीं रह सकते, विजय और विजया की दोस्ती पति-पत्नी के रिश्ते में परवान चढ़ती है। पति पत्नी बनते ही विजया विजय से दूर होती जाती है और सप्ताहांत गर्ल्ज़ नाइट आउट में गुजारना पसन्द करती है। जब विजय विजया से इस दूरी का कारण पूछता है तो वह बेबाक रूप से उत्तर देती है, 'जब तुम दोस्त थे तब तुम इतने पजेसिव नहीं थे जितने अब हो रहे हो। तुमने भी लड़कों से मिलवाया था, वे हैंडसम तो थे पर वे मेरी जिन्दगी का रिमोट अपने हाथ में रखना चाहते थे।...मेरे 'मूवमेंट्स' को 'मैनेज' करना चाहते थे। कोई भी मुझे मेरी आजादी देने को तैयार नहीं था।....तुम मुझे अधिक संवेदनशील और उदार जान पड़े थे। मुझे मेरी आजादी देते थे। सोचने की वह आजादी अब भी दे पाओगे?' स्त्री चाहे कहीं की भी हो वह पति के रूप में बॉडीगार्ड कभी नहीं चाहती। भारत की महिलाएं भी अब पति की तरह खुद के लिये स्पेस माँगने लगी हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाये कि वे अब वह स्पेस लेने लगी हैं तो अतिरेक नहीं होगा। हाँ यह भी सच है कि भारतीय परिवारों में गर्ल्ज नाइट आउट शुरू नहीं हुआ है।

कैनेडा की रचनाकार स्नेह ठाकुर की कहानी 'प्रथम डेट' एक अनूठी थीम के साथ अपनी बात कहती है। पति अनिल अपने "लर्ट स्वभाव के कारण अपनी पत्नी निधि को छोड़कर अपनी से आधी उम्र की लड़की जूली के साथ रहने लगते हैं। ऐसे में निधि के जीवन में पियूष आते हैं और वे निधि को डेट के लिये आमंत्रित करते हैं। निधि को पेशोपेश की स्थिति से उसकी बेटी अदिति उबार लेती है। वह अपनी माँ को पियूष से मिलने के लिये सजाती है, सँवारती है। उस असमंजस की स्थिति से निकलने के बाद उसने पाया, 'दर्पण से झाँकती अपनी आँखों को देख मैं चौंक पड़ी, उनमें प्रथम डेट का भय नहीं था, वरन् थी आशा की किरण।' इस कहानी की विशेषता यह लगी कि एक बेटी अपनी माँ को मानसिक रूप से तैयार करती है। निधि बगावत नहीं करती बल्कि निर्णय लेती है।

तो इन कहानियों को पढ़ते समय लगातार मन में यही उमड़ता-घुमड़ता रहा कि ये कहानियाँ कहीं से भी तो कमतर नहीं लगतीं। सिर्फ दूसरे देश में रहकर लिखे जाने मात्र से ही तो साहित्य विभाजित नहीं हो जाता। ये कहानियाँ पढ़ते समय यही भान होता रहा कि ये कहानियाँ कहीं से भी तो बेगानी नहीं लगतीं। हमारी और आसपास के परिवेश की ही तो हैं। मेरे मित्र ओम निश्चल का कहना है, 'यह बात जरूर है कि कोई भी लेखक हर समय श्रेष्ठ नहीं रच रहा होता। जैसे हर रचना कालजयी नहीं होती, वैसे ही हर लेखक मुख्यधारा में नहीं रखा जा सकता। समय अपने आप लोगों को हाशिये में डालता जाता है। जो धारा के विरुद्ध जाकर रचते हैं, वही टिक पाते हैं। मुहिम चलाकर या लामबंदी से कोई लेखक नहीं बनाया जा सकता।'

आगे वे कहते हैं, 'सभी गाड़ियाँ राजधानी नहीं होतीं। यही हाल लेखकों का भी है। सभी शिखर पर नहीं होते। शिखर बनते-बिगड़ते रहते हैं। मुख्यधारा शब्दों का आतंक फैला है। इसकी जगह व्यापक धारा या व्यापकता के बारे में चर्चा होनी चाहिये। साथ ही यह बात समझ में नहीं आती कि साहित्य इतने टुकड़ों में क्यों बँटा है। साहित्य तो साहित्य है। पाठक को असमंजस की स्थिति में नहीं रखना चाहिये। अगर कृति में दम है तो वह अपनी धारा खुद बना लेती है। कमजोर कृतियों को ही किसी नाम के सहारे से आगे बढ़ाया जाता है और वह साहित्य में आरक्षण जैसा है। मुख्यधारा है जरूर और वह हमारे आसपास हवा पानी की तरह मौजूद है पर हम उसे ठीक-ठीक पहचान नहीं पाते। वहीं हरीश नवल कहते हैं, 'हाँ, सत्य है कि प्रवासी साहित्य हिंदी की मुख्यधारा का साहित्य ही है। हाँ, जैसे भारत के सभी हिंदी लेखक मुख्यधारा में नहीं आते, वैसे ही हर प्रवासी लेखक मुख्यधारा में नहीं हो सकता। केवल लिखने से लेखक मुख्यधारा में नहीं आ सकते।

समय-सीमा को ध्यान में रखते हुए अपनी बात को इस प्रकार कह सकती हूँ कि साहित्य की मुख्यधारा मानवीय मूल्यों को केंद्र में रख कर लिखा जा रहा सब कुछ है। विधा कुछ भी हो सकती है, भाषा कुछ भी हो सकती है, देश कोई भी हो सकता है। साहित्य को आप और हम कबीलों में नहीं बाँट सकते। समीक्षकों और आलोचकों का अपना महत्त्व है लेकिन उनकी भूमिका सीमित है। वे न साहित्य के निदेशक हैं न प्रवर्तक। कोई क्षमतावान रचनाकार ही कभी आकर्षित करता है, प्रभावित करता है, और नई लीक भी बनाता है। देखना है तो उनकी ओर देखिए, आपको सारे उत्तर वहीं मिल जाएंगे। जैसे मधुमक्खियों को मधु संचय के लिए बड़ी मशक्कत करनी होती है उसी तरह हम भी इस टोह में रहते हैं कि कहीं से कुछ ऐसा मिले जो जीवन की बेचैनियों को तरतीब दे। कम से कम मेरे लिये तो यही मुख्यधारा है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हमें यह तय करना होगा कि

साहित्य की मुख्य धारा क्या है? क्यों केवल कुछ मठाधीशों, गुटबाजों और राजनीतिक उठा-पटक के माध्यम से प्रकाशित हो जाने या स्थापित हो जानेवाले लेखक ही हिंदी साहित्य की मुख्य धारा में आते हैं? क्यों केवल किसी खास वैचारिक चिंतन को लेकर चलनेवाले लोग ही साहित्य की मुख्यधारा कहे जा सकते हैं? आज हिंदी साहित्य की तथाकथित मुख्य धारा के स्थापित मठाधीश–मठाधीश कैसे बने, इनके इस तमगे का कोई इतिहास नहीं है। यह हमारे दिमाग की उपज है और हमें इन खेमों से बाहर रहकर सामाजिक सरोकारों की कहानियों को प्रश्रय देना होगा।

हाँ, प्रवासी साहित्य के नाम पर पाठकों के सामने अल्लम-बल्लम न परोसा जाये। विदेश में रहकर लेखन करनेवाले रचनाकारों को अपने लेखन में सामाजिक सरोकार, वहाँ के परिवेश को लाना होगा। सिर्फ सेक्स या पारिवारिक विघटन न दिखाकर बल्कि, उन कारणों को भी दिखायें जिनसे ये परिस्थितियाँ पैदा हुईं और समाधान भी दिखायें। समाधान न दिखाकर दूसरे रास्ते पर चल देना तो कोई साहित्य न हुआ। रचनाकारों को खुद की रचनाओं को फिल्टर करना होगा और स्वस्थ रचनाएं देना होगा जो पाठकों के लिये प्रेरणा बनें न कि सिरदर्द बने।

रामावतार त्यागी का एक गीत जो लेखकों के बीच के स्तर और अस्त्र दोनों को उरेहता, उधेड़ता-सा लगता है, आपके समक्ष प्रस्तुत है और इसी के साथ मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ–

मैं भी कुछ लिखता हूँ
हाँ तुम भी लिखते हो
मेरे भी ग्राहक हैं
हाँ, तुम भी बिकते हो
होने को फिर भी कुछ अंतर तो होता है
पंडित के श्लोकों में, गणिका के मुजरे में।

कितनी शानदार आलोचना है यह लेखन के स्तर को जाँचने, परखने के लिए। मुख्यधारा की भी चौहद्दियां प्रशस्ति होती रहती हैं, उनमें दाखिले की जगह होती है। पर जो मुख्यधारा में शामिल किये जाने या होने की चिंता में ही दुबला हुआ जा रहा है, ऐसे लेखक का कुछ नहीं किया जा सकता।

इस आलेख में समाविष्ट कहानियाँ - प्रवासी दुनिया से साभार।
फेसबुक पर साहित्यिक मित्रों के विचार।

●

लघु कथा

खाली आँखें

✦ **शैलजा सक्सेना, कनाडा**

पड़ौस का कल्लू पुलिस वाले के साथ लगभग भागता हुआ सा आ रहा था जब रामरती ने उसे देखा। "ये ही है जी किसना मजूर की बीवी"। पुलिस वाले ने अजीब निगाहों से उसके लाल मुँह को देखा. .आँख के नीचे सुबह की मार का कालापन मौजूद था, गाल पर किसना के हाथ की अँगुलियों की छाप जैसे अभी भी मौजूद थी। उसके हाथ बर्तन माँजते-माँजते रुक गये।..मन का कसैलापन होठों तक उमड़ने को था, "अब क्या कर दिया मुए ने।" सिपाही ने रामरती की प्रश्नवाचक निगाहों के उत्तर में केवल इतना कहा..." "थाने चलना होगा, अभी साथ में" हाथ धोकर जब तक वह झुग्गी से बाहर आई, औरतों, बच्चों और काम पर जाने से पीछे छूट जाने वाले 6-7 मर्दों का एक छोटा सा हुजूम वहाँ जमा हो गया था। कल्लू किसी के कान में फुसफुसा कर कुछ कह रहा था। रामरती जब चली तो तरस खाने वाली निगाहों से देखते हुए उसके साथ कई लोग चल पड़े। वह कुछ घबरा तो गई थी, पर उसे यही लगा कि पैसों के लिये उसकी कुटाई कर के जब किसना निकला होगा तो भिड़ गया होगा किसी से, अब बंद पड़ा होगा हवालात में, उसका वश चले तो कभी न छुड़ा कर लाये..."साला, हरामी".. सुबह की बकी गालियाँ उसकी जुबान पर लौटने लगीं..चार साल हो गये उसकी शादी को और चार साल हो गये उसे लात, घूँसे खाते हुए, आज तो बाहर निकलने से पहले ही पीटना शुरू कर दिया था, और जब किसना ने नाभि के नीचे उसे लात मारी थी, तो वह चंडी बन गई थी, गालियाँ देती जब वह उसकी तरफ झपटी तो किसना झुग्गी से तीर की तरह निकल गया था..लगभग भागते हुए. पर रामरती की ऊँची आवाज़ ने उसका पीछा किया था.." तू मर क्यों नहीं जाता..साला.. हरामी..." और नाभि के नीचे अपने बढ़े हुए हर्निया को पकड़ कर वह 10 मिनट तक कराहती रही थी...

और जब थाने में आकर थानेदार ने यांत्रिक ढँग से उठकर बेंच पर पड़े किसी सामान के ऊपर से कपड़ा हटाया था..तो उसे झुरझुरी आ गई थी। सामने ट्रेन से कटी, खून में लिथड़ी किसना की लाश पड़ी थी।...दो मिनट तक वह सुध भूल कर भौंचक्की सी उसे ताकती रही....फिर उसका मन करने लगा कि वह हँसे और तब तक हँसती चली जाये जब तक कि उसकी आँखों से आँसू न बहने लग जाएँ और नाक से पानी...पर सारे थाने की और साथ आये लोगों की आँखें उस पर गड़ी थीं।

एकाएक होश आने पर वह नाक से अचानक बह आये पानी को पोंछने लगी और पल्लू से खाली आँखें मसलने लगी।

●

लंदन से हिंदी प्रसारण का माहात्म्य

✦ कैलाश बुधवार, हैरो, इंग्लैण्ड

बीसवीं सदी के जिस चमत्कार ने बेतार के तार से दुनियां के दूर-दूर कोनों को जोड़ दिया, वह है रेडियो प्रसारण। चाहे कोई बियाबान में हो, निर्धन या निरक्षर हो, बटन घुमाते ही धरती के किसी भी छोर से अपना नाता जोड़ सकता है। जो जादू अपनी भाषा में तत्काल अपनों का हाल ला सके, उसे सुनने को किसके कान उत्सुअक नहीं होंगे।

चाहे बंगला देश के युद्ध का समाचार हो या भोपाल के गैसकांड की त्रासदी, खबर की सच्चाई जानने के लिये स्वदेश में जिस रेडियो की ओर सबके कान लगे रहते थे, वह था, बी. बी. सी. का हिंदी प्रसारण। कहीं की भी जब भी कोई नई खबर कौंधती थी तो हर किसी की पहली कोशिश यही होती थी कि यह पता चले कि बी. बी. सी. पर इस बारे में क्या कुछ सुनने को मिला।

जहां इतिहास के पन्ने युद्धों की मारकाट, राजवंशों की कलह और जातियों की खूरेजी से रंगे पड़े हैं, वहीं कहीं कहीं ऐसी तारीखें भी दिख जाती हैं जिनकी महत्ता पर उस वक्त किसी का ध्यान नहीं जा पाता पर बाद में जिनकी पहुंच देर तक यादगार बन जाती है। सन् 1940 की 11 मई को हुई एक साधारण सी शुरुआत थी, एक ऐसा ही संयोग था जिस घड़ी लंदन से हिंदुस्तानी में रेडियो प्रसारण शुरू हुआ। भारत में अभी ब्रिटिश राज खत्म नहीं हुआ था, दुनियां दूसरे विश्व युद्ध की लपटों में घिरी हुई थी, लाखों भारतीय सैनिक अपनी भूमि से दूर नाजी सेनाओं से जूझ रहे थे। ऐसे में स्वदेश में अपनों से उनका संपर्क जोड़ने के लिये और उन्हें अपनी भाषा में खबरों की जानकारी से अवगत कराने के लिये बी. बी. सी. ने दस मिनट के हिंदुस्तानी में प्रसारण की शुरुआत की।

बी. बी. सी. विश्व सेवा का यही प्रसारण कुछ दशकों में एक से बढ़ते-बढ़ते चार सभाओं में हर रोज होने लगा और 1980 में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार बी. बी. सी. के हिंदी श्रोताओं की नियमित संख्या साढ़े तीन करोड़ से ऊपर पहुंच चुकी थी। हजारों मील दूर से आते प्रसारण पर हिंदी के श्रोताओं की निष्ठा का एकमात्र रहस्य ये था कि उन्हें घर बैठे अपनी भाषा में दुनियाभर का हाल मिलता रहता था, जिस पर सभी को भरोसा रहता था कि जिसमें लाग-लपेट की गुंजाइश न के बराबर थी।

वह क्या तिलस्म था जिससे देश देश के अलग-अलग इतने श्रोता अपनी भाषा में बी. बी. सी. के प्रसारण की प्रतीक्षा में रहते थे। हिंदी में हो या और किसी भाषा में, बी. बी. सी. की विश्व सेवा की लोकप्रियता का एक ही रहस्य था कि सच्चाई छिप नहीं सकती, चाहे कोई यत्न कर लिया जाये। फिर कौन ऐसा होगा जिसे सही जानकारी की तलाश न हो। सही जानकारी पाने की उत्सुकता हर मनुष्य में, वह कहीं का हो, जन्मजात है। एक शब्द में बी.बी.सी. की विश्वसनीयता का आधार यही सिद्धान्त था कि बिना लाग-लपेट के सही सही जानकारी जहां तक संभव हो, तत्काल प्रसारित की जाये। सच्चाई को तोड़ना-मरोड़ना या छिपाना या दबाना कोरी भ्रान्ति है, सच्चाई कभी न कभी बाहर आकर रहती है।

इस मंच पर काम करनेवालों को भरोसा था कि किसी निहित स्वार्थ के हस्तक्षेप के आगे किसी को अपनी गर्दन नहीं झुकानी। बी. बी.सी. विश्व सेवा की एक ही नीति थी कि उसकी कोई नीति नहीं थी। हर प्रसंग के बारे में चेष्टा ऐसी हो कि हर पक्ष का दृष्टिकोण सामने आ सके ताकि श्रोता स्वयं हर तर्क को नाप-तौलकर अपनी राय बनाये। इस सिद्धान्त के चलते और बी.बी.सी. के सारे संसाधनों तक अपनी पहुंच पर हिंदी के इस छोटे से एकांश ने लाखों-करोड़ों का विश्वास जीत लिया था।

इसे सुनने वाले केवल विद्वान वर्ग के लोग ही नहीं थे, दूर दराज गांवों में रहने वाले ऐसे निरक्षर जिनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर था, वो भी दुनिया भर से मिली जानकारी पर वैसा ही दावा कर सकते थे जो विश्वविद्यालय के किसी स्नातक को नसीब होती।

हिन्दी का यह एक संपूर्ण रेडियो स्टेशन था जिसमें समाचारों के साथ साथ उनकी समीक्षा, व्यापार का आर्थिक उतार-चढ़ाव, विज्ञान की उपलब्धियां, खेलकूद-संगीत, मनोरंजन की सारी सामग्री घर बैठे हर रोज मिलती थी।

यह स्वाभाविक है कि चाहे राजनेता हो, विचारक हो या जन साधारण का मामूली मजदूर, अपने चारों ओर क्या हो रहा है, यह जानकारी पक्की करना जरूरी समझता है, वह जानकारी जो दुनिया के हर महाद्वीप से खबरों में या विवेचना में एकत्र होती थी-हिंदी श्रोताओं को घर बैठे सुबह-शाम मिलती रहती थी अपनी भाषा में, अपने प्रसारकों के स्वर में।

बुश-हाउस की पांचवीं मंजिल पर यह एकांश एक कक्ष में था, जहां हिंदी के सारे कार्यक्रम तैयार होते थे। स्वदेश से आनेवाले अतिथियों में कोई नेता, कोई लेखक, कोई संगीतज्ञ, कोई कलाकार ऐसा नहीं हो सकता था जिससे वहां ये वार्ता न हुई हो। हिंदी के प्रसारक अपनी-अपनी विधा में पारंगत थे, जिस क्षेत्र में भी उन्होंने महारत हासिल की हो वहां की जिम्मेदारी में शामिल होने के साथ, हर कार्यक्रम के लिये उनका सक्षम होना अनिवार्य था। हर प्रसारक को यह आभास था कि किसी विचारक को, किसी लेखक को, किसी नेता को, किसी अभिनेता को वह सुलभ नहीं है, जो उन्हें है। किसी

की भी अभिव्यक्ति, विचारों की या कला की पहुंच उतनी दूर तक नहीं हो पाती जो प्रसारक के शब्दों की तत्काल करोड़ों तक हो जाती है। पर साथ ही हर प्रसारक को ये भी मालूम था कि माइक्रोफोन पर हुई एक गलती लाखों कानों तक पहुंचकर लाखों गुना हो जाती है।

हिंदी अनुष्ठान से जुड़े नामों में ऐसी अनेक हस्तियां वहां अपने काम की छाप की याद दिलाती हैं जिन्होंने देश में अपना नाम कमाया। दूरदर्शन के महानिदेशक श्री हरिश्चंद्र खन्ना, आकाशवाणी के संचालक श्री नारायण मेनन, प्रसिद्ध अभिनेता श्री बलराज साहनी कभी अपने प्रारंभिक कार्यकाल में यहां काम करने आये थे। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक जॉर्ज ऑरवेल कभी इस विभाग में प्रसारण के लिये लेख लिखते थे।

लंदन के बुश हाउस में स्थित हिंदी अनुष्ठान चाहे छोटा रहा हो पर हिंदी की ही तरह वहां से विश्व की चालीस भाषाओं में प्रसारण होता था। चाहे जहां का समाचार हो, उसकी मीमांसा के लिये उस विषय के, उस क्षेत्र के प्रसारक तत्पर मिलते थे। दुनिया भर के अलग-अलग प्रदेशों से आये विशेषज्ञों की जानकारी हर विभाग के लिये सुलभ थी।

वहां की कैंटीन में, वहां के क्लब में, वहां के गलियारों में हर रंग के, हर जाति के, हर प्रदेश के, हर महाद्वीप के प्रसारक एक दूसरे के साथ उठते-बैठते, साथ-साथ काम करते दिखते थे। वहां काले-गोरे का भेद नहीं था, धर्म, जाति, भाषा, राजनीति का भेद नहीं था। अमीर-गरीब देश से आये, छोटे-बड़े देश से आये सभी अपनी अपनी भाषा के प्रसारण की तैयारी में जुटे रहते थे। वहां साथ साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलनेवाले यह साबित करते थे कि एक मंच पर बिना खींचातानी के अलग अलग देशों के लोगों का साथ जीना, जीवन का आनंद लेना संभव है।

मैं अपने को सौभाग्यशाली मानता हूं कि मुझे एक ऐसे मंच पर काम करने का अवसर मिला जहां से मैं अपने देश की, अपने प्रदेश की सही पहचान, सही जानकारी, दुनिया भर की भाषाओं में होनेवाले प्रसारणों में पहुंचा सका। जहां मुझे यह प्रतिष्ठा मिली कि रिटायर होने के इतने वर्षों बाद भी अपने प्रदेश के हर प्रसंग पर आज भी मेरी राय, मेरी समीक्षा सही मानी जाती है, मेरा सुझाया-समझाया निर्णय सही शुमार किया जाता है।

●

लघु कथा

चादर

✦ **रेखा मैत्र, अमेरिका**

इनाया देर तक सोचती रही कि उसकी ननद कितनी अजीब है ! एक तरफ उस पर लाखों खर्च कर उसका बच्चा अमरीका में किया ! दूसरी ओर इस पुरानी चादर को मेरे बच्चे को उढ़ा दिया ! कहीं इसके ओढ़ने से बच्चे को एलर्जी ही न हो जाय ! डरते-डरते उसने कह ही दिया, "दीदी, चादर बदल दूं ? मैली सी लग रही है!"

"जी नहीं, ये धुली हुई चादर है, पुरानी होने के कारण रंग फीका पड़ गया है ! आयुष्मान आज यही चादर ओढ़ेगा !" इनाया से रहा नहीं गया ! पाँव पटकती, बड़बड़ाती दूसरे कमरे में चली गयी।

सास को देखते ही चीखी, "आप तो कहती थीं कि दीदी बहुत समझदार हैं, मुझे तो काफी झक्की लगीं !"

"क्यों ? क्या किया उसने ?"

"अरे देखिये न, मैंने उनसे ये मैली चादर हटाने को कहा ! उन्होंने मुझे डांट कर भगा दिया और कहा कि आज आयुष्मान यही ओढ़ेगा !"

माँ दूसरे कमरे से ही बोलीं, "उससे कहो कि माँ बदलने को कह रही हैं !"

इस विषय पर मैं किसी की नहीं सुनूंगी !" मैंने लिविंग रूम से आयुष को ममता से निहारते हुए एलान कर दिया !

"ऐसे क्या लाल लगे हैं तेरे इस फटे हुए चादर में, ज़रा मैं भी तो देखूं"-कहती हुई माँ लिविंग रूम की तरफ हो लीं !

देर तक कभी चादर को घूरती कभी मुझे, लगा ये चादर नहीं अतीत का पर्दा है जिन्हें बेधती उनकी नज़रें कुछ तलाश रही हैं ! क्या हुआ ? तुम ठीक हो न ?" मेरे सामने माँ का चालीस साल पहले का चेहरा कौंध गया ! लालटेन की मद्धिम रोशनी में मुश्किल से सुई में रेशमी घागा पिरोता हुआ उनका ममता से जगमगाता सा चेहरा !

"इनाया तुम इधर आओ। ये चादर करीब चालीस साल पुरानी है, जब मैं पहली बार नानी बनने वाली थी ! बड़े चाव से मैंने अपने दोहते के लिए चादर काढ़ी थी। जब दोहते का जन्म हुआ तो मेरी जिठानी ने उसे पुराने फैशन का बता कर देने से मना कर दिया, तब इसे मैं अगले दोहते को देने के लिए सम्हाले रही, क्योंकि इसे मैंने बड़े प्यार से और बड़ी मेहनत से बनाया था ! इसके बच्चे के लिए बड़े डरते-डरते यहाँ लाई थी ! इसने बड़े शौक से अपने दोनों बच्चों को ये चादर उढ़ाई थी। मुझे क्या पता था कि वो पीली-सी चादर मेरी भुलक्कड़ बच्ची आज भी सम्भाले हुई है और दोहते को मेरा आशीर्वाद उढ़ाना नहीं भूली है !"

●

यू.के. में हिंदी–ब्रिटेन में हिंदी रेडियो के पहले महानायक रवि शर्मा

✦ तेजेन्द्र शर्मा, यू.के.

साठ और सत्तर के दशक में युनाइटेड किंग्डम में लोकल हिन्दी मीडिया केवल नाम मात्र के लिए ही मौजूद था। प्रयास तो बहुत हुए, किन्तु निरंतरता बरकरार रख पाना शायद बहुत कठिन और दुश्कर काम रहा होगा। हिन्दी की अपनी समस्या यह है कि वह भारतीयता की पहचान बन कर उभर नहीं पाई है। शायद यही कारण रहा होगा कि पंजाबी, गुजराती, बंगाली अपने क्षेत्रीय स्वाद को बचाए रहीं जबकि हिन्दी सबकी होने के कारण किसी की भी नहीं हो पाई।

प्रिंट मीडिया की ओर देखते हैं तो मात्र एक हिन्दी का साप्ताहिक समाचार पत्र दिखाई देता है अमरदीप। और वह भी वरिष्ठ पत्रकार जगदीश मित्तर कौशल की जीवट-लगन का ही नतीजा है जो यह समाचार पत्र करीब 32 वर्षों तक प्रकाशित होता रहा। साहित्यिक पत्रिका के रूप में भी एक ही मिसाल है–भाई पद्मेश गुप्त द्वारा संपादित त्रैमासिक पत्रिका 'पुरवाई' जो कि भारत और इंग्लैण्ड के साहित्यकारों के बीच एक पुल का काम कर रही है।

आज इंग्लैण्ड में टेलीविज़न पर भारत से स्टार, ज़ी, सोनी, बी4यू आदि चैनल आसानी से उपलब्ध हैं लेकिन वो भी भारत के चैनल अधिक हैं। स्थानीय स्वाद की वहां भी कमी दिखाई देती है। और जो दो एक प्रयास हुए भी, वो टिक नहीं पाए। जहां तक रेडियो का प्रश्न है युनाइटेड किंग्डम में बहुत से लीगल इ-लीगल रेडियो शुरू हुए लेकिन यहां के हिन्दी रेडियो का इतिहास सनराइज़ रेडियो के संघर्ष की दास्तान का पर्यायवाची है और सनराईज़ रेडियो का एक ही अर्थ है, यानि कि रवि शर्मा।

रवि शर्मा से बातचीत उन्हें अतीत के झरोखों में ले जाती है। लेकिन जब वे बात करते हैं तो ऐसा महसूस होता है जैसे कल ही की बात हो।

जब भारत में रहा करते थे तो रेडियो पर बी. बी. सी. की हिन्दी सेवा सुन सुन कर रोमांचित हुआ करते थे। किन्तु जब लंदन आए तो पता चला कि वह तो केवल एक छलावा था। बी. बी. सी. की हिन्दी सेवा आप लंदन में सुन ही नहीं सकते थे। मैंने एक ग्रूंडिग का ट्रांज़िस्टर भी खरीदा जिसमें शॉर्ट वेव की सुविधा थी। लेकिन रेडियो के साथ कुश्ती करने के बावजूद मैं कैलाश बुधवार, ओंकारनाथ श्रीवास्तव, रजनी कौल, और राज नारायण बिसारिया की आवाज़ नहीं सुन पाता था। ऑल इंडिया रेडियो सुनने का भी प्रयास करता था, लेकिन आवाज़ कट कट कर आती थी। भारत ने कभी इस बात को महसूस नहीं किया कि विश्व तक पहुंचने कि लिए मीडिया कितना ज़रूरी है'। भारत से बाहर बसी एशियन कम्यूनिटी के लिए कभी नहीं सोचा। बी. बी. सी. टेलीविजन पर सुरेश जोशी, चमन लाल चमन, महेन्द्र कौल कभी कभार वीकेण्ड पर कोई प्रोग्राम दिया करते थे। हिन्दी फिल्मी गीतों के लिए लोग तरस जाया करते थे। देश का कोई समाचार भी नहीं मिलता था। हिन्दी की मीडिया में नामौजूदगी भी दूसरी पीढ़ी में हिन्दी न पहुंच पाने का एक मुख्य कारण है।

ऐसे में अवतार लिट ने अपना गैरकानूनी रेडियो स्टेशन शुरू किया–सीना रेडियो। जैसे ऐलान था कि हम सीना तान कर काम कर रहे हैं, कर लो जो करना हो। रेडियो एफ एम चैनल पर आता था। पहुंच कम थी। डिपार्टमेण्ट ऑफ ट्रेड एण्ड इंडस्ट्री (डी टी आई) अपना काम करता था। वो छापा मारते थे, मशीनें उठा कर ले जाते थे, अवतार लिट डटे रहे। अवतार लिट से मेरी भी मुलाकात हुई। उन्होंने मुझे कोई खास घास नहीं डाली। सुरेश जोशी ने भी कोई खैर मकदम नहीं किया। लेकिन मैं निरुत्साहित नहीं हुआ। जुटा रहा। शहर में एक और भी गैरकानूनी रेडियो था संगम रेडियो। सब अपने अपने स्तर पर संघर्ष कर रहे थे।

फिर एक बार अवतार लिट घर आए, और अंग्रेज़ी में बोले 'यू कैन वर्क फॉर मी। आई विल पे।' उस समय के हिसाब से अच्छे खासे पैसे भी दिए। मैंने शर्त रखी कि गैरकानूनी रेडियो में वहां आकर काम नहीं करूंगा, अगर पुलिस ने पकड़ लिया तो जेल के चक्कर काटने पड़ेंगे। मेरी मध्यवर्गीय सोच ! अवतार लिट ने कुछ देर के लिए सोचा और बोले, चलो, तुम मेरे लिए घर से ही प्रोग्राम रिकॉर्ड कर दिया करो। लेकिन 'लाइव' प्रोग्राम का थ्रिल ही कुछ अलग होता है। कई बार सुबह छह बजे उठ कर गैरकानूनी रेडियो पर भी काम करने पहुंच जाता था। एक बार पुलिस ने पकड़ भी लिया। अवतार लिट ने साथ दिया। लेकिन यहां की पुलिस हरियाणा पुलिस की तरह डंडे नहीं मारती। सभ्य पुलिस है।

एक बार स्थिति आई कि सीना रेडियो कुछ अर्से के लिए बंद करना पड़ा। अवतार लिट ने कहा कि तुम किसी और जगह काम नहीं करोगे। तुम टेलेंटिड हो, तुम्हें भटकने की ज़रूरत नहीं।

अवतार लिट के घर पर ही विज्ञापन बनते थे। फिर हमने मिलकर जनता से हस्ताक्षर कैम्पेन चलवाया। मैंने भी उसमें बहुत भागदौड़ की। लोगों से सिग्नेचर और सपोर्ट-लेटर इकठ्ठे किए। और हम कानूनी तौर पर 1413 एफ एम पर लाइव हो गये। लंदन में पहला भारतीय, कानूनी रेडियो। वैसे मज़ेदार बात यह है कि जब रेडियो गैर-कानूनी था, तब भी पुलिस और सिविक अथॉरिटी हमारे यहां संदेश प्रसारित करवाते थे, क्योंकि वे जानते थे कि एशियन समुदाय तक अगर अपनी आवाज़ पहुंचानी है तो इसके अलावा कोई चारा नहीं है। है न मज़ेदार बात, लीगल संस्थाएं एक इल-लीगल रेडियो

का इस्तेमाल करें। आज अवतार लिट के अलावा, इल-लीगल दिनों का कोई भी साथी सनराइज़ रेडियो में नहीं है। एक अजीत पनेसर हैं, जिनसे शिफ्ट वर्क के चलते मुलाकात ही नहीं हो पाती। लेकिन उन दिनों की यादें तो मेरी धरोहर हैं।

अवतार लिट का मानना है कि रवि शर्मा सनराइज़ रेडियो का एक अटूट हिस्सा है। एम. ए., एम. एड. किये रवि शर्मा स्थानीय हिन्दी रेडियो के प्रसारकों में सबसे अधिक वेतन पाने वाले कलाकार हैं। उनका कहना है कि बी.बी.सी. में काम कर के पत्रकारिता की भूख तो शांत हो जाती है, लेकिन आपके भीतर का कलाकार असंतुष्ट रह जाता है। इसके लिए कामर्शियल रेडियो ही सही जगह है।

मुझे अपने स्टेज शो लेकर मॉरीशस, जर्मनी, स्वीडन, हॉलैण्ड, नार्वे और रीयूनियन जाने का मौका मिला है। सोचिए, रोहतक के निकट एक हरियाणवी गांव टटोली में जन्मा, निम्न मध्य-वर्ग का एक लड़का, जो अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए सप्ताह में एक दिन पेडल रिक्शा चलाता था, आज विश्व भर के दौरे कर रहा है। मेरे दादाजी, पिताजी सभी अध्यापक थे। हम चार भाई और दो बहनें हैं। रेडियो का सफर मैंने 1976 में ऑल इण्डिया रेडियो, रोहतक से शुरू किया था। मैंने विवाह 1985 में लंदन में ही किया। जन्म संगिनी का नाम है आशा किरण जो कि सरकारी महकमे में मैनेजर के पद पर काम कर रही हैं। एक पुत्र संकल्प और पुत्री रागिनी अब बड़े हो गये हैं।

मैंने भी फिल्मों में जाने के बारे में सोचा था। खासतौर पर वहां के ग्लैमर के कारण। लेकिन पहले ''सरवाइवल'' का संघर्ष और उसके बाद नायक बनने की उम्र निकल गई। बस इसीलिए नहीं जा पाया। वो जैसे मिल्टन ने कहा है न ''इट इज़ बेटर टु रूल इन हेल, दैन टु सर्व इन हैवन !'' इसका अर्थ यह कदापि न लें कि लंदन नरक है। (एक मीठी सी हंसी)

अपने आजतक के रेडियो के सफर में मुझे कई पुरस्कार और सम्मान मिले हैं। एशियन फिल्म और मीडिया बरमिंघम का यू. के. एशियन अवार्ड, नेशनल डी.जे., बेस्ट ब्रॉडकास्टर अवार्ड, यू.के. हिन्दी समिति का संस्कृति सम्मान। यह कहना ठीक नहीं होगा कि मुझे सम्मान या पुरस्कार से कोई फर्क नहीं पड़ता। वास्तव में अच्छा लगता है जब कभी सम्मान या पुरस्कार मिलते हैं। लेकिन मुझे उनका लोभ नहीं है। काम कर रहा हूं, यदि सम्मान भी मिल जाते हैं, तो कहीं कुछ अच्छा लगता है। मैंने अपने जीवन में गल्तियां कर कर के सीखा है।

अच्छा तो तब भी लगता है जब लोग भीड़ में पहचान लेते हैं। रेडियो की एक विशेषता है रहस्यमयता। मैं बचपन से हिन्दी के समाचार सुना करता था तो कई वर्षों तक तो यह भी नहीं जान पाया कि विनोद कश्यप महिला हैं या पुरुष। ऐसे ही देवकी नंदन पांडेय, अशोक वाजपेयी आदि के नाम और उनकी आवाज़ से तो पूरा हिन्दी जगत वाकिफ था लेकिन उनके चेहरों पर एक रहस्य का आवरण चढ़ा हुआ था। मैं इस मामले में कुछ अधिक भाग्यशाली हूं, कि मेरे श्रोता और प्रशंसक मुझे स्टेज शो करते, मंदिर में भजन गाते, टेलीविज़न पर विज्ञापनों में देख चुके हैं। इसलिए पहचान जाते हैं। मेरी प्रभु से बस एक ही प्रार्थना है कि मुझमें घमण्ड ना आने पाए और मेरा अपने प्रशंसकों के साथ प्रेम का रिश्ता यूं ही बना रहे।

जो हिन्दी का हाल है, वही हिन्दी मीडिया का भी हाल है। ब्रॉडकास्टिंग में भी अंग्रेज़ी का वर्चस्व सभी सीमाएं लांघ गया है। संचार साधनों और मीडिया में अंग्रेज़ी बुरी तरह से हावी है। रही सही कसर कम्पयूटर ने पूरी कर दी है। भारत के फिल्मी कलाकार कमाते हिन्दी फिल्मों से हैं, खाते हिन्दी फिल्मों का हैं, लेकिन एक दो को छोड़ कर, बोलते सभी अंग्रेज़ी में हैं।

सनराइज़ रेडियो की मोनोपोली तोड़ना आसान काम नहीं है। लेकिन मैं यह मानता हूं कि श्रोताओं के लिए विकल्प ज़रूरी होता है। प्रतियोगिता आवश्यक है और उससे क्वालिटी में निखार आता है। वैसे आजकल ब्रिटेन में सनराइज़ रेडियो एक तरह का मानदंड बन गया है जिस पर दूसरे चैनलों को खरा उतरना पड़ेगा।

मैं ब्रिटेन में बसे भारतीय या एशियन मूल के लोगों को यही कहना चाहूंगा कि यहां रहते हुए भी अपनी जड़ों से जुड़े रहें। रेडियो के ज़रिए हम यह प्रयास कर रहे हैं। परिवार के तौर पर आप अपनी, संस्कृति, त्यौहार, रीति रिवाज़ों को ज़िन्दा रखें, तभी विश्व में हमारे लिए सम्मान होगा। हम अपने शरीर का रंग तो नहीं बदल सकते लेकिन अपनी एक पहचान तो बना सकते हैं। और यह भी कि हिन्दी किसी संकीर्ण समाज या देश की भाषा नहीं है। उसकी उदारता यही है कि वह अन्य भाषाओं के शब्दों को अपने में समाकर, साथ चलने में सक्षम है।

●

विभिन्न रस और रंग बिखेरती अमेरिका की कविता

✦ सुधा ओम ढींगरा, नॉर्थ कैरोलिना, यू.एस.ए.

अमेरिका की धरती, हिन्दी और साहित्य के लिए अब बंजर नहीं रही है। हिन्दी के कई साधकों ने अपनी कलम का हल बनाकर इस धरती गूंथा है, सपनों के बीज डाले हैं और ममता की बेलें बोई हैं। कविताओं, कहानियों और उपन्यासों की अच्छी खासी फसल तैयार की है। भिन्न-भिन्न कविताओं के फूल रोज़ खिलते हैं। हिन्दी साहित्य में इनकी खुशबू ज़ोर-शोर से अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही है।

जीवन की व्यस्तता में भी अपनी कल्पनाशक्ति की तीव्रता के साथ भावनाओं से जुड़े रहना भी अपने आप में एक कला है। परिवेश के बदलाव के साथ-साथ भीतर का बदलाव और समाज को बदलने के संघर्ष से जूझ रही हैं यहाँ की अधिकतर कविताएँ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि कविता से मनुष्य-भाव की रक्षा होती है। सृष्टि के पदार्थ या व्यापार-विशेष को कविता इस तरह व्यक्त करती है मानो वे पदार्थ या व्यापार-विशेष नेत्रों के सामने नाचने लगते हैं। वे मूर्तिमान दिखाई देने लगते हैं। उनकी उत्तमता या अनुत्तमता का विवेचन करने में बुद्धि से काम लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती। कविता की प्रेरणा से मनोवेगों के प्रवाह ज़ोर से बहने लगते हैं। तात्पर्य यह कि कविता मनोवेगों को उत्तेजित करने का एक उत्तम साधन है। यदि क्रोध, करुणा, दया, प्रेम आदि मनोभाव मनुष्य के अन्त:करण से निकल जाएँ तो वह कुछ भी नहीं कर सकता। कविता हमारे मनोभावों को उच्छवासित करके हमारे जीवन में एक नया जीव डाल देती है। हम सृष्टि के सौन्दर्य को देखकर मोहित होने लगते हैं। कोई अनुचित या निष्ठुर काम हमें असह्य होने लगता है। हमें जान पड़ता है कि हमारा जीवन कई गुना अधिक होकर समस्त संसार में व्याप्त हो गया है।

यहाँ के कवियों ने भी बस अपनी संवेदनाओं को, भावनाओं को विश्व में व्याप्त किया है।

कवयित्री रेखा मैत्र के दस कविता संग्रह, पलों की परछाईयाँ, मन की गली, उस पार, रिश्तों की पगडंडियाँ, मुट्ठी भर धूप, बेशर्म के फूल, ढाई आखर, मोहब्बत के सिक्के, बेनाम रिश्ते और यादों का इन्द्रधनुष हैं। इनकी कविताओं का मूल स्वर कहीं अद्वैतवाद का दर्शन समेटे है, कहीं रिश्तों की पड़ताल करता प्रतीत होता है, कहीं विदेश की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से भरमाया लगता है और कहीं कविता अंतर द्वंद्व से गुज़रने का भाव भर है और तब अपने आपको पहचान पाना भी दुश्वार हो जाता है। आज के समय में अपने अस्तित्व की खोज ही अपने आप में एक अनूठा संघर्ष है। पिचकारी कविता के अंतर्गत पिचकारी का प्रयोग दिल को चीर जाता है ... तुम्हारी ढेरों पिचकारियाँ / अब भी वैसी ही पड़ी हैं / मैं उनसे तुम्हारी / भोजन नली में / तरल भोजन दिया करती / और तुम कहा करते / कि इसे सँभालकर रखना / होली पर इनसे रंग खेलेंगे ! रेखा मैत्र कल्पना की दुनिया से यथार्थ के कठोर धरातल पर ले आती हैं... कहती हैं- ''जब आस-पास का परिवेश मुझे हिला जाता है तो हरसिंगार सी झरती हैं कविताएँ। वेदना, खुशी, प्रवास सब मेरी कविता में घुल मिल जाते हैं।'' रेखा मैत्र के बिम्ब इनकी अभिव्यक्ति की शक्ति हैं।

कहानीकार, उपन्यासकार और कवयित्री सुदर्शन प्रियदर्शिनी के चार काव्य संग्रह हैं–शिखंडी युग, वराह, यह युग रावण है, मुझे बुद्ध नहीं बनना। सुदर्शन जी की कविताओं के प्रतीक इनकी पहचान हैं। आलोचक डॉ. कमल किशोर गोयनका इनकी कविताओं के स्वर का यूँ वर्णन करते हैं-''कवयित्री अपनी काव्य सृष्टि में हिन्दू मिथक पात्रों का प्रयोग करती है और कविताओं को अर्थवान बनाती है। यह एक प्रवासी मन का सांस्कृतिक बोध हेय जो कई कविताओं में दिखाई देता है।'' सुदर्शन प्रियदर्शिनी अपने काव्य लेखन के बारे में कहती हैं–''कमोवेश हर जीवन में विसंगतियाँ अपना डेरा डालती हैं। कोई हारता है और कोई उन्हें जीवन की चुनौतियाँ मान कर डटा रहता है। मैंने चुनौतियों के समक्ष घुटने न टेक कर उन्हें स्वीकारा है और जूझने की कोशिश की है। टूट-फूट बहुत होती है–अपनी भी और आत्मा की भी–फिर भी मुँह नहीं मोड़ा है। ऐसे में मेरी कविता हाथ-पकड़ कर, उन घावों को सहला देती है। कहीं ममता जैसा साया बन कर बचा लेती है तो कहीं मित्र बन कर कन्धा देती है। कविता उन तूफानों से बचाती है जो ऊपर से नहीं अंदर से गुज़रते हैं।'' इनकी कविताएँ पाठकों को संवेगों के उच्छवास में जकड़ लेती हैं। कुंती द्वार पर आई / दस्तक भिजवाई / कोई आवाज़ नहीं आई / सूरज बेगाना हो गया... रोज़ सिसकती है कुंती / रोज़ मंदोदरी का क्रंदन / नया कुछ भी नहीं / बस सीता का फिर हरण हो गया...। सुदर्शन जी के प्रतीक बाँध लेते हैं।

कहानीकार, कवयित्री अनिल प्रभा कुमार का कविता संग्रह तो हाल ही में आया है-उजाले की कसम। अनिल जी की कविताएँ दिल को छूती हैं तथा साथ ही क्रांति का बिगुल बजाती भी महसूस होती हैं। अजित कुमार लिखते हैं–''उस कारण को टोहने-टटोलने के क्रम में नारी-जीवन की ऐसी अनेक मार्मिक छवियों से मैं परिचित हुआ, जिनकी मात्र किताबी जानकारी ही अब तक हो सकी थी। यह कि शैशव से लेकर वार्धक्य तक 'फेयर सेक्स' को रिझाने-लुभाने,दबने-सहमने शंकित-पीड़ित रहने के लंबे सिलसिलों से गुजरने का 'अनफेयर दबाव' झेलना पड़ता है, और अपनी स्वाभाविक ममता-कोमलता बचाये रखने की ज़द्दोज़ेहद उसे टूट-टूट कर भी अपने आप को जोड़े रखने के कितने सबक सिखाती है... यह समूची कहानी कविताओं

में सीधे-सरल-सच्चे ढंग से पिरो दी गई है।'' अनिल प्रभा कुमार की भाषा सरल ज़रूर है पर विसंगतियों और विद्रूपताओं पर कटाक्ष करती, स्त्री विमर्श के तीखे तेवर समेटे हैं। इनकी कहानियों से अधिक कविताएँ स्त्री की पक्षधर हैं। माँओं, गान्धारियों, नारियों / खोल दो / आँखों पर बँधी इस पट्टी को। झुलसा दो / उन घिनौने हाथों को / जो बढ़ रहे हैं / नोचने तुम्हारे अंश को।

कहानीकार, कवयित्री, पत्रकार, सुधा ओम ढींगरा के धूप से रूठी चाँदनी, तलाश पहचान की, सफर यादों का, तीन काव्य संग्रह हैं। डॉ. आज़म लिखते हैं-''इनकी कविताओं में शब्दों के जब झरने बहते हैं, तो छंद मुक्त कविता में भी एक संगीत और लय का आभास होने लगता है। रोज़ाना के हँसने-हँसाने वाली रोने-रुलाने वाली स्थितियों को जहाँ शब्दों का पहनावा दिया गया है, वहीं ठोस फिलासफी पर आधारित रचनाएँ भी हैं, जिनको कई बार पढ़ने को जी चाहता है। लेखनी में इतनी सादगी है कि हम इसके जादू के प्रभाव में आ जाते हैं। विदेशों में रहने वालों का सृजन महज शुगल है, महज शौक है, जिस में साहित्य नदारद रहता है, इस तरह के पूर्वाग्रहों के जालों को दिमाग से साफ करने की क्षमता है सुधा जी की रचनात्मकता में।'' डॉ. आज़म समग्र काव्य पर लिखते हुए कहते हैं-''सुधा ओम ढींगरा की कविताओं में विविधता है, रोचकता है, जीवन के हर शेड मौजूद हैं। जमाने का हर बेढंगापन निहित है। पुरुषों का दंभ उजागर है, महिला का साहस दृष्टिगोचर है। दुनिया भर में घटित होने वाली मार्मिक घटनाओं पर भी पैनी नजर रखी हुई है, कई कविताएँ दूसरे देशों में घटित घटनाओं से उद्वेलित होकर लिखी हैं। जैसे ईराक युद्ध में नौजवानों के शहीद होने पर लिखी कविता हो या पाकिस्तान की बहुचर्चित मुख्तारन माई को समर्पित कविता, इस सत्य को उजागर करता है कि सहित्यकार वही है जो वैश्विक हालात पर न सिर्फ दृष्टि रखे, बल्कि उद्वेलित होने पर कविता के माध्यम से अपने विचार व्यक्त कर सके। इस तरह सुधा ओम ढींगरा स्त्री विमर्श के साथ एक ग्लोबल अपील रखने वाली कवयित्री हैं।''

कविता जिनकी साँसें हैं और काव्य की हर विधा में लिखने वाली अनीता कपूर के बिखरे मोती, कादम्बरी, अछूते स्वर, ओस में भीगते सपने एवं साँसों के हस्ताक्षर, काव्य-संग्रह हैं और दर्पण के सवाल, हाइकु-संग्रह है। रामेश्वर काम्बोज 'हिमाँशु' लिखते हैं-''अनीता कपूर जी की कविताएँ मुक्त छंद में होते हुए भी अपनी त्वरा और गहन संवेदना के कारण सबसे अलग नज़र आती हैं। इनकी कविताओं में प्यार और समर्पण केवल भावावेश के क्षण बनने से इंकार करते हैं, सच्ची आत्मीयता की तलाश जारी है, लेकिन केवल अपनी शर्तों पर।'' सहजता और सरलता लिए छोटी-छोटी कविताएँ हृदय में रमती जाती हैं। अनूठे बिम्बों ने कविताओं को एक अलग अस्तित्व, पहचान और स्वरूप दिया है। हम ओढ़नी के फटे हुए टुकड़ों की तरह मिले, कोख के बहीखातों में एक आग सी लग जाती है, चाँदनी के घुंघरू बाँधे इठलाती रक्सा सी हवाएँ आदि। जग का दर्द और कवयित्री की पीड़ा आत्मसात होकर कसक, तड़प, अनुनय, विनय, प्यार में बदल गए जो कविताओं में बिखरा पड़ा है। किसी भी रस की अभिव्यक्ति में नारी के आत्मसम्मान और स्वाभिमान का साथ नहीं छूटा। बिम्बों का तीखापन कवयित्री के कटु अनुभवों की छवि देता महसूस होता है।

Wordsworth defined poetry as "The spontaneous overflow of powerful feelings." वड्र्सवर्थ की ये पंक्तियाँ आशु कवि व गीतकार राकेश खंडेलवाल पर सटीक बैठती हैं। अंतर्जाल पर उन्हें गीतों का राजा कहा जाता है और वैराग से अनुराग तक, अमावस का चाँद, अँधेरी रात का सूरज, कविता संग्रह हैं तथा धूप गंध चांदनी, सम्मिलित कविता संग्रह है। छंद जिनकी कलम पर चुपके से आ बैठते हैं और सहजता से कागजों पर उतरते जाते हैं। कविता समूह की त्रिमूर्ति में से एक हैं आप। कवि-सम्मेलनों में गीतों के बादशाह कहलाए जाने वाले कवि राकेश खंडेलवाल जी कहते हैं-''भाव और विचार अपने लिये शब्द और रास्ता स्वयं ही तलाश लेते हैं, परन्तु मेरे सामने प्रारंभ से ही यही समस्या रही कि भाव जब भी मन में उठते हैं वह स्वतरू एक लय में बँधे हुए उठते हैं। कब किस धुन में वे स्वयं ढल जाते हैं इस पर मेरा अपना नियंत्रण नहीं।'' राकेश जी की उपमाओं का अंदाज़ निराला है।

छोटी-छोटी कविताएँ, नज़्में लिखने वाले अनूप भार्गव, ईकविता समूह के संचालक हैं और लिखते हैं-''न तो साहित्य का बड़ा ज्ञाता हूँ / न ही कविता का / भाषा को जानता हूँ / लेकिन फिर भी मैं कवि हूँ / क्योंकि ज़िन्दगी के चन्द / भोगे हुए तथ्यों / और सुखद अनुभूतियों को / बिना तोड़े मरोड़े / ज्यों की त्यों / कह देना भर जानता हूँ।'' यथार्थ और सत्य को बुनती, गड़ती इनकी कविताएँ सामाजिक परिवर्तन की बात भी कहती हैं और दर्शन से भीगे शब्द हृदय को छूते, बुद्धि को झकझोरते हैं। कवि सम्मेलनों में कविता कहने के निराले अंदाज़ के कारण ख़ासे प्रसिद्ध हैं और चेतना जगातीं इनकी कविताओं के अंदाज़ भी निराले हैं।

प्रतिभा सक्सेना का उत्तर कथा-खंड काव्य है। लोक रंग के गीतों, काँवरिया, नचारियाँ के लिए प्रतिभा जी बहुत प्रसिद्ध हैं। आदिकालीन कवि विद्यापति के बाद हिन्दी साहित्य में नचारियाँ नहीं दिखाई देती हैं और आपने इस तरफ पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। इनकी कविताओं की परिष्कृत भाषा है, जो आज के युग में कम ही कविताओं में देखने को मिलती है। कविताओं में हर रस का स्वर और स्वाद मिलता है और छायावादी युग का आनन्द भी। नचारियाँ का उदाहरण देखें-वाह, वासुदेव, सब लै के जो भाजि गये, / कहाँ तुम्हें खोजि के वसूल करि पायेंगे! / एक तो उइसेई हमार नाहीं कुच्छौ बस, / तुम्हरी सुनै तो बिल्कुलै ही लुट जायेंगे!

छायावादी युग में ही ले जाती हैं शशि पाधा की कविताएँ। पहली किरण, मानस मंथन, अनंत की ओर तीन कविता संग्रह हैं कवयित्री शशि जी के और कविता, गीत, नवगीत, दोहा, हाइकु यानी काव्य की हर विधा में आप लिखती हैं। महादेवी की परछाईं लगती हैं आप की कविताएँ। शशि जी कहती हैं-मेरी रचनाओं का मूल स्वर है 'प्रेम'। यह प्रेम चाहे माँ का अपनी संतान के प्रति हो, पति-पत्नी का हो, बच्चों का माता-पिता के प्रति हो या मित्रों का परस्पर स्नेह हो। मैं प्रेम को

केवल दैहिक, लौकिक प्रेम नहीं मानती बल्कि हर रिश्ते में, हर परिस्थिति में प्रकृति के लघुतम कण में भी जो लगाव/ जुड़ाव होता है, मैं उस प्रेम की बात कर रही हूँ। मुझे प्रकृति के प्रत्येक क्रियाकलाप में प्रेम की झलक दिखाई देती है। ना जाने कितने रूपों में प्रकृति हमें प्रेम के सुन्दर, सात्विक और कल्याणकारी रूप से परिचित कराती है। प्रेम मेरे जीवन दर्शन का बीज मंत्र है।'' शशि पाधा की कविताएँ प्रेम के कई सोपान पार कर गूढ़ रहस्य खोलती जाती हैं।

शकुंतला बहादुर की सशक्त भाषा और प्रगाढ़ शब्दों से कविता कहती हैं। प्रहेलिकाएँ बहुत सुंदर लिखतीं हैं। उपमाओं के साथ इनका नॉस्टेल्जिया भी एक कहानी कहता है। हर रंग में अपनी बात कहतीं हैं। कई कविताओं में रहस्यवाद की झलक भी मिलती है। एक प्रहेलिका का आनन्द लें–नर-नारी के योग से, सदा जन्म पाती / पैदा होते ही तो मैं, संगीत सुनाती / पल भर का जीवन मेरा / मैं तुरंत लुप्त हो जाती / जब जब मुझे बुलाए कोई / मैं फिर फिर आ जाती। (चुटकी-अँगूठा और उँगली का योग)

Emily Dickinson said–"If I read a book and it makes my body so cold no fire ever can warm me – I know that is poetry." युवा कवयित्री रचना श्रीवास्तव की कविताएँ ऐसा ही आभास देती हैं, क्षणिकाएँ, हाइकु, नवगीत, सेदोका, तांका, चोका सीधी सरल भाषा में पाठकों के मन को झकझोर जाते हैं। बिम्ब, उपमाएँ और अनूठे प्रतीक प्रयोग करके अपनी बात कहती हैं। मन के द्वार हज़ार, अवधी में हाइकु संग्रह है रचना का। क्षणिका की झलक देखें– बच्ची के मुट्ठी में / माँ का आँचल देख / अपनी हथेली सदैव / ख़ाली लगी।

प्रेम पर लिखने वाली उभर रही युवा कवयित्री शैफाली गुप्ता कहीं महाभारत के अभिमन्यु के साथ तुलना कर विरह की आग में जलते हुए भी अपने प्रेमरूपी चक्रव्यूह में जकड़ी जाती हैं और कहीं आस्तित्व की तलाश में न जाने जीवन के कितने बहतरीन पल खो देती हैं। शैफाली गुप्ता ना केवल हिन्दी कविताओं में दक्ष हैं, अंग्रेजी कविताएँ लिखने में भी अभिरुचि रखती हैं।

सशक्त युवा हस्ताक्षर अभिनव शुक्ल, जिनकी कविताएँ मंच, ऑनलाइन और पुस्तकों में धूम मचाती हैं, विशेषत: वे कविताएँ जो प्रवासी स्वर लिए हैं। 'पारले जी' और 'लौट जाएँगे' कविताएँ पाठकों को रुला देती हैं। अभिनव लिखते हैं – अलार्म बज बज कर / सुबह को बुलाने का प्रयत्न कर रहा है / बाहर बर्फ बरस रही है / दो मार्ग हैं / या तो मुँह ढंक कर सो जाएँ / या फिर उठें / गूँजें और 'निनाद' हो जाएँ। अमेरिका की पतझड़ पर लिखते हैं–लाल, हरे, पीले, नारंगी, भूरे, काले हैं / पत्र वृक्ष से अब अनुमतियाँ लेने वाले हैं / मधुर सुवासित पवन का झोंका मस्त मलंगा है / पतझड़ का मौसम भी कितना रंग बिरंगा है। अभिनव अनुभूतियाँ और पत्नी चालीसा आपकी पुस्तकें हैं और हास्य दर्शन-1 एवं 2 आपकी काव्य सीडी हैं।

युवा कवि अमरेन्द्र कुमार कहानीकार, व्यंग्यकार और गज़लकार भी हैं। 'अनुगूँज' कविता संग्रह प्रकाशित हो चुका है। आपकी कविताएँ दिमाग पर घेर डालती हैं और सोचने पर मजबूर करती हैं। प्रकृति के चित्रण की खूबसूरती देखें–रात ने लगाई / एक बज़ी सी बिंदी / चन्द्रमा की ओर जूड़े को सजा लिया / अनगिनत तारों से। जाने से पहले / उसने दिन के माथे पर / सूरज का टीका लगा दिया। यथार्थ से लिपटी एक कविता देखें–छोटे से छोटे / अथवा बड़े से बड़े / पुरस्कारों को देने / के साथ जो वक्तव्य / जारी किया जाता है / उसे सुन-पढ़कर / कई बार लगता है / कि वह सफाई है / अथवा आत्म-ग्लानि / या फिर / एक प्रकार का अपराधबोध।

अमेरिका का बरगद का वृक्ष वेद प्रकाश 'वटुक' की–बंधन अपने देश पराया, कैदी भाई बंदी देश, आपातशतक, नीलकंठ बन न सका, एक बूँद और, कल्पना के पंख पा कर, लौटना घर के बनवास में, रात का अकेला सफर, नए अभिलेख का सूरज, बाँहों में लिपटी दूरियाँ, सहस्त्र बाहू अनुगूंज के अतिरिक्त 23 काव्यसंग्रह और काव्यधारा 133 खंड (40 हज़ार कविताएँ) हैं। आपकी कलम ने विश्व भर में अन्याय और युद्धों के विरुद्ध शब्द उँड़ेले हैं। 'वटुक' जी ने 1971 से पूर्व अमेरिका में हो रही असमानता तथा वियतनाम युद्ध के विरोध में किये जा रहे संघर्ष के पक्ष में अपनी व्यथा व्यक्त की है। मानवीय अधिकारों को समर्पित कविताएँ लिखी हैं। भारत के 18 महीने के आपातकाल में अधिनायकवाद के विरोध में अनेक कविताओं का सृजन किया। हिन्दी साहित्यकारों के प्रख्यात शोधार्थी श्री कमल किशोर गोयनका जी के अनुसार प्रवासी भारतीयों में वटुक जी अकेले ही ऐसे हिन्दी कवि हैं, जिन्होंने आपातकाल के विरोध में हजारों कविताएँ लिखीं। स्वर्गीय कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने इनके 'आपातशतक' की प्रशंसा करते समय लिखा था : ''काव्य का ऐसा समापन तो गुरुदेव भी नहीं कर सकते थे।''

अमेरिका की काव्य बगिया का पीपल का पेड़ गुलाब खंडेलवाल के, सौ गुलाब खिले, देश वीराना है, पँखुरियाँ गुलाब की के अतिरिक्त पचास से ऊपर काव्यग्रंथ हैं। आपने गीत, दोहा, सॉनेट, रुबाई, ग़ज़ल, नई शैली की कविता और मुक्तक, काव्यनाटक, प्रबंधकाव्य, महाकाव्य, मसनवी आदि के सफल प्रयोग किए हैं, जो पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी द्वारा संपादित गुलाब-ग्रंथावली के पहले, दूसरे, तीसरे, और चौथे खंड में संकलित हैं तथा जिनका परिवर्द्धित संस्करण आचार्य विश्वनाथ सिंह के द्वारा संपादित होकर वृहत्तर रूप में पुन: प्रकाशित हुआ है।

इनके अतिरिक्त ग़ज़ल विधा में अंनत कौर, धनंजय कुमार, ललित अहलूवालिया, कुसुम सिन्हा, देवी नागरानी ने धड़ल्ले से अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। इससे पहले कि अमेरिका हड्डियों में बसे, अंजना संधीर भारत लौट गईं। सुषम बेदी, गुलशन मधुर, अर्चना पंडा, डॉ. कमलेश कपूर, कल्पना सिंह चिटनिस, किरण सिन्हा, बीना टोढ़ी, मधु माहेश्वरी, रजनी भार्गव, राधा गुप्ता, रानी सरिता मेहता, रेणू 'राजवंशी' गुप्ता, लावण्या शाह, विशाखा ठाकुर 'अपराजिता', कुसुम टण्डन, इला प्रसाद, नरेन्द्र टण्डन, घनश्याम गुप्ता, हरि बाबू बिंदल और राम बाबू गौतम आदि कई कवि-कवयित्रियाँ हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

●

ब्रिटेन में हिंदी कविता

✦ डॉ. वंदना मुकेश, बर्मिंघम, यू.के.

प्रवासी भारतीय विश्व में जहाँ-जहाँ गये हैं अपनी बहुरंगी संस्कृति का सुमन-सौरभ अपने साथ लेकर गये हैं और नये परिवेश में स्वयं को स्थापित करने की जद्दोजहद के साथ-साथ अपनी माटी, अपनी बोली-भाषा, साहित्य-संस्कृति को नये वातावरण में अपने विशिष्ट प्रयासों से जीवंत रखा है।

'ब्रिटेन में हिंदी कविता'—छोटे-छोटे चार शब्दों का यह छोटा-सा दिखनेवाला शीर्षक वास्तव में अपने आपमें एक सीमाहीन आकाश है। इस आलेख में विषय का एक विहंगावलोकन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। कविता मेरा विषय नहीं है एवं उपलब्ध सामग्री एवं समय-सीमा को ध्यान में रखते हुए यथामति विषय पर अपनी बात रख रही हूँ।

ब्रिटेन में हिंदी कविता-धारा का उद्गमस्थल या भगीरथ कौन है? यह पूर्ण शोध किये बिना किसी भी प्रकार का दावा करना उचित न होगा। इसकी चर्चा एक अलग लेख में की जा सकती है। हिंदी कविता की अजस्र किंतु विरल सी धारा एक लंबे समय से निरंतर प्रवाहित है किंतु इसके विकास का विशेष श्रेय जाता है 1991 में लंदन में नियुक्त भारतीय उच्च आयुक्त डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी को। वे स्वयं एक भाषाविद्, विचारक और साहित्य-रसिक थे। उनकी पत्नी कमला सिंघवी स्वयं हिंदी की जानी-मानी साहित्यकार थीं। उनके सहयोग और प्रेरणा से ही यू.के. के कई शहरों में हिंदी को बढ़ावा देनेवाली कई संस्थाओं का जन्म और विकास हुआ और ब्रिटेन के लंदन तथा अन्य शहरों में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रेमियों और लेखकों का एक बड़ा समुदाय सामने आया।

प्रतिवर्ष भारत से ख्यातिनाम कवियों को भारतीय उच्चायोग की सहायता से इन संस्थाओं द्वारा काव्य-पाठ हेतु आमंत्रित किया जाने लगा। इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि ब्रिटेन के विभिन्न शहरों से हिंदी प्रेमी जुड़ने लगे और उनके भीतर बरसों से सुप्त कवि हिलोरें मारने लगे।

इस दृष्टि से देखें तो ब्रिटेन में हिंदी कविता की आयु लगभग 30 वर्ष है; किंतु इतने अल्प समय में ब्रिटेन की हिंदी कविता ने विषय, रूप, भाव और भाषा की विविधता से विश्व साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है। आज ब्रिटेन में कवियों की कई पीढ़ियाँ एक साथ रचना-कर्म में संलग्न हैं। यहाँ लगभग दो सौ कवि अपनी रचनाओं से हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। इनमें से लगभग 120 कवियों के स्वतंत्र काव्य-संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। बहुतों की रचनाएँ अंतर्जाल एवं भारत एवं अन्य देशों से निकलनेवाली हिंदी पत्रिकाओं में नियमित प्रकाशित हो रही हैं, और सराही जा रही हैं।

जीवन और जगत को देखने तथा उस पर प्रतिक्रिया करने की प्रत्येक रचनाकार की एक वैशिष्टपूर्ण दृष्टि होती है जिसे वह अपने व्यक्तित्व के अनुरूप अभिव्यक्त करता है। दो देशों में निवास, विस्थापन के संघर्षों आदि ने इन रचनाकारों की अनूभूति को समृद्ध किया है। यही कारण है कि ब्रिटेन के इन कवियों का भाव-संसार अत्यंत गहन और विशाल है। कहीं विस्थापन का दंश, अतीत के गलियारों में विचरण करना, परदेस में यथार्थ के ठोस धरातल के कड़वे-मीठे अनुभव, तो कहीं द्विवेदी युग की-सी उपदेशात्मकता, स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ यथा प्रकृति का सौंदर्य-वर्णन, नितांत निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति, जीवन-रहस्यों के प्रति शोधात्मक एवं गहन चिंतनदृष्टि, बाजार संस्कृति के दुष्परिणाम, धर्म, समाज, राजनीति, समसामयिक घटनाएँ आदि कोई भी विषय इन प्रवासी रचनाकारों की दृष्टि से अछूता नहीं रहा है।

ब्रिटिश हिंदी साहित्य के प्रतिनिधि कवि डॉ. सत्येंद्र श्रीवास्तव, जो लगभग 57 वर्ष से ब्रिटेन में हैं, की रचनाओं में ब्रिटेन के जीवन की संपूर्ण एवं सजीव झाँकी देखने को मिलती है। फिर चाहे वह मिसेज जोन्स के एकाकीपन की व्यथा हो अथवा बाजारवादी समाज में मूल्य-क्षय की चिंता। लेकिन उनकी कविता का मुख्य स्वर आशावादी है।

तीसरे सप्तक और नई कविता की महत्वपूर्ण कवियित्री स्व. कीर्ति चौधरी की रचनाओं में नयी कविता की ताजगी दिखाई देती है। ब्रिटेन आकर एक प्रकार से उनके कविकर्म पर विराम सा लग गया; किंतु 'देश मेरा', 'कंगाली', 'वक्त' आदि रचनाएँ उनके लेखन की श्रेष्ठता को प्रमाणित करती हैं।

डॉ. गौतम सचदेव (अब स्वर्गीय) की रचनाएँ हमारी संवेदना को झंकृत करती हैं। इनके व्यंग्य पाठक का सामना समाज के सच से करवाते हैं। 'मुझे इंसानियत हो गई है', 'मेघदूत', 'कुर्सियाँ' आदि रचनाएँ जिंदगी के विविध क्षेत्रों पर सच्ची, तल्ख़ और बेबाक अभिव्यक्तियाँ हैं। कविता के विषय और कलेवर के अनुरूप भाषा में अंतर सहज ही परिलक्षित होता है। 'मुहूर्त्त' में वसंत के आगमन से सजी प्रकृति के सौंदर्य को उद्घाटित करते एकदम अछूते नवबिंब डॉ. गौतम की भाव और भाषिक समृद्धि का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

गीत और ग़ज़लों के लिये विख्यात सोहन राही के गीत 'कोयल कूक, पपीहा बानी, न पीपल की छाँव, सात समन्दर पार बसाया हमने ऐसा गांव' ने ब्रिटेन में ही नहीं बल्कि विश्व में धूम मचाई। श्रृंगार, और जीवन के विविध रंगों को सहज भाव से अपने गीत और ग़ज़लों में पिरोनेवाले सोहन राही एक जनप्रिय कवि हैं।

कॉवेन्टरी के प्राण शर्मा ब्रिटेन में हिंदी ग़ज़ल के सिरमौर शायर हैं। वे मानवता के शायर हैं, उन्हीं के शब्दों में कहें तो उनकी ग़ज़लें–'मुहब्बत ही मुहब्बत का सदा सन्देश है उसका / दिलों में नफरतें सबके मिटाती है ग़ज़ल प्यारे /' प्राणजी ने ब्रिटेन के अनेक ग़ज़ल लिखने वालों को माँजा, सँवारा और सिखाया भी है।

वेल्स के नेत्र विशेषज्ञ डॉ. निखिल कौशिक एक सशक्त रचनाकार हैं। उनके सिद्धहस्त शल्य चिकित्सक होने का गुण उनकी रचनाओं में सहज द्रष्टव्य है। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं की बारीक चीरफाड़ कर बहुत ही सफाई और सादगी के साथ बड़े-बड़े फलसफों का उद्घाटन करती है। 'तुम लंदन आना चाहते हो' एक बेहतरीन रचना है।

दर्शन और अध्यात्म के माध्यम से गहन जीवन-सत्य से साक्षात्कार कराती बर्मिंघम के चिंतक डॉ. कृष्ण कुमार की कविताओं में मृत्यु का बिंब बार-बार उभरता है। उनकी रचनाओं में पौराणिक एवं मिथकीय संदर्भ बहुलता दृष्टव्य हैं। गहराई और अर्थ का संगीतमय सम्मिश्रण होती हैं उनकी कविताएँ। विचार उनकी कविताओं पर हावी रहता है। 'राष्ट्र की पहचान', 'स्नेह का दीपक जलाओ, प्यार की बाती पुकारे', 'जिंदगी', 'आखिर ऐसा क्यों होता है' आदि उनकी जीवन दृष्टि को दर्शानेवाली उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। अपनी संस्था गीतांजलि के माध्यम से हिंदी और भारतीय भाषा की अलख जगानेवाले डॉ. कृष्ण कुमार ने बर्मिंघम और मिड्लैंड्स के अनेक हिंदी रचनाकारों को काव्य लेखन के लिये प्रोत्साहित किया और मंच प्रदान कर उनका पथ प्रशस्त किया।

इंग्लैड के एक खूबसूरत नगर यॉर्क बासी कवयित्री उषा वर्मा की काव्य-रचनाओं के मूल में गहन करुणा, एक छटपटाहट दृष्टिगत होती है। उनकी रचनाओं में अन्याय और विसंगतियों के प्रति विरोध का भाव है, 'इतिहास', 'ढूँढ रहा हूँ पिस्तौल' इसी श्रेणी की हैं, 'भूकंप के बाद' में व्यंग्य का तीखापन, धूप और छाँह के बिंब की चित्रात्मकता पाठक को सहज मोह लेती है। धर्म, दर्शन, समसामयिक विषयों पर सूक्ष्म दृष्टि और संदर्भगर्भित रचनाएँ उषाजी के गहन चिंतनशील व्यक्तित्त्व की परिचायक हैं।

यू. के. हिंदी समिति एवं पुरवाई की सह संपादिका एवं चर्चित कथाकार उषाराजे सक्सेना अपनी रचनाओं में जिंदगी के संदर्भ खोजती नजर आती हैं। आज की भटकन, राजनीतिक दाँवपेंच, मनोमस्तिषक के भीतर के अजाने संसार से साक्षात्कार, नारी विमर्श, भारत-दुर्दशा, मरती आदमियत के मध्य स्व की खोज इत्यादि सभी उनके चिंतन और चिंतना में निरंतर उभरते हैं। 'साँप और फरिश्ता' में मानवीय मूल्यों के ह्रास और उससे उपजी विडंबना का सटीक चित्रण है। 'मकड़ी के जाले सी' रचना में ओस आस्था का प्रतीक बनकर उभरती है। 'अबला' एक सशक्त रचना है। कवयित्री सदियों से प्रताड़ना की शिकार नारी का आह्वान ओजपूर्ण शैली में करती हैं–'उठ! / जाग! / निकल सुनहरे नाग-पाश से / अपनी धमनियों में भर, / भास्कर का प्रचंड तेज !'

यू.के. से हिंदी और अंग्रेजी की वेब पत्रिका लेखनी की संपादिका शैल अग्रवाल के लेखन का कैनवास अत्यंत विस्तृत है। उनकी रचनाओं में उभरे सशक्त बिंब पाठक के मन पर गहरा असर करते हैं। 'ममता', 'बिछुड़ते समय', सुबह आदि रचनाओं की सहजता और चित्रात्मक पाठक को लुभाती है। 'गणेश, शिव और नंदी', खोई हुई अस्मिता को तलाश करती है। उनकी परिनिष्ठि शैली प्रसाद युग का स्मरण कराती है।

दिव्या माथुर की रचनाएँ यों तो बाहरी जगत की बातें करती-सी लगती हैं किंतु वस्तुतः उनकी रचनाएँ अंतर्यात्रा का परिणाम हैं। इनकी कविताओं में कहीं तीखा क्षोभ झलकता है तो कहीं अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति। 'एक बौनी बूँद', 'बिवाई' जैसी अनेक कविताएँ अपनी संवेदनशीलता और भावात्मकता के कारण पाठक पर गहरा असर करती हैं। वहीं 'न घर का न घाट का', 'किरायेदार' आदि में उनकी रचनात्मकता, सृजनशीलता पाठक को चमत्कृत कर देती है। 11 सितंबर, 2002 की घटनाओं पर उनकी प्रतिक्रियाएँ पाठक को उन्हीं की भाँति झकझोर डालती हैं, स्तब्ध कर देती हैं और मनुष्यता पर प्रश्न उठाती हैं।

यू.के. की एकमात्र हिंदी पत्रिका पुरवाई के माध्यम से ब्रिटेन के 70 से भी अधिक कवियों को विश्व-पाठकों के सम्मुख पँहुचाने वाले डॉ. पद्मेश गुप्त ब्रिटेन में हिंदी के स्तंभ है। 'कबूतर', 'ऐन', 'छड़ी और घड़ी', 'बाढ़', 'बर्लिन दीवार' जैसी सशक्त भावपूर्ण और मार्मिक रचनाओं को देने वाले डॉ. पद्मेश गुप्त की दृष्टि समकालीन विषयों का सूक्ष्म विश्लेषण करती है, बहुत से नए बिंब प्रस्तुत करती उनकी रचनाएँ श्रोता/पाठक की संवेदना को गहरे छूती हैं। पुत्र-जन्म जैसा नितातं निजी अनुभव उनकी साहित्यिक सामाजिक प्रतिबद्धता को दर्शाते हुए सहज ही समष्टिगत अनुभव बन जाता है।

यू.के. में हिंदी कथा के पर्याय तेजेंद्र शर्मा की काव्य रचनाएँ भी पाठक पर गहरा असर करती हैं। उनका मस्तिष्क इस देश के अवदान की कद्र करता है। वे कहते हैं कि 'ये घर तुम्हारा है, इसको न कहो बेगाना' लेकिन फिर भी वे यह कहे बिना भी नहीं रह पाते कि 'पासपोर्ट का रंग..' बदलने के बाद भी न जाने क्यों इसे कभी अपना देश नहीं कह पाया। 'लंदन में बरसात' हो या 'टेम्स का पानी' भारतीयता एवं भारतीय संस्कारों के उनकी रचनाओं में सहज दर्शन होते हैं, भाव और विचार का सुंदर संतुलन इनकी कविताओं और ग़ज़लों में देखा जा सकता है।

युवा रचनाकार मोहन राणा एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। मोहन राणा की कविताएँ पाठक को बाहर के साथ-साथ भीतरी जगत की यात्रा की सूक्ष्मतम हलचल से सघनतम साक्षात्कार कराती हैं। मोहन राणा की विशिष्ट दृष्टि साधारण सी संवेदना को विशिष्ट बना देती हैं। उनके पाठक को उस विशिष्ट तक पँहुचने के लिये सजग, चौकस होना पड़ता है ताकि वह भी उस रस को ग्रहण कर सके। वे कहते हैं- 'बिना मुखौटों के पढ़ सकते हो तुम ये कविताएँ / . ... उतार के टाँक दो मुखौटों को दीवार पर / इन कविताओं में देख सकते हो तुम अपने को'। 'परसों का नाश्ता आज', 'किताब का दिन', 'बामियान', 'तीसरा युद्ध' आदि कुछ उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

लेस्टर की नीना पाल ग़ज़ल में खासा दखल रखती हैं। अपनी ग़ज़लों के बारे में वे स्वयं कहती हैं- 'नगमों के सिलसिले यूँ ही चलते जायेंगे / शेरों के जरिये ज़ज़्बात निकलते जायेंगे /' दिल से निकले उनके ज़ज़्बात पाठक के दिलों को छूने में सक्षम हैं।

वर्ष 2013 के पद्मानंद साहित्य सम्मान से सम्मानित डॉ. कृष्ण कन्हैया की रचनाएँ वास्तव में, 'किताब जिंदगी की' हैं। इनमें मनुष्य-जीवन के विभन्न पक्षों के विविध रंगों के दर्शन होते हैं। समाज, देश, जाति, धर्म, राजनीति, तकनीक अर्थ, विज्ञान, शिक्षा, मानवीय संबंध आदि के विविध सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर डॉ. कन्हैया की नितांत मौलिक काव्यात्मक अनुभूतियाँ हैं। उनकी बिना लाग-लपेट की सादगीपूर्ण भाषा लेकिन तीक्ष्ण धारदार व्यंग्य शैली पाठक को आंदोलित करती है, एक-साथ मुस्कराने और सोचने पर मजबूर कर देती है।

युवा रचनाकार डॉ वंदना मुकेश की संवेदना को आधुनिक भोगवादी प्रवृत्ति से उत्पन्न संवेदनहीनता आंदोलित करती है। 'स्नेह के जिस महासागर में / वर्षो नहाये / आज वे ग्लेशियर बन गये हैं/ कैसी ग्लोबल वार्मिंग है ये कि कलेजे पत्थर बन गये हैं। उनकी निजी अनुभूतियाँ अभिव्यक्ति के स्तर पर सार्वजनीय बन जाती हैं और पाठक के साथ तादात्मय स्थापित कर लेती हैं।

ब्रिटेन के कवियों की निम्नलिखित सूची यहाँ के समृद्ध हिंदी काव्य संसार पर एक विहंग दृष्टि मात्र है। स्व. प्रियंवदा मिश्रा, रमा जोशी, स्वर्ण तलवाड़, नरेंद्र ग्रोवर, चंचल जैन, अरुण सबरवाल, मधु शर्मा, सर्वेश सैनी, परवेज मुजफ्फर, मीनू अग्रवाल, डॉ. अजय त्रिपाठी, मधु शर्मा, नाटिंघम की जय वर्मा, पुष्पाराव,, कल्पना गवरे आदि सभी की काव्य चेतना को गीतांजलि समुदाय के डॉ. कृष्ण कुमार से पुनरुज्जीवित किया और प्रथम संस्थागत काव्य संकलन का प्रकाशन कर इन रचनाकारों के लेखन को विश्व मंच प्रदान किया। उनके बाद काव्य धारा संस्था संस्थागत संग्रहों की दूसरी कड़ी है। पुष्पा भार्गव, डॉ.इंदिरा आनंद, उर्मिला भारद्वाज, तोषी अमृता, निर्मल परींजा, राज मौदगिल आदि की रचनाएँ 'क्षितिज के इस पार' नामक संग्रह में संकलित की गईं।

भारतेंदु विमल, नरेश भारतीय, कैलाश बुधवार, चमनलाल चमन, रमा भार्गव, डॉ. अचला शर्मा, ललितमोहन जोशी, जकिया जुबैरी, डॉ. कविता वाचक्नवी, श्री महेंद्र वर्मा, सलमा जैदी, शशिप्रभा माथुर, तितिक्षा शाह, श्री धर्मपाल शर्मा, श्री सुरेन्द्र नाथ लाल, श्री रमेश वैश्य मुरादाबादी, विद्यासागर आनंद, कृष्णा अनुराधा, राजश्री गुप्ता, श्री चिरंजीव शर्मा, डॉ श्रीपति उपाध्याय, श्री एस.पी. गुप्ता, श्री जगभूषण खरबन्दा, शामा कुमार, रमेश पटेल प्रेमोर्मि, कादंबरी मेहरा, श्री यश गुप्ता, श्री जे.एस. नागरा, श्री मंगत भारद्वाज, श्री जगदीश मित्र, श्री रिफत शमीम, श्री इस्माइल चुनारा, धर्मपाल शर्मा, दीपक मशाल, नीरा त्यागी, शिखा वार्षेण्य, आदि अनेक-अनेक रचनाकारों ने जीवन के विभिन्न स्रोतों से रस-ग्रहण कर के विषयों और अनुभूतियों को विविध शैलियों और रूपों में प्रस्तुत किया है।

इन रचनाकारों के गीतों, कविताओं और ग़ज़लों की भाषा-शैली भी इनकी विषय-वस्तु की भाँति अत्यंत वैविध्यपूर्ण है। विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ भाषा के प्रयोग से एक ओर माधुर्यता, कोमलता और बोधगम्यता तो दूसरी ओर क्लिष्टता, दुरूहता देखी जा सकती है। उर्दू-हिंदी के गंगा-जमुनी प्रयोग, बोलचाल की हिंदी, अंग्रेजी अरबी, फारसी, बंगाली गुजराती आदि के विविध आंचलिक और लोकधर्मी शब्द-प्रयोगों के कोड-मिश्रण से सजी हिंदी भाषा का एक नया वैश्विक भाषा का रूप दिखाई देता है। नवरसानुरूप भाषा में प्रसाद, माधुर्य, ओज गुणों का यथारूप निर्वाह हुआ है. भाषा को सुंदर और संप्रेषीणीय बनाने के लिये अलंकार, मुहावरों आदि का प्रयोग इन रचनाओं को प्रभावपूर्ण बना देता है। इसी प्रकार दृश्य और ध्वनि के नये बिंब कहीं-कहीं इन रचनाओं में ताजगी भर देते हैं तो कहीं उनकी बोधगम्यता में बाधा उत्पन्न करते है। प्रसंग-गर्भत्व और संदर्भ बहुलता कहीं-कहीं भाषा को जटिल और कुछ सीमा तक जटिल बना देते हैं। इन रचनाओं में शिल्प के स्तर पर भी विविधता है, तुकांत, अतुकांत, गेय लययुक्त, क्षणिका, लंबी कविता, गीत, ग़ज़ल विभिन्न प्रयोग किये हैं।

उपरोक्त सभी रचनाकारों का लेखन स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन की अपेक्षा रखता है। ये सभी ब्रिटेन की हिंदी कविता को निष्ठापूर्वक निरंतर समृद्ध कर रहे हैं। हो सकता है कि इस लेख में किन्हीं रचनाकारों का उल्लेख रह गया हो अथवा उचित आकलन न हो सका हो, इसका कारण समय, शब्द-सीमा और मेरी अपनी सीमा है, न कि उनका लेखन। यदि महाकवि तुलसीदास के शब्दों में कहूँ तो, ''को बड़ छोट कहत अपराधू'', मेरी दृष्टि में सभी रचनाकार सम्माननीय और विशिष्ट हैं। ईश्वर ने प्रेरणा दी तो उन सभी पर आगे अवश्य लिखूँगी। आदरणीय तेजेंद्रजी ने इस लेख को लिखने की प्रेरणा दी और मुझे ब्रिटेन की हिंदी कविता-धारा से परिचित कराया, इसके लिये मैं उनकी हार्दिक आभारी हूँ।

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि इन रचनाकारों में से बहुतों ने हिंदी कविता का दामन आधी से ज्यादा उम्र बीतने के बाद पकड़ा है। बहुत से रचनाकारों की प्रथम भाषा हिंदी नहीं है। बहुतों के लिये यह मात्र सामाजिक प्रतिष्ठा का एक जरिया हो सकता है। उनकी कविता, कविता के निकषों पर खरी न उतरती हो, लेकिन देश से दूर अपनी उस बोली भाषा को जीवित रखने की ललक ही हिंदी के प्रति उनकी निष्ठा का प्रमाण है इसलिये प्रतिमान गौण हो जाते हैं। प्रतिमानों के मुखौटे उतार कर ही इनका रस लिया जा सकता है।

अंत में ब्रिटेन की हिंदी कविता के स्वरूप को सशक्तता के साथ परिभाषित करती उषा वर्मा की इन पंक्तियों के साथ अपनी कलम को विराम देती हूँ-

कविताएँ नहीं बँधती हैं / देश की सीमाओं में / वे चली जाती हैं सीमाओं के पार / वे नहीं बँधती हैं / मन के बँधन में / उड़ जाती हैं ऊपर-ऊपर / लाँघकर मन की दीवार...

●

यू.के. में अमरदीप के शानदार तीस साल

✦ डॉ. जगदीश मित्र कौशल

लंदन में हिन्दी की मशाल जलाए रखने वालों में 'अमरदीप' का नाम अग्रगण्य है। ब्रिटेन में हिन्दी की कहानी 'अमरदीप' के बिना अधूरी है। 'अमरदीप साप्ताहिक' के संपादक श्री कौशल उस संघर्ष यात्रा की कहानी बयान कर रहे हैं–अपनी कलम से।

–संपादक

मैं जालंधर पंजाब से 1966 में आया था और दो साल की कठिन मेहनत के बाद 1968 में साऊथहॉल में मकान खरीदकर अपनी पत्नी शोभा तथा बच्चों के साथ इंग्लैंड में बस गया। वैसे जालंधर में भी मेरा अच्छा काम था, किन्तु इंग्लैंड में मेरे आने का कारण ही यह था कि विदेशों में भारत की संस्कृति का प्रचार-प्रसार करने में कुछ सहायक हो सकूँ। यह कैसे होगा इसकी कोई रूपरेखा तो नहीं थी, बस कई योजनाओं की एक धुंधली-सी तस्वीर दिमाग में थी। उस प्रकार 1969 में अपने कुछ साथियों के साथ एक हाल किराये पर लेकर हर रविवार प्रातः रामायण का पाठ करना शुरू किया, जिसमें कुछ हिंदू इकट्ठे होने लगे और मुझे अपना मिशन कुछ-कुछ दिखाई देने लगा। मैं रामायण पढ़ता था बाकी सुनते थे और कुछ चर्चा होती थी।

अमरदीप के उद्घाटन समारोह में बाएँ से दाएँ–श्री बनरनडे बैदरल–स्पीकर ब्रिटिश संसद, कंवर नटवर सिंह उस समय के कार्यवाहक भारतीय उच्चायुक्त लंदन, अमरदीप हिन्दी साप्ताहिक के संपादक श्री जगदीश मित्र कौशल

1970 के आरम्भ में हम सबने मिलकर हिंदी प्रचार-प्रसार करने का बीड़ा उठाया और अप्रैल 1970 में हिंदी साहित्य सभा, यू.के. नाम से एक हिंदी संस्था खड़ी कर दी। मैं उसका महासचिव था तथा पं. निरूपम देव शास्त्री, जो बाद में कनाडा में जा बसे, उसके प्रधान सर्व सम्मति से चुने गए। उसी सभा के अंतर्गत 8 अगस्त, 1970 में साऊथहॉल में एक विशाल हिंदी सम्मेलन किया गया, जिसमें उस समय के भारतीय उच्चायुक्त श्री आपा. बी. पन्त मुख्य अतिथि थे। समारोह बड़ा सफल रहा, हाल दर्शकों से भरा था।

लोगों में हिंदी प्रचार-प्रसार के प्रति बड़ा उत्साह था। उस समारोह में हिंदू, सिख, मुसलमान सभी सम्मिलित थे और पन्त साहिब के शब्दों में पश्चिमी देशों में होने वाला यह इतना बड़ा पहला समारोह था। इस समारोह को बी.बी.सी. टेलीविजन ने कवर किया तथा इसके लिए बी.बी.सी. एशियन कार्यक्रम के निदेशक महेन्द्र कौल इसमें स्वयं उपस्थित थे। बस फिर क्या था, चारों ओर से मुझपर दबाव बढ़ने लगा कि मैं हिंदी प्रचार-प्रसार के उस कार्यक्रम को आगे बढ़ाऊँ तथा एक हिंदी साप्ताहिक भी यू.के. में शुरू करूँ। यह कार्यक्रम इतना रोचक था कि बी.बी.सी. ने अपने एशियन कार्यक्रम 'नई जिंदगी, नया जीवन' में उसे जनता के आग्रह पर दो बार दिखाया।

हिन्दी कार्यक्रमों के उस आग्रह को मैंने भी भारतीय संस्कृति के प्रचार के सपने को आगे बढ़ाने के लिए पहला पग समझकर एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया और उसके लिए सामान लाने के लिए जनवरी, 1971 में भारत चला गया। वहाँ पर 23 फरवरी, 1970 को उस समय के राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि से राष्ट्रपति भवन में भेंट कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया और हिन्दी की लीडिंग आदि लेकर वापस आ गया। इस बारे में घर में विचार कर मेरी पत्नी शोभा ने जो हिन्दी प्रचार में काफी सहयोगी रहीं, शुरू होने वाले साप्ताहिक का नाम 'अमरदीप साप्ताहिक' रखने का सुझाव दिया जो सभी ने मान लिया। इस प्रकार 19 मार्च, 1971 को यह नाम कंपनी रजिस्ट्रेशन ऑफिस में रजिस्टर्ड करा दिया गया और प्रभु का नाम लेकर प्रथम चैत्र यानि 23 मार्च, 1971 को 'अमरदीप हिन्दी साप्ताहिक' शुरू कर दिया गया। उस समय पश्चिमी देश यू.के. में हिन्दी का समाचार-पत्र शुरू करना कोई खेल नहीं था। मुझे उस बारे में जानकारी भी नहीं थी, किन्तु थी तो केवल प्रभु कृपा और अपनी निष्ठा पर विश्वास। उस काम को पूरा करने के लिए एक मंझे हुए पत्रकार सरदार ज्ञानी अजायब सिंह का सहयोग मुझे मिल गया जो इस पहाड़ जैसे काम को सफल बनाने

के लिए पहले कुछ सप्ताह हमारे घर पर ही रहे। Adana के छोटे प्रेस में लीडिंग के साथ हम समाचार के शीर्षक बनाते तथा ओलम्पिया हिन्दी टाइपराइटर को इस काम के लिए विशेष रूप से यहाँ पर बनवाया गया। उसी पर टाइप करके समाचार तैयार करते। विदेशों में मेरे हिन्दी प्रचार-प्रसार से प्रभावित होकर धर्मयुग साप्ताहिक ने मेरे जीवन व कार्य की कुछ झलकियाँ आधे पन्ने पर छापी थी जिसका जिक्र भारतीय संसद में भी हुआ था तथा उसकी सराहना भी की गई।

1974 में 'अमरदीप' का कार्यालय लंदन में खोल दिया गया, जिसका उद्घाटन उस समय के ब्रिटिश संसद के अध्यक्ष मिस्टर बरनार्ड वैघरल ने किया। उस प्रकार तीन-चार सालों में 'अमरदीप साप्ताहिक' अपने पैरों पर मजबूती से खड़ा हो गया, जिसके कार्यालय के रूप में लंदन में 163, Hanbury Street, London, E1, एक तीन मंजिला बिल्डिंग थी। मुझे लिखते हुए प्रसन्नता हो रही है कि 'अमरदीप हिन्दी साप्ताहिक इतना प्रसिद्ध हो गया कि ब्रिटेन की महारानी ने 1976-77 को जुबली वर्ष के रूप में मनाया तो कुछ एथनिक कार्यकर्ताओं के साथ मुझे भी बर्मिंघम पैलेस बुलाया गया।

उसी बीच 1973-74 का वर्ष तुलसी चतु:शती समारोह का वर्ष था तथा यू.के. भर में चालीस प्रतिनिधियों ने उसके लिए एक समिति बनाई जिसका नाम रखा-'Ram Charit Manas fourth centenary U.K. celebration commitee' तथा सर्वसम्मति से मुझे यू.के. के अध्यक्ष, बरमिंघम के प्रसिद्ध समाज सेवक स्वर्गीय श्री पुरुषोत्तम को जनरल सैक्रेटरी चुन लिया गया। इसका पहला समारोह उद्घाटन उस समय के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ. मैकग्रेगर ने किया। इस प्रकार उस वर्ष हमने रामायण के दस विशाल सम्मेलन यू.के. भर में किये जिसके कारण हिंदी एवं रामचरितमानस का प्रसार यू.के. भर में हुआ। इन सम्मेलनों की विशेषता यह थी कि जिस नगर में सम्मेलन होता था उस नगर में लोग कोचों में भर कर आते थे। इस कार्य में श्री रेमण्ड एल्चिन ने भी हमें काफी सहयोग दिया, जिन्होंने विनय पत्रिका का अनुवाद अंग्रेज़ी में किया है। इस कार्य के लिए हिन्दू, सिखों में इतना उत्साह था कि साऊथहाल के सम्मेलन में ही यू.के. भर से दस कोच आई थीं। जबकि उस समय साऊथहाल में तीस-चालीस भारतीय परिवार ही रहते थे।

हिन्दी प्रचार के लिए हमने कई सम्मेलन किए जिसमें कुछ का उल्लेख मैं यहाँ करूँगा। 'गुरुनानक व गुरु गोविन्द सिंह की हिन्दी को देन नाम से साऊथहाल में एक सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें उस समय के प्रसिद्ध सिख नेता सरदार मल्कियत सिंह, जोगेन्द्र सिंह तथा सरदार विचित्र सिंह ने अपने विचार रखे। इस कार्यक्रम में पाकिस्तान के जाने-माने गायक आलम लोहार ने शबद गाकर समाँ ही बाँध दिया। हिन्दी के विद्वान् डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय ने प्रमुख व्याख्यान दिया।

इसी प्रकार के एक सम्मेलन में जिसका आयोजन भारतीय विद्या भवन में किया गया था, डॉ. रुपर्ट स्नैल को उनकी हिन्दी सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया। अगला सम्मेलन हैकने में हुआ, जिसमें यूरोपीय संसद के सदस्य श्री एल्फ लामा ने विशेष रूप से भाग लिया तथा विश्वास दिलाया कि यूरोप में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए वह हर प्रकार का सहयोग देंगे।

1979 में 'अमरदीप' साप्ताहिक के 8 वर्ष पूरे होने के अवसर पर लंदन के हिल्टन होटल में एक विशेष समारोह 'अमरदीप नाइट' का आयोजन किया गया। इसमें भारत के कार्यवाहक उच्चायुक्त श्री इन्द्रप्रकाश सिंह, पाकिस्तान के पी.आर.ओ., बांग्लादेश के प्रेस अताशे, लंदन पुलिस के प्रमुख, नस्लीय समानता आयोग के उपाध्यक्ष श्री प्राण सेठ तथा निदेशक श्री सुहैल अजीज के अतिरिक्त कई गणमान्य व्यक्ति शामिल थे। आठवीं दशाब्दी का पूर्वार्द्ध हिन्दी के लिए चुनौती भरा समय था, क्योंकि एशियन प्रवासियों में मातृभाषा की प्रमुखता का विचार घर ले रहा था। पाकिस्तान से आए अप्रवासियों ने लिखकर दिया कि उनकी मातृभाषा उर्दू है। हिन्दी के लिए यह परीक्षा की घड़ी थी। इसके संबंध में हमने काफी आवाज उठायी। हमने प्रयास किया कि मातृभाषा का सम्मान करते हुए ऐसी भाषा को मान्यता मिलनी चाहिए जिसे ज्यादातर अप्रवासी समझ सकते हों। इस मुहिम में हिन्दू, मुसलमान और सिखों, सभी ने हमारा साथ दिया। ब्रिटेन की सरकार ने इस पर विचार के लिए 'स्वैन कमेटी' बनायी। कमेटी ने विभिन्न प्रवासियों से चर्चा करने और कई बैठकें और विचार-विमर्श करने के पश्चात् अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। इसमें प्रवासियों के लिए सामुदायिक भाषा की सिफारिश की गई। इस रिपोर्ट से हिन्दी के प्रचार-प्रसार में काफी सहायता मिली और चूंकि इस कार्य में 'अमरदीप' की प्रमुख भूमिका रही थी, अत: उसके प्रचार-प्रसार को भी गति मिली और उसका नाम चारों तरफ फैल गया।

इस तीस साल के इतिहास में बहुत से वृत्तांत हैं, किन्तु स्थान के अभाव में यहां लिख पाना संभव नहीं है, परन्तु इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए ब्रिटिश संसद के अध्यक्ष श्री बर्नेड वेदरल तथा लिबरल डेमोक्रेटिक पार्टी के वर्तमान प्रधान श्री नवनीत ढोलकिया ने दिल खोल कर हमारी सहायता की। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए इस प्रकार की पृष्ठभूमि से प्रभावित होकर ही यहां विश्व हिन्दी सम्मेलन करने का निर्णय लिया गया।

●

समकालीन भारतीय साहित्य में प्रवासी हिंदी साहित्य

✦ अर्चना पैन्यूली

लगभग सन् दो हजार से 'प्रवासी हिन्दी साहित्य' ने भारतीय हिन्दी साहित्य जगत में एक नये आयाम की प्रस्तुति की। साहित्य में दलित साहित्य, मुस्लिम साहित्य, स्त्री-विमर्श, इत्यादि संज्ञाओं से लेखन को चिह्नित किया जाना तभी से चलन में है। इसी कड़ी में प्रवासी हिन्दी साहित्य को भी जोड़ लिया जाये तो विसंगति तो नहीं है, मगर लक्षणों के आधार पर साहित्य की यह खेमेबाजी कई साहित्यकारों को सीमा तक ही ठीक लगती है। अधिकांश प्रवासी लेखक स्वयं के लिए एक 'प्रवासी लेखक' का लेबल तुच्छ समझते हैं। जब लेखकों व लेखन के बारे में चर्चा होती है तो स्वयं को प्रवासी लेखन खेमे में पाना कई प्रवासी लेखकों को क्षुब्द करता है। वे साहित्य को उसकी सम्पूर्ण/समग्रता से देखना चाहते हैं।

गौरतलब है कि साहित्य की यह खेमेबाजी विश्व की अन्य भाषाओं में नहीं दिखती है। मसलन डेनमार्क की सुप्रसिद्ध लेखिका कारेन बिलिक्शन ने अपनी लोकप्रिय रचनायें इटली व अफ्रीका में अपने प्रवासकाल के दौरान लिखी थीं। मगर उनकी रचनायें डेनिश साहित्य की मुख्यधारा की रचनायें मानी जाती हैं। उन रचनाओं को डेनिश साहित्य जगत में 'प्रवासी' नाम नहीं दिया। कितने ही मुल्कों के लेखकों ने अंग्रेजी में रचनायें लिख कर अंग्रेजी साहित्य जगत में एक विशेष स्थान पाया है पर हमने आज तक नहीं सुना, 'प्रवासी अंग्रेजी साहित्य'।

प्रश्न यह है कि कौन आज प्रवासी हिन्दी साहित्य में संलग्न हैं? अगर तेजेन्द्र शर्मा, सुषम बेदी, सुधा ढींगरा, इला प्रसाद, रेनू गुप्ता, कृष्णबिहारी, गौतम सचदेव, सुरेश शुक्ला, उषा राजे, पूर्णिमा वर्मन, अंजना धीर, उषा प्रियंवदा या अन्य कई कथाकारों का नाम गिनें जो विदेशों में रहकर हिन्दी साहित्य सर्जन कर रहे हैं तो ये वे लोग हैं जो भारत में जन्मे, वहां पले-बढ़े, अपनी युवा या अधेड़ उम्र के किसी दौर में विदेश अप्रवासित हुए। साहित्य सर्जन की नींव इन सभी कथाकारों की अपने वतन हिन्दुस्तान में ही पड़ गई थी। विदेश प्रवासित होकर उनका केवल निवास व परिवेश बदला। अनुभव का क्षेत्र विस्तीर्ण हुआ। फर्क इतना है कि जब ये हिन्दी कथाकार विदेश में रहने लगे तो प्रवासी लेखक कहलाने लगे। दरअसल, वे सभी वैसे ही हैं जैसे कोई हिन्दुस्तान के किसी देहात से विस्थापित हो दिल्ली, मुंबई, लखनऊ या बंगलौर महानगर में आकर बस गये। अन्तर यह है कि इन तथाकथित प्रवासी लेखकों ने और लंबी दूरी तय की, विस्थापन के लिए एक अधिक दूरस्थ गंतव्य का चयन किया।

न जाने किस हिन्दी साहित्यकार ने 'प्रवासी हिन्दी साहित्य' एक अलग खेमे का निर्माण किया। साहित्य-मर्मज्ञों ने कैसे इस खेमे को मान्यता दी। मगर यह खेमा अब हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में पूर्णरूपेण स्थापित हो चुका है। समकालीन हिन्दी साहित्य का यह एक नया विमर्श है। विभिन्न पत्रिकायें, प्रकाशन, साहित्यिक संस्थायें व शोध विद्यार्थी 'प्रवासी हिन्दी लेखन' के तहत विदेशों में रचे जा रहे हिन्दी लेखन को प्रकाशित, उनमें चर्चा या शोध कर उस सर्जन को रेखांकित तो कर ही रहे हैं, साथ ही हिन्दी जगत को एक विभिन्नता भी दे रहे हैं।

प्रवासी हिन्दी साहित्य विषय-वस्तु पर यदि मनन किया जाये तो दो परिप्रेक्ष्य उभरते हैं–प्रवासी हिन्दी साहित्य का हिन्दी जगत में स्थान एवं योगदान। दोनों ही परिप्रेक्ष्य अन्तर्सम्बन्धित है। परन्तु प्रवासी हिन्दी सभी हासिये में ही हैं। मुख्यधारा में आने के लिए कई पहलुओं पर सोचना पड़ेगा। हिन्दी की राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थिति। हिन्दी जगत के लोगों के बीच संपर्क व संचार साधन। हिन्दी लेखकों, प्रकाशकों, प्राध्यापकों का रुख व दृष्टिकोण, लिखने के लिए प्रेरणा, लेखन से अर्जित आय व लेखक की कृतियों को उचित न्याय।

जहाँ तक प्रवासी साहित्य का हिन्दी जगत में स्थान का प्रश्न है तो कोई भी साहित्य भाषा पर निर्भर करता है। भाषा के महत्त्व को समझे बगैर हम साहित्य का महत्त्व नहीं समझ सकते। हिन्दी की स्थिति हमेशा विवादास्पद रही। अगर हम हिन्दी के विकास की बात करे तो यद्यपि वेद, उपनिषद जैसे समृद्ध भारतीय साहित्य की सृष्टि प्राचीनकाल से ही होती आयी है, लेकिन मानक हिन्दी, यानि खड़ी बोली का विकास मात्र एक हजार वर्ष पुराना है। हमारा प्राचीन साहित्य अवध व ब्रजभाषा में है। विशुद्ध हिन्दी साहित्य तो मात्र सात सौ वर्ष पुराना है जब सूफी कवि अमीर खुसरो ने इसका उपयोग किया। व्यवहारिक तौर पर हिन्दी आज भी पूर्णत: विकसित नहीं हो पायी है। विज्ञान, मेडिकल, औद्योगिकी आदि की पढ़ाई हिंदी में मुश्किल ही क्या असंभव प्रतीत होती है। फिर जो कुछ हमारा समृद्ध साहित्य है उसकी भाषा इतनी क्लिष्ट है कि आम व्यक्तियों की समझ से परे है। आम जनता के लिए अच्छा व रोचक कथा लेखन करने वालों की संख्या बहुत कम है। हिंदी की जो पत्रिकायें साहित्यिक और साहित्येतर प्रतिबद्धताओं का उद्घोष करती हुई निकलती हैं, उन्हें एक विशेष वर्ग ही पढ़ता है। इन साहित्यिक पत्रिकाओं का वितरण भी बहुत कम होता है। जनसाधारण इनके नाम तक से परिचित नहीं होते। जो पत्रिकायें वास्तव में जनसाधारण के पास पहुँचती हैं उनमें अच्छे लेखक लिखना नहीं चाहते, लिहाजा अच्छा कथा लेखन जनसाधारण से हमेशा दूर रहता है। किसी साहित्य में केवल साहित्य को हल्के से ही मान्यता मिलना पर्याप्त नहीं है,

जब तक वह साहित्य लोकजन को आकर्षित न करे, सफलता की कसौटी पर पूर्णत: खरा नहीं उतरे।

अपने एक हजार वर्ष की जीवन यात्रा में मानक हिन्दी ने नि:सन्देह काफी लंबी मंजिलें तय की हैं। आज हिन्दी एक सशक्त, सुगठित व्याकरण सम्मत और समृद्ध भाषा की सभी अनिवार्यताओं से परिपूर्ण है। यह सम्पूर्ण भारत की राजभाषा व सात राज्यों की क्षेत्रीय भाषा है। दुनिया में हिन्दी बोलने वालों की संख्या तीसरे नंबर पर है–पचास-साठ करोड़ के करीब लोग हिन्दी भाषी हैं। मगर फिर भी हिन्दी को वह स्थान नहीं मिल पाया है, जिसकी वह अधिकारिणी है। भारत से बाहर गैर हिंदी भाषियों के लिए हिंदी मुख्यतया: बॉलीवुड की ही भाषा मानी जाती है। हिन्दी एक भाषा ही नहीं, हमारी संस्कृति व परम्पराओं की संवाहिका व अभिव्यक्ति है। सो देश-विदेश में चलते सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक क्रियाकलाप एवं गतिविधियां हिन्दी विकास में नि:सन्देह सहायक हैं। बॉलीवुड फिल्में हिन्दी के अस्तित्व को बनाये हुए हैं। मगर, अगर अनौपचारिक स्तर से हट कर औपचारिक स्तर पर हिन्दी का विश्लेषण करें तो हिन्दी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी की स्थिति दयनीय है। जिस तरह चीन, रूस, हंगरी, स्पेन आदि देशों के लेखक अपनी भाषा में पुस्तकें लिखकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि पा चुके हैं, हिन्दी जगत के लेखक वैसी ख्याति नहीं पा सके।

किसी कथा-साहित्य के जरिये कल्पना, समय बोध, स्थान अनुभूति व भाषा तो उच्चरित होती ही है। इनके अलावा भाव, प्रत्यय, संकल्पना, लेखन शैली, वर्णनात्मक पटुता, शब्द संग्रहों का प्रचुर व कलात्मक उपयोग किसी साहित्य की सार्थकता के लिए अति उपयोगी हैं। हिंदी के पास एक विस्तृत शब्द-भण्डार ही नहीं, कई उपभाषाओं व शैलियों में भी यह बोली व लिखी जाती है। इसकी एक निजी लिपि है, देवनागरी, एक सुन्दर लिपि–एक लाइन से लटकते चन्द शब्द परस्पर एक अक्षर बना देते हैं। यह एक दर्शन भी है तो चित्ताकर्षक भी।

एक आकर्षित व विशिष्ट लिपि होने के बावजूद हिन्दुस्तानी हिन्दी का व्यावसायिक उपयोग करने से कतराते हैं। दूर से किसी चाइनीज रेस्टोरेंट या दुकान की पहचान उनकी चित्रमय भाषा से की जाती है। चित्रात्मक भाषा चीनी लोगों की पहचान है, जिससे विश्व का हर व्यक्ति परिचित है। अरबी भाषा खाड़ी प्रदेश में रहने वालों की पहचान है। रोमन लिपि यूरोपीय व अमेरिकन की पहचान है। दुर्भाग्य से हमारी देवनागरी एक आकर्षक व विशिष्ट लिपि होने के बावजूद दुनिया में हिन्दुस्तानियों की पहचान नहीं बन पायी।

हिन्दी को महत्ता देने का तात्पर्य केवल हिन्दी समझना या बोलना ही नहीं, हिन्दी पढ़ना व लिखना भी अनिवार्य है। हिन्दी साहित्य की महत्ता के सन्दर्भ में आम बाधायें ये हैं कि भारत की जनसंख्या का एक काफी बड़ा प्रतिशत निरक्षर है। भारतवर्ष कई भाषाओं में बंटा हुआ है। हिन्दी भाषी भी हिन्दी पर उतने निर्भर नहीं हैं जितने कि अन्य मुल्कों चीन, जापान, स्पेन, डेनमार्क, पुर्तगाल व अरब आदि देशों के नागरिक अपनी भाषाओं पर हैं। फिर जो हमारे साक्षर हिन्दुस्तानी हैं उनकी रीडिंग हेबिट, पढ़ने की आदत नहीं है। लोग अखबार या राजनैतिक पत्रिकायें पढ़ने तक सीमित रहते हैं। कथा-साहित्य पढ़ने का शौक साहित्यकारों व गिनती के साहित्य अभिरुचि से परिपूर्ण पाठकों तक ही सीमित है। आम जनता पढ़ने में कोई खास दिलचस्पी नहीं रखती जितनी कि डेनिश या अन्य विदेशी जनता रखती है। जो पढ़ने के शौकीन हैं भी, वे अंग्रेजी पुस्तकें व पत्रिकायें पढ़ना पसन्द करते हैं। जिस घर में अंग्रेज़ी के बजाये हिन्दी अखबार, पत्रिकायें व पुस्तकें पड़ी रहती हैं वह भारतीय समाज में विशिष्ट नहीं माना जाता। भारतवर्ष में अंग्रेज़ी श्रेष्ठजनगणों की भाषा मानी जाती है। हिन्दी साहित्य का बाजार उतना नहीं है जितनी तादाद में हिन्दी भाषी हैं। इसकी वजह से भारतीय हिन्दी लेखकों के अतिरिक्त प्रवासी हिन्दी लेखक भी उपेक्षा के शिकार होते हैं। आज तक हिंदी लेखक के लिए अपने उपन्यास की एक हजार प्रतियां भी बेचनी मुश्किल हैं।

लेखक के लिए सिर्फ लिखना ही काफी नहीं। उसका पाठकों तक पहुंचना भी जरूरी है। इसके लिए प्रकाशक, समीक्षक, मीडिया व हिन्दी संस्थायें जिम्मेदार हैं। सर्वप्रथम प्रकाशकों की यह व्यावसायिक नैतिकता है कि वह किसी लेखक की अच्छी कृति को अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँचायें। तदुपरान्त आलोचकों, मीडिया व हिन्दी संस्थानों का दायित्व हो जाता है कि उस कृति के साथ पूरा न्याय होये। हिन्दी विकास से जुड़े लोगों के बीच संपर्क व संचार साधन की समुचित व्यवस्था की भी आवश्यकता है। विश्वभर में फैले हिंदी लेखकों व हिंदी साहित्य प्रेमियों को एक मंच से जुड़ना जहां विचारों का विनिमय, एक-दूसरे की रचनाओं पर टिप्पणी व आलोचना करना संभव हो सके। आज का युग इलेक्ट्रोनिक हो चला है तो हिंदी को एक इलेक्ट्रोनिक भाषा बनाने की नितान्त आवश्यकता है। कम्प्यूटर पर हिन्दी का उपयोग नि:सन्देह काफी बढ़ा है, मगर अन्य कई भाषायें जैसे चीनी, कोरियन, अरबी आदि की तरह कम्प्यूटर पर हिंदी ऑपरेटिंग सिस्टम अभी पूर्णतया विकसित नहीं हो पाया है। सम्भवत: माइक्रोसॉफ्ट कल ही हिन्दी का ऑपरेटिंग सिस्टम विकसित कर दे, अगर हिंदी का उपयोग कम्प्यूटरों पर बढ़ जाये। क्या हिंदी का उपयोग करने वाले नहीं हैं या फिर हिंदी अपनाकर लोगों को कोई लाभ नहीं है?

प्रवासवास निश्चय ही एक लेखक के अनुभव के फलक को विस्तीर्ण करता है। मगर विदेश में एक हिन्दी लेखक होने से फायदे हैं या नुकसान, यह एक विवादास्पद प्रसंग है। पहले तो एक हिंदी लेखक होना दुष्कर, फिर एक प्रवासी हिंदी लेखक होना और भी मुश्किल–एक भयावह बोझ व दुर्भर दायित्व। हिंदी का यहां कोई विशेष वातावरण नहीं है। न यहां हिंदी के पाठक, न लेखक। न यहां कोई हिन्दी का मंच और न ही कोई साहित्यिक गतिविधियां। यहां तक कि विशुद्ध हिन्दी सुनने तक को नहीं मिलती। हिन्दी लेखन करने से कुछ आय भी नहीं। अगर एक अप्रवासी हिन्दी लेखक अपने

परिवेश की सभी भाषाओं को उपेक्षित कर हिन्दी अपनाता है, उसमें साहित्य सर्जन करता है तो उसके लिए कुछ तो प्रेरणा होनी चाहिए। यह 'प्रेरणा' कौन कितनी हासिल कर सकता है यह कई पहलुओं पर टिका रहता है जिसका कोई सीधा जवाब नहीं।

प्रवासी हिन्दी लेखकों का हिन्दी जगत को योगदान

विश्वभर में हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है जहाँ से काफी बड़ी तादाद में लोग दूसरों देशों में प्रवास करते हैं। यह स्थानान्तरण लगभग चार सौ वर्ष पुराना है और आज भूमण्डल के विभिन्न देशों में भारतवासी बसे हैं। विदेश जाना अब पहले जैसा दुर्गम भी नहीं रहा। लेकिन विदेश जाना, रहना और वहाँ लेखन करना एक विशिष्टता अवश्य प्रदान करती है। वैसे तो कुछ कृतियाँ ऐसी होती हैं कि चाहे वे किसी भी काल या स्थान पर रची जायें उसमें निहित सत्य व दर्शन किसी भी परिवेश व सदी में खरे उतरते हैं। मनुष्य पर ताकतों, विसंगतियों व कमजोरियों का, काल या स्थान का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। रचनाकारों ने जमीन पर बैठ कर चांद, सितारों, नक्षत्रों व ब्रह्मांड आदि पर लिखा है तो पृथ्वी की परिधि ही कितनी है। मगर लेखन की विशेषता, राशि, अंश व परिदृश्यों पर वातावरण का फर्क अवश्य पड़ता है। अपने देश से सुदूर विदेश में बैठ कर साहित्य सर्जन में दृष्टि अधिक फैली हुई रहती है। लेखन का स्तर तो कलम की ताकत तय करेगी लेकिन प्रवास में अनुभव का फलक विस्तीर्ण हो जाता है।

प्रवास के अनुभव प्रवासी लेखक के लिए प्राथमिक आँकड़े हैं, जिन्हें वह साहित्य के माध्यम से अपने घर तक पहुँचाता है। वह अपने लोगों के लिए एक खुली खिड़की का कार्य करता है, जहाँ से वह एक दूरस्थ स्थान के सामाजिक, भौगोलिक यथार्थ के साथ-साथ संस्कृति की खूबियों का सहजता से संप्रेषण करता रहता है।

संस्कृतियों को निकट ला समन्वयकारी प्रवृत्तियों को वह प्रोत्साहन देता है। आर्थिक जगत में वैश्वीकरण की धारणा जिस प्रकार फलीभूत हो रही है और विश्व गाँव का स्वप्न देखा जाने लगा है तथा सूचना क्रान्ति इस स्वप्न को साकार करती दीख भी पड़ रही है, उसी प्रकार से साहित्य जगत में भी विश्व में इस प्रकार का नैकट्य लाया जा सकता है। समन्वय सदा से साहित्य का सर्वोत्कृष्ट गुण रहा है। आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व भक्तिकाल के शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने वर्ग-वर्ग में बँटे समाज, सम्प्रदायों और विचारधाराओं का समन्वय करने का युग परिवर्तनकारी कार्य किया था। अपनी इस विशिष्टता के कारण ही रामचरितमानस एक सार्वकालिक और सार्वजनीय ग्रन्थ बन गया है। आधुनिक युग में महान घुमक्कड़ और विराट व्यक्तित्व के धनी साहित्यकार राहुल सांस्कृत्यायन ने देश-विदेश के अगम्य क्षेत्रों का न केवल अन्वेषण किया; अपितु गंगा और बोल्गा नदियों पर अपनी दार्शनिक दृष्टि से समन्वयकारी विचारधारा को संपुष्ट किया है। मेरे विचार से प्रवासी हिन्दी साहित्य से जुड़ी सबसे बड़ी अपेक्षा समन्वय की है।

प्रवासी हिन्दी साहित्य, साहित्य को विविधता प्रदान कर रहा है और हिन्दी को विश्वव्यापी बना रहा है। एक भिन्न परिवेश में रहने से प्रवासी लेखक के दृष्टिकोण व लेखन विधि में खासा फर्क आ जाता है। वह न केवल विदेश में बसे अपने भारतीयों की जीवनगाथा गाता है, वह न केवल विदेशी भाषाओं की उत्कृष्ट रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद करके वह सामग्री हिन्दी साहित्य जगत के लिए सुलभ करवा रहा है, बल्कि विदेशी भूमि में रह कर अपनी संस्कृति व जातीय मूल्यों का अन्वेषण कर एक नया परिप्रेष्य हिंदी साहित्य जगत को उपलब्ध करवा रहा है। तीसरी अपेक्षा जो किसी प्रवासी लेखक से की जा सकती है वह जटिल के साथ अति महत्वपूर्ण भी है–अपनी राष्ट्रीय साहित्य की संभावनाओं पर मनन करके उसे और व्यापक बना नये आयाम देना।

प्रवासी हिन्दी साहित्य हिन्दी साहित्य को एक विश्वदृष्टि दे रहा है। कई आयाम, कई अनुभव, दूसरी भाषाओं की अच्छी रचनाओं का अनुवाद कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बना रहा है। तमाम विसंगतियों के बावजूद बात यह है कि हिन्दी मानक भाषा को अभी अपनी यात्रा के केवल एक हजार वर्ष हुए हैं और आज हिन्दी विश्व की प्रमुख भाषाओं में आती है। इसमें भारतीय प्रवासियों का काफी योगदान है, जो विदेश की भूमि में रहकर हिन्दी की पताका फहराये हुए हैं।

आज जो कुछ भी हिन्दी प्रवासी साहित्य सर्जन हो रहा है, उसका मुख्य केन्द्रबिन्दु एक दूरस्थ स्थान की झाँकी देश-विदेश में बसे अपने भारतीयों को देनी है, साथ ही मानव सामाजिक, सांस्कृतिक व मूल्यों के अन्तर व टकराव को अभिव्यक्त व विश्लेषण करना। प्रवासी लेखकों की रचनायें दुनिया को कुछ पलों के लिए सिकोड़ देती हैं। लेखन शैली सभी प्रवासी लेखकों की अपने-अपने व्यक्तित्व की आवाज है और अनुभव उनके एक से हैं तो भिन्न भी हैं। मुख्य बात यह है कि कौन लेखक क्या विषय, किन दर्शकों के लिए किस ढंग से प्रस्तुत करता है।

यूरोप व अमेरिका में आकर बसने वाले भारतीयों के अनुभव व संघर्ष कुछ और भी हैं। फीजी, मॉरीशस, ट्रिनीडाड, सूरीनाम आदि में बसने वालों के कुछ और तो खाड़ी प्रदेश में बसने वालों के कुछ और। फीजी, मॉरीशस, गुयाना, ट्रिनीडाड, सूरीनाम व जमाइका में अंग्रेजी शासन के दौरान काफी हिन्दुस्तानी, जो गिरमिटिया मजदूर से प्रचलित हैं, को गन्ने की खेती के लिए बँधुआ मजदूर बनाकर लाया गया था। कालान्तर में इन्हें मजबूरन उन्हीं देशों में बसना पड़ा। सो इन मुल्कों में रहने वाले हिन्दी लेखकों ने अपनी रचनाओं में इन गिरमिटिया मजदूरों की गाथा व व्यथा का खुल कर वर्णन किया है। यूरोप व अमेरिका में अलग सेट के लोग अप्रवासित हुए। इन मुल्कों में कई भारतीय रिफ्यूजी बन कर भी गये तो भारतीयों की मौजूदा नस्ल ग्लोबलाइजेशन की वजह से मल्टीनेशनल कंपनियों में कार्य के लिए विस्थापित हो रही है। अत: यूरोप व अमेरिका में बसे हिन्दी लेखकों की रचनायें सामयिक अप्रवासन पहलुओं को अपनी लेखनी में उजागर करती हैं। इमीग्रेशन इश्यू...एक इमीग्रेन्ट बनकर दूसरे में

रहना क्या है? इमीग्रेन्ट्स को क्या कठिनाईयाँ हैं, उनकी क्या उपलब्धियाँ हैं, इसका भान हिन्दी पाठकों को प्रवासी साहित्य से अच्छा-खासा हो जाता है। एक सुदूर प्रदेश के परिवेश को अपनी राष्ट्रभाषा में लिख अपने देश तक पहुँचाना एक प्रवासी लेखक की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

आज काफी प्रवासी भारतीय हिन्दी के साहित्यिक प्रचार में संलग्न हैं। जिन मुल्कों में हिन्दुस्तानी संख्या में काफी हैं जैसे ब्रिटेन, अमेरिका, फीजी, मॉरीशस, सूरीनाम आदि, वहाँ आये दिन हिन्दी गोष्ठियाँ, सम्मेलन व हिंदी साहित्यिक विचारों का आदान-प्रदान होता रहता है। दुनिया के सभी छोटे-बड़े देशों में कुछ-न-कुछ हिंदी गतिविधियाँ चलती रहती हैं। विश्व के कई मुल्कों में हिंदी दिवस मनाये जाते हैं। साहित्य के रचनात्मक अभियान के तहत अप्रवासियों ने हिंदी की कई वेबसाइट्स, ब्लॉग व वेबमैग्जीन जैसे अभिव्यक्ति-अनुभूति, श्रद्धांजलि, अन्यथा आदि विकसित की हैं। लंदन से पुरवाई, अमेरिका से विश्व व हिंदी चेतना, ओसलो से शांति दूत व स्पेल दर्पण आदि पत्रिकाओं का संपादन व प्रकाशन हो रहा है। कथा यू. के. ने हिंदी साहित्य को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित किया।

आज कई विदेशी विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन हो रहा है। गौरतलब बात है कि विदेशी विश्वविद्यालयों में इधर हिन्दी की स्थिति सुधरी है। हिन्दी में काफी पाठ्यक्रम हुए हैं। कई विश्वविद्यालयों में 'डिपार्टमेंट ऑफ ऐशियन स्टडीज' के अन्तर्गत विषय इंडोलॉजी कार्यशील है। इसके तहत भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास, भारतीय समाज, भारतीय बुद्धिजम व भारतीय भाषा इतिहास एवं आधुनिक भारत आदि विषयों पर पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं।

प्रवासी हिन्दी साहित्य समकालीन हिन्दी साहित्य की एक संज्ञा है। समकालीनता का अभिप्राय समय की विचारधारा, चिन्तन, मानव-मूल्य, मनोवृत्ति, भाषा का प्रयोग आदि। आजकल का मनुष्य ग्लोबल सिटिजन हो रहा है। वह दुनिया घूम रहा है। यथार्थवादी अथवा प्रैक्टीकल हो गया है। वह सीधे बात पर आना चाहता है। समाज खुल रहा है; अत: एक रचनाकार का दायित्व है कि वह समाज में जो हो रहा है उसे मान्यता दे। जो बातें समाज में हैं उन्हें माने। फालतू का महिमामण्डन करना, तथाकथित आदर्श का मखौटा ओढ़ने की आवश्यकता नहीं है। सच्चाई से मुँह न मोड़ो। आज अगर समाज में *लेसबियन* व *गे* खुल कर कह रहे हैं कि *'लेसबियन'* व *'गे'* हैं तो उन्हें स्वीकार करो। अनब्याही माँएं समाज व कानून से कुछ अपेक्षायें रख रही हैं तो उनका साथ दो। माइग्रेशन, लिविंग रिलेशन्स, समकालीन भारत में लोगों का सेक्स के प्रति बदलता नजरिया...कई नये मुद्दे हैं जिनका सही चित्रण करने की आवश्यता है। मनुष्य भावनायें, वृत्ति, ताकतें व कमजोरियाँ सभी का अपनी लेखनी में समावेश करें।

भाषा का भी वैश्वीकरण हो गया है। अगर कोई शब्द मेरे भाव अच्छे से व्यक्त कर सकते हैं तो उनका प्रयोग करने से हिचकना क्यों? अब हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि अँग्रेज़ी आज तक ग्लोबल लेंगुएज है। लोग कुछ शब्द व भाव अँग्रेज़ी भाषा में बेहतर समझते हैं, तो उनका प्रयोग करने से झिझक क्यों?

यह भी गौरतलब है कि आज के पाठक क्या, किस शैली व भाषा में पढ़ना चाहेंगे। भारतवर्ष की आधी से अधिक जनता युवा है। जब तक लेखक अपनी रचनाओं में युवाओं की समस्यायें, उनके नये सोच-विचार व उनके जीवन में आये आधुनिकरण को नहीं दर्शायेंगे, उनको साहित्य आकर्षित नहीं करेगा। अब समय नहीं रहा कि घिसी-पिटी परम्परायें, संस्कृति की दुहाई, सांस्कृतिक आक्रमण व कस्बों के आदमियों को ही लेकर कहानियाँ लिखी जायें। एक आधुनिक दृष्टिकोण का होना अनिवार्य है।

एक प्रवासी लेखक का लेखन क्षेत्र काफी फैल जाता है। विभिन्न परिवेशों, संस्कृतियों व प्रकृतियों के लोगों के साथ तालमेल बैठाते हुए उसका दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है। तेजेन्द्र शर्मा, उषा राजे, सुधा ढींगरा, इला प्रसाद...किसी भी प्रवासी हिन्दी लेखक की रचना पढ़ो तो उनमें एक खुलापन नजर आता है। ये रचनायें जिन्दगी के अधिक करीब हैं। उनकी लेखनी में एक नयापन, एक मॉर्डन अप्रोच दिखती है। कहानी के पात्र धरातल पर ही रहते हैं। किसी की बेवजह से महिमामण्डन नहीं होती। विशेषकर नकारात्मक पात्र भी पाठकों की सहानुभूति बतौर लेते हैं। ग्लोबलाइजेशन, भारत से विदेशों की तरफ लोगों का जो स्थानान्तरण बढ़ रहा है उसको अपनी लेखनी में उतार रहे हैं। यूरोपीय-अमेरिकन संस्कृति का परिचय पाठकों को मिलता है। पाठक लंदन, रोम, डेनमार्क आदि घूमे बगैर ही वहाँ के संसार से रू-ब-रू हो जाते हैं।

जो बात दिल को खटकती है वह यह कि आखिर प्रवासी लेखक कहानियाँ-उपन्यास या कवितायें ही लिख रहे हैं। अन्य विधाओं में प्रवासी हिन्दी साहित्य सर्जन अभी बहुत कम है। प्रवासन मुद्दों पर गंभीर लेखों की कमी है। दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी व इंडोलॉजी के प्रोफेसर व एक सम्माननीय शोधकर्ता डॉ. विमलेश कान्ती वर्मा ने अपने लेख 'प्रवासी भारतीय लेखन और राष्ट्रीय अस्मिता का सवाल' में कुछ ज्वलंत मुद्दे उठाये हैं। डॉ. वर्मा ने गैर-हिन्दी भाषियों के लिए हिन्दी-अँग्रेज़ी शब्दकोश व अन्य पुस्तकें जैसे 'फिजी में हिन्दी' आदि लिख कर प्रवासी हिन्दी साहित्य को थोड़ा विस्तृत किया। उनकी प्रवरता हिन्दी व इंडोलॉजी के माध्यम से वैश्विक भारतीय समुदायों के बीच सेतू का निर्माण व भारतीय मूल के लोगों के बीच हिन्दी का उत्थान करना है। मॉरीशस के प्रख्यात हिन्दी लेखक अभिमन्यु अनत ने 'पर्यावरण' व 'हम प्रवासी' पर पुस्तकें लिख अप्रवासी हिन्दी साहित्य को और नये आयाम दिये। नार्वे में नार्वे-हिन्दी लेखक डॉ. सुरेश चंद शुक्ला ने नार्वेजियन-हिन्दी अनुवाद करके प्रवासी हिन्दी साहित्य की दिशा में एक नई विधा कायम की।

भारत से प्रकाशित होने वाली आज कई पत्रिकायें 'प्रवासी कलम' के तहत प्रवासी लेखकों की रचनाओं को स्थान दे रही हैं। हिंदी छात्र प्रवासी लेखकों की रचनाओं पर शोध करके हिन्दी साहित्य को अधिक

सुघढ़ कर रहे हैं। प्रवासी साहित्य सम्मेलन हो रहे हैं, संग्रह छप रहे हैं...संस्थायें बन रही हैं...प्रवासी हिन्दी लेखक सेमिनारों का आयोजन बढ़ता जा रहा है। मगर यह भी आरोप लगाया जा रहा है कि प्रवासी शब्द पर कई लोग, भारत-निवासी प्रकाशक, प्राध्यापक, आलोचक व स्वयं प्रवासी साहित्यकार राजनीति कर रहे हैं।

निःसन्देह 'प्रवासी हिन्दी साहित्य' शब्द पर कई साहित्यकारों व बुद्धिजीवियों को एतराज है। कई साहित्यकारों व प्रकाशकों द्वारा इसे दूसरे दर्जे का साहित्य माना जाता है। मगर कुल मिलाकर प्रवासी हिन्दी साहित्य एक चिन्तन है, एक आन्दोलन और एक प्रगति हिन्दी साहित्य जगत में। इसे उचित व सही सिला देने की आवश्यकता है, जिससे यह और विकसित हो सके और हिन्दी साहित्य को और अधिक समृद्ध व विश्वव्यापी बना सके।

●

लघु कथा

संवेदना के लिये समय

✦ पूर्णिमा वर्मन, शारजाह, यू.के.ई.

राम भरोसे व्यस्त आदमी था। सुबह जैसे ही ऑफिस में आता मशीन की तरह काम करना शुरू कर देता था। उसके पास इतना काम था कि उसे किसी ने बात करते नहीं देखा, हँसते या रोते नहीं देखा। उसके पास इन सब बातों के लिये समय नहीं था। एक दिन राम भरोसे अधिकारी के कमरे में गया और उसकी मेज पर रखे कंप्यूटर, प्रिंटर और स्कैनर को बात करने का समय मिल गया।

प्रिंटर ने स्कैनर से कहा, 'यार तू बड़ा नकलची है। जो भी मैं छाप के रखता हूँ तू उसकी नकल कर देता है। तेरा दिमाग है कि नहीं ?'

स्कैनर बोला-'मेरा दिमाग तो है लेकिन नकल करने का। तुम तो पूरे नौकर हो। अपने मन से एक भी चीज नहीं छाप सकते। जो कंप्यूटर कहता है वह तुम छापते चले जाते हो।'

'हाँ रे' प्रिंटर बोला-'मैं अपने मन से तो कुछ भी नहीं छाप सकता मैं तो पूरा नौकर हूँ। यह कंप्यूटर तो बड़ा राजा है। हमें काम ही पकड़ाता रहता है, बड़ा दिमाग है इसके पास।'

कम्प्यूटर यह सब चुपचाप सुन रहा था। वह बोला, 'मैं कहाँ कुछ काम खुद काम कर पाता हूँ। यह जो राम भरोसे है न, यह मुझसे जो भी कहता है मैं टाइप करता जाता हूँ। कभी यह चित्र बनाने को कहता है तो चित्र बनाता जाता हूँ। कभी यह संगीत सुनने को कहता है तो मैं संगीत सुनाता जाता हूँ। मैं तो तुम सबसे भी बड़ा नौकर हूँ। काश! मैं बी राम भरोसे की तरह होता। खुद कुछ भी न करता बस दूसरों से काम करवाता रहता।'

'ओह! हम तीनों की किस्मत खराब है। हम कितने लाचार और बेबस हैं, यह सोचकर तीनों उदास हो गए।

इतनी देर में राम भरोसे बॉस के कमरे से लौटकर वापस लौट आया। उसने कंप्यूटर को पीछे खिसकाया। हाथों को बाँधकर मेज पर रखा और सिर झुका लिया। वह उदास दिखता था। न जाने क्या हो गया कि उसे नौकरी से निकाल दिया गया था। उसने एक भरी पूरी निगाह से मेज को देखा, उँगलियों को कम्प्यूटर, प्रिंटर और स्कैनर पर फेरा, धीरे से कहा-'मेरी नौकरी तो गई, आज मैं बेकार हो गया, मेरी किस्मत में दर दर भटकने के दिन आ गए, तुम्हारी किस्मत बनी रहे। विदा दोस्तों कल से तुम्हें एक नया साथी मिल जाएगा!'

तीनों ने राम भरोसे को उदास नजरों से देखा।' हाय, यह बंदा इतना संवेदनशील था, हमने तो कभी जाना ही नहीं। इसने कभी बताया ही नहीं कि नौकरी जाना दुख की बात है। बिना काम के क्या खुशी नहीं होती? जो सबसे काम करवाता है क्या वह भी इतना उदास हो सकता है? क्या आराम में सुख नहीं... लो यह तो चल भी दिया। हमें कुछ सोचने समझने का मौका ही नहीं मिला।'

रामभरोसे अगले दिन काम पर नहीं आया। एक और बंदा आया। उसने कम्प्यूटर को सामने खींचकर सेट किया और काम चालू कर दिया। कम्प्यूटर स्कैनर और प्रिंटर काम करने लगे। उनके पास कुछ भी सोचने या बात करने का समय नहीं था।

●

प्रवासी हिंदी कहानियों में वृद्धावस्था

✦ विजय शर्मा

कहानियाँ संबंधों को लेकर रची जाती हैं। संबंधविहीन कहानी की कल्पना नहीं की जा सकती है। ये संबंध मानवीय हो सकते हैं। मानवेतर भी हो सकते हैं। कहानी का परिदृश्य में अर्चना वर्मा लिखती हैं, ''संबंध किसी न किसी स्तर पर व्यवस्था की उपज होते हैं और स्वयं एक व्यवस्था रचते हैं। वे प्रेम, दाम्पत्य तथा अन्य पारिवारिक संबंध हों या कारोबारी या सामाजिक व्यावसायिक व्यवस्थाओं में पदानुक्रम के चिह्न, आदमी की जिन्दगी का सारा नाटक उन्हीं की धरती पर घटित होता है।''[1]

वृद्धावस्था जीवन का एक अंग है। इसकी एक अवस्था है। एक अनुभव है। बचपन, युवावस्था और वृद्धावस्था जीवन के प्रमुख तीन अंग हैं। बचपन और वृद्धावस्था में कई समानताएँ हैं। दोनों अवस्थाओं में व्यक्ति दूसरों पर आश्रित रहता है। दोनों अवस्थाओं में जिद करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। लेकिन दोनों में बहुत असमानताएँ भी हैं। बचपन में वह दूसरों पर निर्भर करता है, सामान्यत: दूसरे भी उसकी देखभाल करते हैं उसकी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। बचपन में अधिकांश आवश्यकताएँ दूसरे पूरी करते हैं, अक्सर यह काम लोग (माता-पिता या अन्य परिजन) प्रसन्नतापूर्वक करते हैं। अपवाद भी मिल सकते हैं। मगर एक वृद्ध की देखभाल करते हुए लोग कतराते हैं। हाँ, इसके भी अपवाद हैं। बच्चे जज नहीं करते हैं। वृद्ध सदा दूसरों को जज करते हैं, अपने अनुभव से तौलते हैं। बचपन व्यक्तित्व का निर्माण काल है। इसलिए बालक नमनीय होता है। जवानी आने के पूर्व ही उसका व्यक्तित्व निर्मित हो चुका होता है। वृद्धावस्था में अक्सर व्यक्तित्व अनमनीय होता है। उसका लचीलापन समाप्त हो चुकता है। बढ़ापे में जीवन और समाज के प्रति नजरिया बदलने के उदाहरण भी मिलते हैं। इस उम्र में व्यक्ति की भूमिका बदल चुकी होती है, अब वह आय का स्रोत नहीं होता है। इसके साथ ही उसके प्रति दूसरों का नजरिया भी बदल जाता है। एक समय का घर का मुखिया अब हाशिए पर जा चुका होता है। किसी के पास उसके लिए वक्त नहीं होता, जबकि उसके पास अब वक्त ही वक्त होता है।

कहानियों में वृद्धावस्था की बात करते ही प्रेमचन्द की **'बूढ़ी काकी'** तथा भीष्म साहनी की **'चीफ की दावत'** सबसे पहले याद आती हैं। ये कहानियाँ हिन्दी साहित्य की धरोहर हैं। प्रवासी हिन्दी साहित्य में भी वृद्धावस्था पर कई बहुत अच्छी कहानियाँ मिलती हैं। सुषम बेदी (गुनहगार, विषकन्या) अचला शर्मा (चौथी ऋतु), तेजेंद्र शर्मा (पासपोर्ट का रंग, पापा की सजा, मुझे मार डाल बेटा), दिव्या माथुर (ठुल्ला किलब), भूदेव शर्मा (प्रवासी की माँ), उषा वर्मा (कारावास), शैल अग्रवाल (घर का ठूँठ), महेंद्र दवेसर 'दीपक' (भँवर की चोट, कब्र का दीया, दीवारें), इन्दिरा मित्तल (देहरी), उषा प्रियम्वदा (वापसी, शून्य) आदि वृद्धावस्था के संघर्ष, संताप, प्रतिरोध, आत्मसम्मान, मतभेद, गरिमा, नजरिया, पीढ़ियों के टकराव आदि का चित्रण करती कहानियाँ हैं। उषा प्रियम्वदा की **'वापसी'** कहानी को नई कहानी की अग्रिम पंक्ति में रखा जाता है। 1980 के बाद अपनी मर्जी से विदेश गई पीढ़ी के लेखकों ने भी इस कथानक पर सुन्दर कहानियाँ दी हैं। देशकाल बदलने से इन कहानियों का मिजाज 'बूढ़ी काकी' या 'चीफ की दावत' से भिन्न है। यहाँ विश्लेषित प्रवासी हिन्दी कहानियाँ किसी दृष्टि से कम महत्त्व की नहीं हैं।

सुषम बेदी की **'गुनहगार'** की रत्ना को उसकी बेटी-दामाद, बहन-बहनोई, बेटा-बहू सब सलाह देते हैं कि वह बुढ़ापे में कहाँ अकेली रहेगी, इसलिए अपने लिए साथी खोज लें। एक समय की कामकाजी महिला रत्ना पति की मृत्यु के बाद अपने बेटे को पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाती है और उस पर अपनी सारी आशाएँ और योजनाएँ केन्द्रित कर लेती हैं। नतीजतन बहू के आने के बाद बेटे की योजनाओं में वह कहीं नहीं है। एक लम्बे समय तक परिवार की मुखिया की भूमिका निबाहने वाली रत्ना अब कमाऊ नहीं है। उसकी अगली पीढ़ी के मूल्यों में परिवर्तन आ चुका है। वे विगत को अलविदा कर चुके हैं। उसकी बहू अमेरिका की ही लड़की है, अत: उसका जीवन के प्रति अलग नजरिया है। मगर उसकी अपनी बेटी और बहन भी अमेरिका के समाज की मान्यताओं की वकालत करती हैं। बेटी सलाह देती है, ''ममी आपको बुढ़ापे में अपना कोई साथी ढूँढ लेना चाहिए। यहाँ सब ऐसे ही करते हैं। मेरी सहेली की माँ तो अस्सी की होनेवाली है और वे छियासी साल के अपने एक पड़ोसी के साथ जुड़ गई हैं। दोनों मजे से रहते हैं...एक दूसरे का साथ भी रहता है, एक दूसरे की देखभाल भी करते हैं। वरना ममी पोते-पोतियों के पास कहाँ वक्त है...''[2]

छोटी बहन और बहनोई अमेरिका के रीति-रिवाज की दुहाई देते हुए सुझाव देते हैं, ''बहनजी, आपको अपनी जिन्दगी अपने ढंग से, अपने बूते पर जीनी चाहिए। आपको भी कोई ब्वॉयफ्रेंड बना लेना चाहिए। यहाँ तो बूढ़े-बूढ़े लोग शादी करते हैं। यहाँ इसमें बुराई नहीं मानी जाती। उल्टे लोग खुश ही होते हैं कि आपने बुढ़ापे में भी जिन्दगी को रसमय बना लिया।''[3]

रत्ना खिलवाड़ में आकर बहन-बहनोई के कहे पर अपने विवाह के लिए विज्ञापन दे देती है। जब पत्र और फोटो आने लगते हैं तो वह परेशान हो जाती है। उसके मन में इतने दिनों की दबी इच्छाएँ

सिर उठाने लगती हैं। इनमें आर्थिक सुरक्षा, बढ़ापे में किसी सहारे की पूर्ति की कामना, रिश्तेदारों और अपनों की बेरुखी का बदला लेने की भावना के साथ यौन संतुष्टि की कल्पना भी सिर उठाती है। और इसी यौन भावना के मन में आते ही उसे अपराध बोध होता है। उसे लगता है कि जो पति उसे इतना प्रेम और विश्वास करता था, उसी के साथ वह विश्वासघात करने जा रही है। उसे भारत में रह रहे रिश्तेदारों के अपमान और उनके द्वारा रत्ना पर लगाए जाने वाले लांछनों की चिंता भी होती है। उनकी इज्जत की फिक्र होने लगती है। उसे लगता है कि उसके ऐसा करने पर उन लोगों की बड़ी थू-थू होगी, ''ओह कितनी शर्म आएगी उन्हें। चाचे-ताये के आगे सबकी नाक कट जाएगी, वे कहेंगे देखो, दूसरा आदमी कर लिया।''[4] वह उन्हें चोट नहीं पहुँचाना चाहती है। वह इतनी संवेदनशील है, अपने भारतीय परिवेश में इतनी रची-बसी है कि अपनी मृत माँ की भावनाओं की सोच भी उसे जकड़ लेती है। ''कैसा जमाना आ गया है। रत्ना की माँ आज जिन्दा होती तो क्या कहती। विधवा बेटी दूसरी शादी कर रही है और वह भी साठ साल की उमर में।''[5]

एक ओर नये जीवन से मिलने वाली उत्तेजना की मन में ललक है, दूसरी ओर उसके भारतीय संस्कार उसे जकड़े हुए हैं। बहुत बरस विदेश में रहने के बावजूद उसका मन विदेश के रंग में पूरी तरह से नहीं रंग पाया। वह बहुत ऊहापोह में फँसी है। मृत पति के प्रति दूसरी शादी जैसा गर्हित कार्य नहीं कर सकती। दु:ख-निराशा में अपने मृत पति को ही संबोधित करती है। उसे अपना भागीदार बनाती है और क्षोभ में भरकर, विवशता के साथ कहती है, ''देखो सब। देखो मेरा हाल। देखते क्यों नहीं? किस्मत ने मुझे इस हद तक ला दिया...''[6]

खुद को दिया हुआ कोई तर्क उसके काम नहीं आता है। अंत में टटोल कर पाती है कि उसकी यौन लालसा ही उसे इस उम्र में एक और विवाह के लिए उकसा रही है। इस बात से उसे बहुत अपराध बोध होता है और वह फफक-फफक कर रोने लगती है। विवाह प्रस्ताव के लिए आए सारे पत्र और फोटो की चिन्दी-चिन्दी कर डालती है। संवेदना के नष्ट होने और संबंधों के प्रैक्टिकल होने की यह कहानी बहुत संवेदनशीलता के साथ रची गई है। रत्ना में एक ओर जिजीविषा है तो दूसरी ओर प्रवास में अकेली जिन्दगी की आखिरी दौर काटने की त्रासदी भी।

लन्दन में रह रही कहानीकार अचला शर्मा की **'चौथी ऋतु'** गुनहगार से मिजाज की कहानी है। प्रवासी हिन्दी लेखक द्वारा रची जाकर भी यह प्रवासियों की कहानी नहीं है। हाँ, प्रवासी द्वारा अनुभूत, प्रवासी द्वारा संप्रेषित कहानी है। इसका परिवेश पूर्णरूपेण विदेशी है। सारे पात्र विदेशी हैं, उनकी संवदेनाएँ, सभ्यता-संस्कृति, व्यवहार मूल्य सब भारत से भिन्न हैं। वृद्धावस्था यहाँ है मगर उसे देखने का नजरिया भिन्न है।

कहानी शारीरिक रूप से अशक्त होती हुई एक वृद्धा से प्रारम्भ होती है। लिंडा लन्दन की तीस साल की सबसे बड़ी बर्फबारी की बात कर रही है। क्रिसमस का समय है। उसके फायरप्लेस पर ढेर सारे क्रिसमस काड्र्स सजे हुए हैं। वह याद कर रही है कि लन्दन में तीस साल में इतनी बर्फ पहले कभी नहीं पड़ी। इसके साथ वह अपनी उम्र का अन्दाजा दे देती है। तीस साल पहले वह केवल चालीस साल की थी, मतलब अब वह सत्तर साल की वृद्धा है। उसके पति को गुजरे दस साल हो चुके हैं। वृद्धों के समक्ष अतीत स्मरण चाहे-अनचाहे बार-बार चला आता है। पति से उसे शिकायत है कि जब संग साथ की सबसे ज्यादा जरूरत थी वह उसे अकेला छोड़ कर चला गया। वह पति की तस्वीर को उलाहने भरी दृष्टि से निहारती है। इससे यह भी पता चलता है कि उसने सुखी वैवाहिक जीवन व्यतीत किया है। रत्ना और लिंडा दोनों अपने-अपने मृत पति को उलाहना देती हैं। दोनों को मलाल है कि उनके पति उन्हें बेसहारा छोड़ गए हैं। जब बुढ़ापे में साथी की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, वे अकेली हैं।

उसकी एक बेटी और नाती-नातिन हैं। वे उसके पास नहीं रहते हैं। साल में एकाध बार हफ्ता दस दिन के लिए आते हैं, घर में रौनक करके चले जाते हैं। उनके गुलजार करके चले जाने के बाद घर और ज्यादा सूना हो जाता है। पिछले दस वर्षों से लिंडा नितांत अकेली रह रही है। बेटी की सलाह पर उसने एक किरायेदार रखा था। यह चित्रकार लड़की मेरीयन भी अकेली रहती थी। वह युवा थी। उसका अकेलापन ओढ़ा हुआ था। लिंडा की उम्र की तरह यह मजबूर न थी। बुढ़ापे में चुनने की आजादी समाप्त होने लगती है, क्योंकि सामने एक बन्द गली होती है। लिंडा की किरायेदारिन यह लड़की एक दिन बिना कोई सूचना दिए घर छोड़ कर चली जाती है। लिंडा फिर एक बार निपट अकेली है।

लिंडा ने इस बार क्रिसमस पर अपने कुछ पड़ोसियों को अपने यहाँ आमंत्रित किया है। पड़ोसी जो उसी की तरह अकेले और वृद्ध हैं। उसने सबके लिए बहुत शौक से टर्की और क्रिसमस पुडिंग बनाई है, फ्रिज में वाइन ठंडी की है। वह अपने घुटनों के दर्द के बावजूद उनका इंतजार कर रही है। उसके मन में उन्हें बुलाते समय संशय भी था कि वे लोग आएँगे भी या नहीं। एक दिन पहले बाजार में मिलने पर पीटर ने खुशी जताई थी और आने की स्वीकृति दी थी। इसका मतलब एक मेहमान का आना तो पक्का था। पीटर समय से आ भी जाते हैं। उनके घर की हीटिंग मशीन खराब हो गई है, अत: आग तापने के लिए पुराना फर्नीचर जला कर किसी तरह काम चला रहे हैं। आते ही वे मृत्यु की बात प्रारम्भ कर देते हैं, ''उस दिन टेलीविज़न पर एक प्रोग्राम देख रहा था मिसेज स्मिथ, आपने भी देखा होगा? सुना कि सर्दियों में बूढ़े लोगों की मृत्यु दर बढ़ जाती है और क्रिसमस के दौरान आत्महत्याओं की संख्या बढ़ती है।''[7]

बुढ़ापे में यह स्वाभाविक भी है। मृत्यु अश्वयम्भावी है। किसी भी क्षण आ सकती है। बचपन, जवाबी, बुढ़ापा उसके लिए कोई मायने नहीं रखती है, फिर भी बुढ़ापे में इसका खटका सदा लगा रहता है। इस अवस्था में मृत्यु आपको दिन रात घेरे रहती है। मगर लिंडा आज मृत्यु की बात करने के मूड में नहीं है। वह तो सेलीब्रेट

करना चाहती है। वह जिन्दगी की बात करना चाहती है; अत: वह पीटर का ध्यान दूसरी ओर मोड़ देती है। पीटर के बेटा बहू इस बार क्रिसमस पर नहीं आ रहे हैं। इसका अनुमान पहले उन्हें नहीं था, इसलिए उन्होंने अपने लिए ओवरकोट न लेकर बच्चों के लिए उपहार खरीदे। तब यह भी मालूम न था कि इस बार लन्दन में इतनी जबरदस्त सर्दी पड़ेगी। अब उपहार यूँ ही घर में पड़े हैं और वे सर्दी में सिकुड़ रहे हैं।

वे अपने विचारों में खो जाते हैं, मगर आज लिंडा किसी को अकेले अपने विचारों में गुम नहीं होने देगी। वह उन्हें ब्रांडी का गिलास पकड़ाती है और आगे की बातचीत के लिए उकसाती है। पीटर घूमने के शौकीन हैं, यह जानकर वह अपने पति जॉर्ज के विषय में बताती है कि उन्हें भी घूमने का बेहद शौक था और इसी क्रम में वह स्वयं मृत्यु की बात कर बैठती है। वातावरण एक बार फिर उदास हो जाता है। इसी बीच सड़क से पुलिस की गाड़ी का सायरन सुनाई देता है। यह सायरन उन लोगों को याद दिला देता है कि शायद कहीं कोई दुर्घटना हुई है या फिर कोई एकाकी व्यक्ति गुजर गया है। वे लोग फिर मृत्यु की बात करने लगते हैं। इस बार पीटर थोड़ा निर्लिप्त रहते हैं।

थोड़ी देर में रोजमेरी आ जाती है। उसकी उम्र बहुत ज्यादा है। उसका सिर निरंतर हिलने लगा है, पीठ झुककर दोहरी हो गई है। उसके पीछे लॉरेंस भी आ जाते हैं। लॉरेंस जरा गुमसुम तबियत के आदमी हैं। जल्दी किसी से खुलते नहीं हैं, किसी से बातचीत नहीं करते हैं। वे लोग पड़ोसी हैं, मगर कभी उनका परिचय नहीं हुआ है। लॉरेंस भी काफी बूढ़े हैं और उन्हें सिगार पीने की आदत है। रोजमेरी जब खाँसने लगती हैं तब उन्हें भान होता है कि वे कमरे में अकेले नहीं हैं और सामाजिकता का कुछ तकाजा होता है। अकेलेपन के आदी लॉरेंस को पहली बार दूसरों की चिंता होती है और वे पूछते हैं, ''आपको धुएँ से परेशानी तो नहीं हो रही है?''

ये लोग बुढ़ापे और अकेलेपन के नाम पर शैम्पेन खोलते हैं। जाम उठाते हैं। इसी बीच मौत एक बार फिर उनके बीच पसर जाती है। लॉरेंस बताते हैं, ''आपको मालूम है, कल तेरह नम्बर वाली मिसेज वुड की मौत हो गई...''[9] लोग मौत से डरे हुए हैं। रोजमेरी को चिंता है कि कहीं उनकी लाश भी घर में दो दिन तक सड़ती न रह जाए और किसी को पता न चले। सब लोग अपने-अपने विचारों, मौत के विचारों में खो जाते हैं। एक बार फिर लिंडा उन्हें उबारती है, जिन्दगी की ओर लौटा लाती है। वह कहती है, ''भई आज क्रिसमस है। हम लोग मातमपुर्सी के लिए इकट्ठे नहीं हुए हैं।''[10] वे लोग एक बार फिर मौत से जिन्दगी की ओर लौटते हैं।

फिर लिंडा उन लोगों को खाना लग जाने की सूचना देकर मृत्यु की ओर से वर्तमान में खींच लाती है। सब खाने बैठते हैं। खाने की मेज क्रिसमस के लिए सजी हुई है जिसकी एक-एक चीज लिंडा ने प्रेम से बनाई है। चीजें जो कभी उसे उसकी बेटी की याद देती हैं, कभी पति की। लिंडा जिसने पति की मृत्यु के बाद संगीत सुनना छोड़ दिया था वह आज **'फोर सीजन'** रिकॉर्ड बजाती है। लिंडा सोचती है कि चौथी ऋतु तो मृत्यु है पर तत्काल मन को झटक कर खुद से कहती है, ''यह चौथी ऋतु तो मृत्यु का प्रतीक है। जीवन का शीत है। उसके बाद बंसत तो नहीं लौटता। पर नहीं शायद लौटता है–नन्हीं कोंपलों के रूप में...किसी नवजात शिशु की गुलाबी मुट्ठियों के रूप में...''[11] अचना शर्मा यहाँ पुनर्जन्म की भारतीय अवधारणा को लिंडा की सोच में प्रतिपादित करती हैं, खासकर क्रिसमस, जीसेस क्राइट के जन्मोत्सव पर यह टिप्पणी सटीक बैठती है।

धीरे-धीरे वे खुलने लगते हैं। रोजमेरी भी कहती है कि उसे कभी विश्वास न था कि कोई कभी उसे आमंत्रित करेगा। वे एक दूसरे से अपने मन की बातें साझा करते हैं। आपस की औपचारिकता अपनेपन की मिठास में बदलने लगती है। और इतना ही नहीं वे एक साथ घूमने जाने की योजना बनाते हैं। लिंडा पुराने पड़ गए अपने परदे बदलने की बात सोचती है। उन सबमें संग साथ को लेकर एक बार फिर उमंग जाग उठती है। वे एक दूसरे के लिए भविष्य में एक-दूसरे की चिंता करेंगे। अब वे अकेले नहीं हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, संग साथ उसे मजबूती प्रदान करता है। जीने का उद्देश्य देता है। वृद्धावस्था में भी लोगों को उमंग से भर देता है।

'गुनहगार' की तरह ही यह एक कमरे में घटित होती है। राजेंद्र यादव का मानना है कि प्रवासी हिन्दी लेखन नॉस्टेल्जिया की गिरफ्त में है। मगर 'चौथी ऋतु' इस मिथक को तोड़ती है कि प्रवासी हिन्दी कहानियाँ केवल गृहातुरता (नॉस्टेल्जिया) की कहानियाँ होती हैं। यह प्रवासी द्वारा लिखी गई है मगर कहानीकार जिस देश, जिस परिवेश में रह रहा है वहाँ की सभ्यता, संस्कृति पर उसकी सजग दृष्टि है। यह मानवीय संवेदना को प्रस्तुत करती है। रचनाकार एक संवेदनशील प्राणी होता है, उसके लिए देशकाल से ज्यादा मानवीय अनुभूतियाँ मायने रखती हैं। 2010 के नोबेल पुरस्कार विजेता पेरु के साहित्यकार मारियो वर्गास लोसा कहते हैं कि जिस स्थान में वह रह रहे होते हैं वह उनके लेखन के लिए उर्वरक होता है।

'चौथी ऋतु' और **'ठुल्ला किलब'** में मूलभूत अंतर होते हुए भी कुछ समानताएँ हैं। दोनों कहानियाँ विदेश की पृष्ठभूमि पर हैं, बूढ़ों के एक समूह के इर्द-गिर्द रची गई हैं। दोनों कहानियों को संवाद आगे बढ़ाते हैं। दिव्या माथुर की कहानी के पात्र भारतीय हैं और ज्यादातर कहानी घर के बाहर पार्क में चलती है, जहाँ वे सब सैर के लिए आए हुए हैं। 'गुनहगार' की रत्ना अपना ही रेहा-रेशा उधेड़ती है, जबकि जानकी और पुष्पा दूसरों की बखिया उधेड़ने में जुटी हैं। 'गुनहगार' की भाँति यहाँ एकांत और एकालाप नहीं है। यह 'चौथी ऋतु', 'पासपोर्ट का रंग', 'गुनहगार' कहानियों से बिलकुल अलग मिजाज की कहानी है। इस कहानी में ऐसे पात्र हैं जो उम्र दराज हैं और अपने बेटे-बहू अथवा बेटी-दामाद के पास रह रहे हैं। या कुछ दिन के लिए विदेश में रहने आए हैं। ये लोग न तो यहाँ के बाशिन्दे हैं और न ही अपनी मर्जी से आए हैं। इनके पास यहाँ आने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। पूरी कहानी का वार्तालाप पढ़कर कहीं

से नहीं लगता है कि आप दिल्ली में नहीं हैं, जब तक कि अंत नहीं आ जाता है और हाइड पार्क का नाम नहीं आता है। लगता है आप दिल्ली में और वहाँ भी खासतौर से चांदनी चौक में हैं। यह इस कहानी की भाषा का कमाल है। संवाद यह भी दिखाते हैं कि स्थान बदल जाने से मानसिकता नहीं बदल जाती है, जीवन के प्रति नजरिया नहीं बदल जाता है। समाज को देखने का तरीका नहीं बदल जाता है। पूर्वाग्रह बने रहते हैं।

'ठुल्ला किलब' में सासें हैं जो बहू के राज में अपने मनपसन्द खाने को तरस रही हैं। बहू को अरहर की दाल में जीरे का सही छोंक लगाना नहीं आता है, एक अन्य सास को बहू के छोंक लगाने से ही परेशानी है। मतलब यह कि ये मिलते ही बहू की आलोचना का पिटारा खोल लेती हैं। करने के लिए इनके पास एक ही काम है एक दूसरे को बहू पुराण सुनाना। उम्र ने खाने की ललक बढ़ा दी है जबकि उम्र के साथ आई बीमारियों ने खाने पर पाबन्दी लगा रखी है। इसका दोष भी बहू के सिर। किसी को शूगर है तो किसी को रक्तचाप। मगर इनकी सबसे बड़ी बीमारी दूसरों के फटे में पाँव डालने की है। किसकी किससे आशनाई चल रही है? कौन किससे शादी कर रहा है? कौन पार्टियों में ससुर के साथ बिना ढंग के कपड़े पहने जा रही है? ये ही इनके मनपसन्द विषय हैं। मगर इनकी जिन्दादिली देखने लायक है। ये एक दूसरे से खूब हँसी मजाक करती हैं। चुहल करती हैं। एक दूसरे को बढ़ापे में शादी करने की सलाह भी देती चलती हैं।

बेटे का सुबह-सुबह बेड टी बना कर बेडरूम में ले जाना इन्हें खलता है। क्योंकि इनके पति जब तक जीवित थे उन्होंने यह कभी नहीं किया। ये भूल जाती है कि ये अपनी बहुओं की भाँति जॉब करने घर के बाहर नहीं जाती थीं। देर रात तक ऑफिस से थक कर चूर घर नहीं लौटती थीं। इनके पति ने कभी इन्हें एक घूँट पानी नहीं दिया था, इसका इन्हें मलाल है। अगर कभी देता तो भी यह इन्हें अच्छा न लगता, ये स्वयं को पुरुष की दृष्टि से ही तौलती हैं। कोई पति अपनी पत्नी को चाय देता है तो इस पर ये खुश नहीं हो सकती हैं। ये बूढ़ी स्त्रियाँ इसलिए भी दु:खी हैं कि इनके बेटे बहू के पास इनके लिए समय नहीं है और तो और पोते-पोतियों के पास भी इनके लिए समय नहीं है। वे बच्चों को अपनी भाषा सिखाना चाहती हैं तो बेटे बहू को लगता है कि बच्चे कन्फ्यूज़ हो जाएँगे। यहाँ दिव्या माथुर बड़े मार्के की बात कहती है, ''मैं तोसे कऊँ पुष्पा, पोता-पोती को भी म्हारे लिए टैम नई। एक दिन हमने कई कि बिटवा, अपनी भासा तो नेंक सीक लो, तो बऊ ने कई कि जीया कनैफूज न करो बच्चन को।''

''हाय राम जीया, मरी अपनी भासा सीकने से कोई कनैफूज होता है का?''

''वई तो, गुजराती, पंजाबी और उर्दू वाले नई होते। हिन्दी वालों के बच्चे कनैफूज क्यूँ होवे हैं ये समझ ना ई आवै है हमें तो पुस्पा।''[12]

इन्हें लगता है कि केवल घर की चौकसी करने के लिए इन्हें यहाँ बुलाया गया है। इनका दु:ख है कि देश में परिवार में शादी-ब्याह होने पर भी ये भागीदारी नहीं कर पाती हैं। जब भी वे किसी पारिवारिक आयोजन में भारत जाने की बात करती हैं पैसों का रोना रोया जाता है। जबकि बेटा बहू देश-विदेश की यात्रा करते रहते हैं। देश में छूट गए परिजनों से इनका लगाव स्वाभाविक है। हँसी, व्यंग्य, वेदना है कहानी के पूर्वार्द्ध में पर परनिन्दा का स्वर बहुत प्रबल है। अज्ञेय को एक बार सियाराम शरण गुप्ता ने कहा भी था, ''सच बताएँ, परनिन्दा के बराबर सुख दुनिया में दूसरा नहीं है।''[13] और उसके बाद वे खिलखिला कर हँसने लगे थे।

वे किसी रिश्तेदार डॉक्टर को देखते ही उससे खड़े-खड़े इलाज करवाना अपना हक मानती हैं। जबकि विदेश में भारतीय भी बहुत प्रोफेशनल होता है। वे उन्हें क्लीनिक में आने को कहती है। आज की भारतीय पीढ़ी भी ऐसा ही कहेगी। समय बदल चुका है जो समय के साथ नहीं चल पाते हैं उन्हें बहुत परेशानियों का सामना करना पड़ता है। भावात्मक रूप से बहुत कष्ट सहना पड़ता है। प्रोफेशनल होने का मतलब है भावुकता से दूर रहना, भावनाओं को भी पैसे से तौलना। कहना मुश्किल है कौन सही है, कौन गलत है।

यह कहानी एक कलाइडोस्कोप है। चटपटी बातचीत एक विषय से दूसरे विषय पर सरकती जाती है। एक के बाद दूसरी आकृति उभरती जाती है। भाषा की रवानगी देखते बनती है। क्लब पार्टी की बात हो रही है कि किसी की सास के चल बसने की बात निकल पड़ती है। बस फिर क्या है वे लोग शुरू हो जाती हैं, ''हाय राम जीया, तुमै नई मालूम। मैनू की सास तो नई रई। परके साल गुजर गई। तभई तो ससुर बिलैत बुला लिए, जो है सो है।''

''मैं तोसे कऊँ पुस्पा, कित्ती बड़ी बात है कि सुहागिन मरी तुम्हारी तरह...।''[14]

मुझे अपनी दादी की याद हो आई जो बरामदे में बैठ कर सड़क से गुजरने वाली हर चीज, हर आदमी के विषय पर कुछ न कुछ बोलती जाती थीं। चाहे वह कार हो, स्कूटर हो, रिक्शा हो या आदमी, कुत्ता, बिल्ली। बातों का कोई क्रम ना होता पर वे लड़ी पिरोती जातीं। जो भी आँख के सामने से गुजरता उस पर अपनी ओर से कुछ जोड़ती जातीं।

यहाँ भी दो वृद्धाएँ बात कर रही हैं। किसी की सास के मरने से हुए रडुए की बात से उन्हें चुहल सूझती है। ''जो है सो है जीया, अबै चानस है तुमारा, नई।''[15] तभी उनकी दृष्टि चुम्बन लेते जोड़े पर पड़ जाती है। तुरंत बातों का रुख युवा पीढ़ी और विदेश में रह रहे लोगों की नुक्ताचीनी पर मुड़ जाता है। बस, थोड़ी देर में मिनी स्कर्ट की धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं। कितनी बेशरम है यह पीढ़ी ससुर के साथ पार्टी में जाती है और वह भी बिना ढंग के कपड़ों के। ''जो है सो है कम से कम पालटी में तो ढंग से कपड़े पैन के आना चाहिए वो भी ससुर के साथ।''[16] बेपरदगी के साथ वे भी विधुर ससुर भी लपेटे में आ जाते हैं। उन पर आरोप है कि पत्नी के मरने पर एक साल सोग न मना सके और मजे करने लगे हैं।

संयोग की बात है कि वे विधुर इन लोगों के पास पहुँचते हैं और इनमें से एक, जानकी की पहचान अपनी बचपन की सहपाठिन के रूप में करते हैं। जब वे निकट आ रहे थे तो इन लोगों को चिंता होने लगती है कि आज इन्होंने ढंग के कपड़े नहीं पहने हैं बाल ठीक से नहीं संवारे हैं। ''हाय राम पुस्पा, हमने तो आज धोती बी ढंग से नई पैनी, देखियो चुटिया बी बनाने का टैम नहीं मिला।''[17] मतलब यह कि इस उम्र में भी पुरुष की दृष्टि में अच्छी दीखने की लालसा है जो अपने आप में अच्छी बात है, मगर इससे इनके दुमुहे व्यवहार का पता चलता है, जिसका इन्हें खुद भी ज्ञान नहीं है। अपने लिए एक नियम और दूसरों के लिए दूसरे नियम।

वृद्ध जो इनके पास आते हैं वे खासे आकर्षक हैं, सत्तर के हैं, मगर लगते नहीं हैं। पत्नी के मरने के बाद राघव बेटा बहू के आग्रह पर यहाँ आए हैं कुछ दिन रहेंगे। यहाँ से कहानी नया मोड़ लेती है। वे जानकी के साथ पढ़े थे यह सुनते ही जानकी की सहेली पुस्पा मौसी उनके कान में कहती है, ''जो है सो है, मामला जमै सा दीखै है, जीया...''[18] इसी बीच इन लोगों को मीना की माँ का फोन याद आता है, जिसने अपने बेटी के बारे में बताया था कि वह एक मुसलमान लड़के के साथ रह रही है। राघव की सोच अलग है। वे इन लोगों को बताते हैं कि अब भारत में भी लिव इन रिलेशनशिप का चलन हो गया है। सुनकर जानकी और पुस्पा को ताज्जुब होता है, ''ए मैं तोसे कऊँ, कबी सोचा था कि हमारी जात में बी ऐसा होगा। इत्ती सी गोद खिलाई कम्बख्त, ऐसे गुल खिलाएगी छोकरी।''[19] उन्हें अपने जमाने की याद हो आती है। राघव बदलाव के पक्ष में है और वे पुष्पा को भी उसमें समेट लेते हैं जब ऐसे विवाह से उत्पन्न बच्चों की बात आती है तो इसी जानकी को पुष्पा की बातें राघव की उपस्थिति के कारण पुरातनपंथी लगने लगती हैं, ''मैं तोसे कऊँ पुस्पा, तू बी का पचड़ा ले के बैठ गई।''[20]

राघव दिल्ली के ग्लोबलाइजेशन के विषय में बताते हैं जो अब लंदन जैसी ही हो गई है। वहाँ भी किसी के पास किसी के लिए समय नहीं है। वे कहते हैं कि रिटायर्ड लोगों की हालत सब जगह एक जैसी है। यहीं से दिव्या माथुर कहानी को एक नया मोड़ देते हुए कहानी में इन वृद्धों का क्लब बनवा देती हैं। यहाँ पीढ़ियों की टकराहट और विचारों का भेद स्पष्ट रूप से नजर आता है। बहू को सास का यूँ उत्साहित होना नहीं रुचता है। वह अपने पति से कहती है, ''अभी राघव जी से मिले आधा घण्टा भी नहीं हुआ और देखो, कैसे फार्वर्ड दिख रही हैं।''[21] क्लब के स्थान और नियम को लेकर बहस चलती है। कई लोग मिल कर हल निकालें तो समस्या सुलझ जाती है। ये वृद्ध भी स्वयं अपनी समस्या का समाधान खोज लेते हैं। हाँ, इस ठुल्ला किलब के कार्यक्रम भजन-कीर्तन में ही अपनी तृप्ति पाते हैं।

गोपालदास जी का दु:ख लिंडा, पीटर, जानकी, पुष्पा या रत्ना से बिलकुल अलग है। गोपालदास जी बेटे बहू के पास लन्दन में रहे हैं। वे बूढ़े हैं मगर अशक्त नहीं हैं और अकेले भी नहीं हैं। बेटे, बहू, पोता, पोती के साथ हैं। उन्हें परिवार में या परिवार से कोई तकलीफ नहीं है। इस उम्र में उनकी समस्या दूसरी है। **'पासपोर्ट का रंग'** तेजेंद्र शर्मा की एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो एक साथ दो देशों, भारत तथा इंग्लैंड में रह रहा है। उनसे अपना देश भारत नहीं छूटता है। इतना ही नहीं मजबूरी में उन्हें उस देश की नागरिकता लेनी पड़ी है। नागरिकता लेते समय उन्हें उस साम्राज्य की वफादारी की कसम खानी पड़ी है जिस साम्राज्य को कभी गोली खाकर उन्होंने अपने देश से भगाया था। एक समय उन्होंने इसी साम्राज्य को भारत से निकाल बाहर करने की शपथ ली थी। गोली खाई थी। यही बात उनके अंतर को कचोटती है। उनका मन उन्हें धिक्कारता है, क्योंकि वे स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े थे। वह भारत लौट जाना चाहते हैं। दो मानसिकता में बँटे व्यक्ति हैं। रात-दिन स्वदेश लौटने के सपने देखते हैं। प्रधानमंत्री की दोहरी नागरिकता की घोषणा उन्हें उत्साहित कर देती है। मगर राजनीतिक घोषणाएँ लोगों की इच्छाओं से कार्यान्वित नहीं होती हैं। विस्थापन वे पहले भी झेल चुके थे। लाहौर से दिल्ली आ बसे थे। मजबूरी थी। दंगे हो रहे थे। अब फिर एक बार उन्हें मजबूरी में ही देश छोड़ना पड़ा। वे फरीदाबाद की अपनी कोठी में लौट जाना चाहते हैं। यह संभव नहीं है। अब उम्र नहीं है कि वे अकेले रह सकें। बेटा बहू का क्या फायदा। इंद्रेश कहता है–''पापा, आप भी कमाल करते हैं। अब भला इस वक्त आप पार्टीशन की बात लेकर बैठ जाएँगे तो लैफ आगे कैसे बढ़ेगी? किया होगा अंग्रेजों ने जुल्म कभी हमारे देशवासियों पर। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं हम अपने जीवन रोक कर बस उसी पल को बार-बार जिए जाएँ।''[22]

उन्हें प्रवासी देश में कैद और लाचारी लगती है। इस मजबूरी से छुटकारे की किरण उन्हें नजर आती है। दोहरी नागरिकता का चुग्गा उन्हें लुभाता है। वे दूतावास का चक्कर लगाते हैं। कब फॉर्म आए और वे दोहरी नागरिकता लेकर अपने मन के संताप को थोड़ा कम करें। मगर उन्हें कोई नहीं बता पाता है कि फॉर्म कब आएँगे। वे इतने उत्साहित और व्याकुल हो जाते हैं कि लोग उन्हें पागल करार देने लगते हैं। वे दोहरी नागरिकता पाने का स्वप्न लिए हुए इस दुनिया से कूच कर जाते हैं। इंतजार नहीं कर पाते हैं और दोनों देशों के पासपोर्ट अपने हाथों में लिए मर जाते हैं। ''बेटे बहू ने देखा कि वे एकटक छत की ओर देख रहे थे। उनके दाएँ हाथ में लाल रंग का ब्रिटिश पासपोर्ट था और बाएँ हाथ में नीले रंग का भारतीय पासपोर्ट। उन्होंने ऐसे देश की नागरिकता ले ली थी जहाँ के लिए इन दोनों पासपोर्टों की आवश्यकता नहीं थी।''[23] कहानीकारी व्यवस्था पर व्यंग्य करता है।

स्वयं तेजेंन्द्र का कहना है, '' 'पासपोर्ट का रंग' कहानी के बाऊजी का पूरा चरित्र मैंने अपने बाऊजी पर आधारित किया है, जबकि मेरे बाऊजी मेरे ब्रिटेन प्रवास करने से बहुत पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे।''[24] प्रसिद्ध कहानीकार और आलोचक अजय नावरिया कहते हैं, **'पासपोर्ट का रंग'** कहानी आधुनिक परिदृश्य में वस्तुत: इसी मनोविकार से जूझने की कहानी है। वर्तमान समय में भावुकता के लिए कम से कम दया और ज्यादा से ज्यादा खीझ है।''[25] 'पासपोर्ट का रंग' वृद्धावस्था में विदेश जाने वाली पिछली

पीढ़ी की गृहातुरता की पराकाष्ठा की कहानी है। अपने देश जाने की गहन आकांक्षा, वहाँ की नागरिकता लेने की जिद में जान दे देने की कहानी है।

'गुनहगार', 'चौथी ऋतु, 'ठुल्ला किलब' तथा **'पासपोर्ट'** प्रवासी कहानीकारों द्वारा वृद्धावस्था के कथानक पर लिखी गई कहानियाँ हैं। इनकी भाषा, शिल्प और वातावरण भिन्न-भिन्न हैं। वृद्धावस्था की विभिन्न मन:स्थितियों को दर्शाने वाली ये प्रवासी हिन्दी कहानियाँ साहित्य में कितना कुछ जोड़ रही हैं। हिन्दी साहित्य को समृद्ध बना रही हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. 'संकल्प कथा दशक', सं. राजेंद्र यादव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली
2. हंस, 'गुनहगार', सुषम बेदी, सं. राजेंद्र यादव, 5 दिसम्बर 2003, मासिक
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही
7. समुद्र पार रचना संसार, 'चौथी ऋतु', शर्मा अचला, सं. हरि भटनागर तथा तेजेंद्र शर्मा, मार्च-अप्रैल, 2008
8. वही
9. वही
10. वही
11. वही
12. माथुर, दिव्या 'पंगा तथा अन्य कहानियाँ, मेधा बुक्स, नई दिल्ली, 2009
13. वही
14. वही
15. वही
16. वही
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. बेघर आँखें, तेजेंद्र शर्मा, अरु पब्लिकेशंस प्रा.लि., नई दिल्ली, 2007
23. वही, पृ. 147
24. तेजेंद्र शर्मा, वक्त के आईने में, सं. बृजनारायण शर्मा, हरि भटनागर, 2009
25. वही, पृ. 275

●

लघु कथा

चुम्बन

✦ **प्राण शर्मा, कॉवेण्टरी, ब्रिटेन**

एक अँगरेज़ लडकी से बस स्टॉप पर मेरी मुलाकात हुई। वो मुझे प्यार से तकने लगी, मैं भी उसे प्यार से तकने लगा। एक-दूसरे को प्यार से तकना कई पलों तक चला। मेरे मन में कविता की कुछ पंक्तियाँ फूट पड़ीं–

उसने मुझको देखा इतना
मैंने उसको देखा जितना
फिर भी प्रश्न जगा है मन में
किसने किसको देखा कितना

'हैलो।' उसने मेरा ध्यान भंग करते हुए कहा।

'हैलो।' जवाब में मैंने भी कहा। उसने मुस्कराहट बिखेरी। मैंने भी मुस्कराहट बिखेरी।।

वो मीठी जबान में बोली–'तुम किस नम्बर की बस का इंतज़ार कर रहे हो ?'

'दस नंबर की बस का।'

'मैं भी दस नंबर की बस का इंतज़ार कर रही हूँ। कहाँ उतरोगे ?'

'रेलवे स्टेशन पर।'

'मैं भी वहीं उतरूँगी। दोनों का अच्छा साथ रहेगा।' मैं अपने भाग्य को सराह उठा।

'देखो, मैं पैसे घर भूल आई हूँ। क्या तुम पाँच पौंड मुझे दे सकते हो ? मैं तुम्हें चुम्बन दूँगी, तुम्हारे गले से लग कर।'

गोरी का चुम्बन ! मेरा मन मचल गया।

झट से मैंने ट्राउज़र की पिछली जेब में हाथ डाला।

उसकी आँखों में चमक पैदा हुई।

पौंड के पाँच सिक्के मैंने उसके हाथ में थमा दिए।

'धन्यवाद!' उसने चुम्बन हवा में उड़ाते हुए कहा।

वो मेरी ओर बढ़ी और मुझे ज़ोर का धक्का देकर भाग गयी बड़ी तेज़, चीते की तरह।

उसने एक बार भी मुड़ कर नहीं देखा। मैं बाँहें पसारे उसे आवाज़ देता रह गया।

●

अस्वीकृति का अर्थ यह नहीं होता कि रचना स्तरीय नहीं है—पूर्णिमा वर्मन

(पूर्णिमा वर्मन से मधु अरोड़ा की बातचीत)

✦ मधु अरोड़ा

परिचय—पूर्णिमा वर्मन

कार्यक्षेत्र : पूर्णिमा वर्मन का नाम वेब पर हिंदी की स्थापना करने वालों में अग्रणी। 1996 से निरंतर वेब पर सक्रिय, उनकी जाल पत्रिकाएँ अभिव्यक्ति तथा अनुभूति वर्ष 2000 से अंतर्जाल पर नियमित प्रकाशित होने वाली पहली हिंदी पत्रिकाएँ। प्रवासी तथा विदेशी हिंदी लेखकों को एक साझा मंच प्रदान करने का महत्वपूर्ण काम। हिंदी विकीपीडिया की प्रबंधक।

पुरस्कार व सम्मान : दिल्ली में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, साहित्य अकादमी तथा अक्षरम के संयुक्त अलंकरण 'प्रवासी मीडिया सम्मान', जयजयवंती द्वारा जयजयवंती सम्मान, रायपुर में सृजन गाथा से 'हिंदी गौरव सम्मान', विक्रमशिला हिंदी विद्यापीठ, भागलपुर द्वारा मानद विद्यावाचस्पति (पीएच.डी.) की उपाधि तथा केंद्रीय हिंदी संस्थान के मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार से सम्मानित।

प्रकाशित कृतियाँ : *कविता संग्रह :* 'पूर्वा' एवं 'वक्त के साथ'। *संपादित कहानी संग्रह :* 'वतन से दूर'।

मधु अरोड़ा : आपका शारजाह जाना और बसना कैसे हुआ?

पूर्णिमा वर्मन : शारजाह हम लोग अपने पारिवारिक व्यवसाय के विकास के लिये 1995 में आए थे।

मधु अरोड़ा : इंटरनेट पर अभिव्यक्ति व अनुभूति वेब पत्रिकाएं संचालित करने का ख़याल क्योंकर आया आपके मन में?

पूर्णिमा वर्मन : शारजाह आकर एक साल तो घर गृहस्थी जमाने और इस देश के हवा पानी से सामंजस्य बैठाने में निकल गया। मैं जिस साहित्यिक सांस्कृतिक जीवन से जुड़ी थी वह पूरी तरह से छूट गया था। यहाँ संस्कृति के नाम पर दो ही चीजें थीं, बालीवुड और खाना। इन दोनों में ही मेरी रुचि नहीं गहरा सकी। हाँ, इंटरनेट चौबीस घंटों का मिल गया तो इस ओर स्वाभाविक रुचि हुई।

उस समय भी कुछ चोट कार्यक्रम थे। याहू का स्वरूप वैसा नहीं था जैसा अभी है। वहाँ मित्रों को सूची पर रखना संभव नहीं था। जो भी मिल जाए उससे बात करना होता था। हालाँकि बहुत से लोग हमेशा लॉग-इन रहते थे और अच्छी बात करने वाले खूब मिलते थे। कोई अच्छा मिल जाए जिससे बात करना रुचिकर लगे तो उसका ईमेल लेकर संपर्क जारी रखना होता था। थोड़े दिनों बाद उसमें सर्च की सुविधा हुई जिससे आप जान सकते थे कि आपका मित्र इस समय ऑनलाइन है या नहीं। इस तरह देश-विदेश के लोगों और उनके बारे में जानने की ओर रुचि होती गई। फिर एक नयी चोट शुरू हुई जिसका नाम आई सी क्यू था। इसमें मित्रों को लिस्ट पर रखने की व्यवस्था थी। मित्र के ऑनलाइन आते ही उसका नाम नीले अक्षरों में चमकने लगता था। उसमें खोज विकल्प भी आज की तुलना में बहुत बेहतर थे। आयु, रुचि, भाषा आदि अनेक विषयों में खोज की सुविधा थी। उस समय हिंदी जाननेवाले लगभग 60 लोगों को मैंने वेब पर ढूँढा। इनमें से अधिकतर की रुचि कविता और कहानियों में थी। 1996 में मैंने जियोसिटीज पर एक घर बनाया जिस पर अपनी और कुछ चुने हुए कवियों की रचनाएँ इमेज बनाकर प्रकाशित कीं। इसे आप अभिव्यक्ति का प्रारंभ समझ सकती हैं।

धीरे-धीरे मित्रों की संख्या बढ़ी और ऐसे लोगों की भी जो साहित्य और तकनीक के जानकार थे। हम चैटिंग से आगे बढ़कर ऐसी योजना बनाने लगे कि सामूहिक रूप से वेब पर किसी ऐसे स्थान पर अपनी अपनी पसंद का साहित्य प्रकाशित कर सकें। सबके पास अपनी अपनी पसंद की किताबें थीं पर दूसरे भी उसे पढ़ सकें, वह संभव कराना काफी मुश्किल था। सभी की इमेज बनाई जाए तो भी संभव नहीं था क्योंकि वेब की गति उस समय बहुत धीमी थी। और चित्र का प्रदर्शित होना समय लेता था। अलग-अलग लोगों की पसंद के फांट अलग-अलग थे। हम सभी वे फांट अपनी मशीन पर डालकर एक दूसरे की साइट पढ़ तो सकते थे लेकिन सब लोग पढ़ सकें वह संभव तभी हुआ जब हर्षकुमार जी ने 1997 में अपना सुशा फांट सार्वजनिक कर दिया। 1998 तक अभिव्यक्ति के दो प्रमुख स्तंभ-कुवैत से दीपिका जोशी और कैनेडा से अश्विन गाँधी आ मिले थे। वेब पर हिंदी साइटें बनने लगीं थीं लेकिन नियमित रूप से पत्रिका जैसे चेहरे मोहरे वाली हिंदी साइट का अभाव ही था। जबकि अंग्रेज़ी में कई ऐसी साइटें थीं जो कविता, कहानी और जानकारी की बातों को रोचकता से परोसती थीं। हमने उन साइटों को देखकर ही अभिव्यक्ति की रूपरेखा तैयार की थी।

यह नहीं सोचा था कि साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में इनका उपयोग होगा। लेकिन धीरे धीरे विकास होता रहा। 15 अगस्त,

2000 को अभिव्यक्ति के नये डोमेन पर स्थानांतरित होने के बाद यह एक नियमित पत्रिका के रूप में प्रकाशित होने लगी। इससे बहुत से लोग जुड़े और देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों के विभागाध्यक्षों व साहित्यकारों ने इससे जुड़कर पत्रिकाओं का सम्मान बढ़ाया।

मधु अरोड़ा : इन पत्रिकाओं को शुरू करने के शुरूआती संघर्ष को शेयर करना चाहेंगी?

पूर्णिमा वर्मन : इन 10 वर्षों के सफर में इस पत्रिका ने कितने संघर्ष झेले, इसके लिये इसके शुरूआती वर्षों को देखना होगा। सन् 2000 में जब यह पत्रिका शुरू हुई तो संसाधानों की खासी कमी थी। न निश्चित फांट, न पत्रिका के निकलने का नियत समय। परदेस जहाँ लोगों से बात करने के लिये उनसे पहले से समय माँगना ताकि कुछ कह सकें। मुझे याद आता है कि मैं आकृति फांट में रचनाएं माँगती थी। कई बार रोमन में हिन्दी में टाइप करके रचना भेजने को कहती और फिर अपनी सखी और अभिव्यक्ति टीम की सदस्या दीपिका जोशी से हिन्दी में टाइप करवाती और फिर पत्रिका में छापती। एक तरह से कह सकती हो कि मैं अपनी इस कड़ी मेहनत से विदेशों में बसे भारतीयों के लिये पढ़ने की ऐसी सामग्री तैयार कर रही थी जो उनके नास्टोलेजिया में दवा का काम करे।

मधु अरोड़ा : आपने इन पत्रिकाओं के लिये लेखक और पाठ्यसामग्री एकत्र करने के लिये कौन से संसाधन अपनाये?

पूर्णिमा वर्मन : संसाधन तो अधिकतर वेब से ही जुड़े थे। हमारे सहयोगी हमारे पाठक ही थे। याहू पर एक समूह था जिसमें 400 से अधिक सदस्य निरंतर सहयोग करते थे विशेषांक आदि बनाने में। नियमित लिखते भी थे। पाठकों द्वारा माँगी गई रचनाओं को खोजकर लाते थे। महत्वपूर्ण कहानियाँ लेख आदि की व्यवस्था करते थे।

मधु अरोड़ा : आप वेब पत्रिका, चौपाल, नवगीत, इन विधाओं को एक साथ कैसे अंजाम दे पाती हैं?

पूर्णिमा वर्मन : दोनों वेब पत्रिकाएं निकलते अब ग्यारह से अधिक वर्ष हो चले हैं। इनको बनाने की आदत पड़ गई है। नवगीत की पाठशाला में केवल रचनाएँ पेस्ट करनी होती हैं। नवगीत के शौकीन अपने आप रचनाएँ भेजते हैं। कुछ प्रसिद्ध नवगीतकार भी इससे जुड़ने लगे हैं। चौपाल तो स्थानीय काम है। यहाँ के रंगकर्मी और साहित्यकर्मी सप्ताह में एक बार मिल बैठते हैं, जो भी होता है उसकी छोटी सी रपट भर लिखनी होती है। कोई समय लेनेवाला काम नहीं है वह।

मधु अरोड़ा : आप कहानियाँ, कविता, लेख लिखती हैं। खुद को किस विधा में सबसे सहज पाती हैं?

पूर्णिमा वर्मन : पत्रकार होने का एक फायदा तो होता है। जिस विषय पर, जिस विधा में कहें लिख सकती हूँ। जिस समय लिखना हो लिख जाता है। हमें सिखाया जाता है कि जैसे मरीज को देखकर डॉक्टर को तुरंत काम करना होता है वैसे ही लिखने की जरूरत पड़ने पर सही लिख लेना ही पत्रकार की सफलता है। इसलिये मूड वगैरह का नखरा नहीं है। फिर भी कविताएँ लिखना ज्यादा अच्छा लगता है।

मधु अरोड़ा : आजकल हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श के नाम पर जो लिखा जा रहा है, पाठकों के सामने परोसा जा रहा है, उसे आप किस रूप में देखती हैं?

पूर्णिमा वर्मन : मैं किसी साहित्य को स्त्री, दलित, प्रवासी जैसे खाँचों में बाँटकर नहीं देखती हूँ। साहित्य में कुछ बातें किसी एक व्यक्ति के लिये रोचक हो सकती हैं, दूसरे के लिये नहीं। हर संपादक अपने पाठकों की पसंद को जानता है और उसके अनुसार रचनाओं का चयन करता है। अस्वीकृति का अर्थ यह नहीं होता कि रचना स्तरीय नहीं है।

मधु अरोड़ा : अभी हाल में यमुनानगर, हरियाणा में प्रवासी साहित्य पर पहली बार तीन दिवसीय संगोष्ठी में गंभीर चर्चा हुई, आपको लगता है कि भारत के हिन्दी संसार में इस सम्मेलन के बाद प्रवासी साहित्य को सही स्थान मिलने की संभावना है?

पूर्णिमा वर्मन : किसी एक सम्मेलन से जादू हो जाएगा, ऐसा तो नहीं होता है। खुशी की बात यह है कि प्रयत्न शुरू हो गए हैं। ये निरंतर जारी रहे तो जरूर प्रवासी लेखक और भारतीय पाठक के बीच की दूरी कम होने लगेगी।

मधु अरोड़ा : आपने भारत और यू.ए.ई., इन दोनों देशों की संस्कृतियों को देखा है, और जिया है, जी रही हैं, क्या फर्क महसूस करती हैं?

पूर्णिमा वर्मन : यू.ए.ई. छोटा सा देश है। मुंबई की तरह एक बहुराष्ट्रीय संस्कृति है यहाँ। साफ-सुथरा हिंदुस्तान ही लगता है। यहाँ के निवासियों में अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति प्रेम देखकर लगता है काश ! हमारे देश में भी ऐसा हो सकता। भारतीय अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपने ही देश की बुरी तरह आलोचना करते हैं, यह रुचिकर बात नहीं है। अगर उनसे पूछा जाए कि आप इस बुराई को दूर करने के लिये क्या कर रहे हैं तो वे कुछ जवाब नहीं दे सकेंगे। हाथ पर हाथ रखकर हर चीज की आलोचना करने के स्थान पर जो कुछ बुरा लगता है उसके समांतर रचनात्मक निर्माण की बात और प्रयत्न करने से ही परिवर्तन लाया जा सकता है। इस ओर लोगों का ध्यान कम है।

मधु अरोड़ा : अभिव्यक्ति और अनुभूति की अपार सफलता का श्रेय किसे देती हैं?

पूर्णिमा वर्मन : अपने पाठकों, लेखकों और अपनी टीम की कड़ी मेहनत को।

●

आज का आलोचक

✦ अमरेन्द्र कुमार, यू.एस.ए.

बाकी का तो पता नहीं लेकिन हिन्दी का आधुनिक आलोचक आज बहुत ही सक्रिय, चिंतित और संकटग्रस्त है। हिन्दी की मानद डिग्रियाँ उनके कदमों में न्यौछावर की गयी हैं। उन्होंने ली नहीं, कालेजों, विश्वविद्यालयों ने बुला-बुलाकर उन्हें समर्पित की हैं। ऐसा वे कहते हैं। कुछ जासूस किस्म के पत्रकार जो उनके उन दिनों के बारे में पता कर छाप देते हैं कि किस तरह से डाक्टरेट के दौरान उन्हें सताया गया था और उनके गाईड (शिक्षा ही नहीं हर क्षेत्र के 'गाईड' अब ऐसे ही हैं-धर्म, चिकित्सा, विज्ञान, राजनीति, साहित्य, कॉर्पोरेट आदि।) ने उनका शोषण किया था तो वे हँस कर टाल देते हैं। अब हँसने को बहुत लोग बहुत तरीके से लेते हैं और वे इसका लाभ उठाते हैं। अब साहित्य में हैं, इसका मतलब यह थोड़े ही है कि हर तरह के लाभ से अपने आपको वंचित रखें। हँस कर टालने का एक कारण यह भी है कि वे अपने गाईड के साथ के मधुर संबंध को बनाए रखने में ही अपना पहले और साहित्य का बाद में भला जानते हैं। उन्हें यह तो पता है कि शोषक तो शोषक है जब चाहे, जहाँ चाहे शोषण कर ही सकता है। पुरानी बातों को, खासकर कड़वी बातों को भुला देना ही बुद्धिमानी है।

इस प्रक्रिया से गुजरकर अथवा तपकर जब वे लोहे से हथौड़े (कुंदन बनने के लिये सोना तो होना पड़ेगा।) बनते हैं तो आप अनुमान कर सकते हैं उनकी एक-एक चोट झेलने वालों को कितनी मर्मान्तक पीड़ा होती होगी। सच तो यही है। लेकिन वे इस प्रक्रिया अथवा आलोचना को अपना धर्म, कर्तव्य आदि उपमा से अलंकृत करते हैं। अपने तथाकथित कर्तव्य के प्रारम्भ में अपने शहर के शीर्ष साहित्यकार-आचार्य के आशीष से शुरू कर पूरे भारत के साहित्याचार्यों की परिक्रमा कर आते हैं। जनसामान्य को निकट से समझने के लिये जैसा कि कभी स्वामी विवेकानंद अथवा गांधीजी ने किया था। इससे दो लाभ होते हैं—उन्हें अपने मित्रों, शत्रुओं और तटस्थों की पहचान हो जाती है कि किनके साथ आगे कैसा निभाना है और दूसरों को अपना मोहनी रूप भी दिखा आते हैं कि कल को लोग देख-समझ कर धोखा खा सकें।

लोकल कार्यकर्ता, विधायक या फिर अपने शोषक गाईड की अनुशंसा पाकर अपने ही शहर के किसी कालेज के हिन्दी विभाग की शोभा बढ़ाने लगते हैं। घर के बैठकखाने से चौकी हटाकर चार-छः कुर्सियां लगा देते हैं। पीछे की दीवार पर पढ़ी-अनपढ़ी पुस्तकों को सजाकर एक 'इंटेलेक्चुअल लुक' दे देते हैं। मोहल्ले के सारे खिलंदर और नौनिहालों को जमाकर और उनकी 'वानर सेना' बनाकर उसके नायक बन जाते हैं। ये वे लोग हैं जो पान खाने-खिलाने से लेकर लाठी चलाने का काम बड़ी कुशलता से करते हैं। ये लोग ही सम्मेलनों के समय साहित्यकारों को रेलवे स्टेशन से लेकर आने, टिकाने, फूल-माला लाने और विदाई कराने का काम भी करते हैं। आलोचना के इतिहास में ऐसे मूक कार्यकर्ताओं के लिये कोई स्थान नहीं मिला आजतक। आशा है कि आने वाले समय में या तो ये स्वयं अधिकारों के लिये संघर्ष करेंगे और नहीं तो आजकल माँगें पूरी कराने के लिये आन्दोलन करने वालों की मांग बढ़ने लगी ही है।

सब कुछ जमा चुकाने के बाद आलोचक महोदय बहुत ही व्यस्त दिखाई देते हैं। व्यस्त दिखने और होने का सम्बन्ध वैसे भी पुराना हो चुका है। प्रकाशकों, संस्थानों, लेखकों, मित्रों अथवा सगे-सम्बन्धियों के यहाँ से पुस्तकें थोक में उनके पास आ रही हैं। हो सिर्फ इतना रहा है कि पुस्तकें बंडल से निकलकर मेज पर ढेर हो रही हैं। आलोचक महोदय को देखने का अवकाश नहीं है। लोगों के फोन पर फोन आ रहे हैं। आलोचक महोदय आधे समय फोन उठाते नहीं इसलिए नहीं कि वे व्यस्त हैं परन्तु इसलिए कि उनका एक अपना नियम है कि किसी जगह से जब तक तीन चार फोन नहीं आ जायें वे उठाते नहीं। इसका एक कारण और है कि इससे फोन करने वाले को विश्वास हो जाता है कि आलोचक महोदय वास्तव में बहुत व्यस्त हैं। और जब फोन उठाते हैं तो उनके ऊपर गंभीरता छा जाती है—स्वर से लेकर मुद्रा तक। एक एक शब्द लगता है किसी आदम गुफा से निकल रहा है, धीरे-धीरे संभल-संभलकर। फोन करने वाला ही कृतज्ञ है कि आलोचक महोदय से आज बात हो गयी। इस कृतज्ञता के बोझ से ढका-लदा पहले फोन में लेखक इतना ही कह-सुन पाता है कि पुस्तक उन तक पहुँची या नहीं। ये भेजने वाले के पूर्व जन्म का सत्कर्म या डाक विभाग की कार्यप्रणाली का काया-कल्प है जो पुस्तक पहली बार में आलोचक तक पहुँच जाये। अगर जो पहुँच भी गयी हो तो आलोचक महोदय को देखने का अवसर नहीं मिला और अगली बार फोन करके 'कन्फर्म' (पक्का) करने का परामर्श दे फोन रख दिया जाता है। फोन करने वाला इसके पहले कि कुछ और पूछे अपने हाथ को फोन से हटा मसलने लगता है। इस बीच हफ्ते-महीने आराम से निकल जाते हैं, कभी-कभी तो साल भी। इस बीच कुछ असफल प्रयास होते हैं फोन के और पता लगता है कि साहब बाहर गए हैं, बाहर से आये नहीं हैं, आ तो गए हैं लेकिन इस समय घर पर नहीं हैं, घर पर तो हैं लेकिन भोजन कर रहे हैं, भोजन

तो कर लिया है लेकिन अभी टेलीविजन देख रहे हैं, टेलीविजन तो देख लिया है लेकिन अभी दूसरे फोन पर हैं, दूसरे फोन पर तो कल थे लेकिन अभी सो रहे हैं, सो तो कल रहे थे लेकिन आज जागने के बाद थोड़ा अच्छा नहीं 'फील' कर रहे हैं आदि-आदि। इतना कुछ कहने-सुनने के बाद भी फोन करने वाले का धैर्य बना रहता है। दैवसंयोग से आलोचक महोदय एक दिन फोन पर मिल जाते हैं। परिचय का पूरा इतिहास दोहराने का फोन करने वाले का उत्तरदायित्व होता है। बात जब पुस्तक पर आती है तो पता लगता है कि आलोचक महोदय ने देखी नहीं और साथ में असमर्थता प्रगट करते हैं कि ढेर में पता नहीं कहाँ दबी पड़ी होगी। यह भी बता देते हैं कि उनके यहाँ प्रतिदिन पचासों डाक आते हैं। आते हफ्ते में वैसे दो चार ही हैं, लेकिन कोई खोज करने तो आ नहीं रहा, बताने में इतना कोई हर्ज नहीं। वैसे भी अगर एक से ऊपर हो तो हिन्दी के व्याकरण के मुताबिक बहुवचन ही हुआ और उसमें पांच कहो या पचास वैयाकरणिक अथवा तकनीकी रूप से गलत नहीं। वैसे भी डाक के उनके यहाँ आने की जहाँ तक बात है, संख्या बताने का अधिकार उनका है और वो चाहे जो भी बताएं। खैर, वे निस्संग भाव से कहते हैं कि पुस्तक दुबारा भेज दें तो उन्हें आसानी होगी। साथ ही शर्त यह रखते हैं कि अगर 'स्पीड पोस्ट' से भेजें तो उन्हें एक-दो दिनों में मिल जायें अन्यथा वे यात्रा पर निकलने वाले हैं और अगर उनके जाने के बाद पुस्तक आयी तो उसका वही हश्र होगा जो पहली वाली का हुआ। फोन करने वाला कशमसाता हुआ भी संयम बरतने में सफल रहता है। अब पुस्तक फिर से भेज दी गयी है और नाटक का पिछला सर्ग (ऊपर वर्णित) पुनरावृत्ति में है। दस-ग्यारह महीने बाद जब आलोचक फोन पर मिलते हैं तब तक लिफाफा खुल चुका था और पुस्तक उनके कर-कमल का स्पर्श पाकर धन्य हो चुकी थी। फोन करने वाले ने धड़कते दिल से पूछा कि पुस्तक कैसी लगी तो आलोचक महोदय ने हिमालयी गंभीरता के साथ कहा कि अभी तो बस देखी है, पढ़ने के बाद बता पाऊँगा कि कैसी है। यहाँ लेखक अथवा कवि लड़की का पिता और आलोचक ठेठ लड़के वाले (कोई भी, वैसे लड़के के पिता की तो बात ही बहुत ऊँची है) की भूमिका में नज़र आते हैं। फोन करने वाले के पास अब प्रार्थना करने के सिवा कोई चारा नहीं। लेकिन आलोचक महोदय सच्चे सुनार अथवा साहूकार की तरह सोने को पीतल के भाव से ऊपर आँकने को तैयार नहीं। उन्होंने कहा कि देखिये मेरे पास सैकड़ों (वश चलता तो हजारों या लाखों कह देते) पुस्तकें लाइन में लगी हैं, आपको कम से कम दो-तीन साल तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। फोन करने वाला हतप्रभ है लेकिन 'जी-जी' के सिवा कुछ बोल नहीं पा रहा है। हिन्दी फिल्म (वैसे ऐसे दृश्यों के फिल्मांकन में हॉलीवुड वाले भी पीछे नहीं।) होती तो आसमान में बादल फट पड़ते, बिजलियाँ कड़क उठतीं, टेलीफोन बूथ के बाहर मूसलाधार बारिश के बीच आकाशवाणी होती—लेखक, तू जिस आलोचक के मोह में पड़ा है वह तेरी पुस्तक की आलोचना कभी नहीं करेगा। उसका मन ऊँचे-ऊँचे लेखकों के बारे में स्तुतियाँ लिखने में भटक गया है। अपना हित चाहता है तो इसका विचार छोड़ दे। अगर जो आलोचना चाहता ही है तो जा किसी 'लोकल' आलोचक की शरण में जा। उसकी कृपा हुई तो मनचाही आलोचना पा जायेगा।

लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं और फोन करने वाले ने 'प्रभु कभी तो दर्शन देंगे अथवा कृपा करेंगे' का विचार और फोन पर ही साष्टांग कर संवाद को विराम दे दिया।

फोन करने वाले उस लेखक की पुस्तक की आलोचना इस आलोचक ने लिखी या नहीं यह तो शोध का प्रश्न ही बना रहा। लेकिन हमारे आलोचक वास्तव में व्यस्त हैं। दरअसल वे जिस साहित्य-कॉलोनी (कुछ लोग टोली, मठ, मंडली, माफिया, विचारधारा आदि कहते हैं) के निवासी हैं वहाँ से दर्जनों पुस्तकें उनके पास समीक्षार्थ आयी हैं। कुछ डाक से चलकर, कुछ दरवाजे पर उनके सृजनहारे के कर-कमलों से भेंट-स्वरूप तो आलोचक के कुछ आकों के आदेश-स्वरूप। आलोचक संकट में पड़ गए हैं। कुछ पुस्तकें स्तरीय भी नहीं हैं लेकिन अगर जोर उनके मित्र-संबंधी अथवा सामान विचारधारा वालों का है तो उन्हें आलोचना लिखनी ही होगी और वह भी अच्छी। अगर जो पुस्तक थोड़ी ठीक हुई तो प्रशंसाओं के पहले के सारे कीर्तिमान टूट जाते हैं। उनकी कॉलोनी के जो भीष्म-पितामहों ने उन्हें पुस्तक देते हुए आशीर्वाद के साथ-साथ आदेश भी दिया कि उनकी पुस्तकों की आलोचना लिखकर उन्हें लाभ होगा—उत्तम कृति को समझने का अवसर और आलोचनकला में निखार। यह जानते हुए कि वह सब पूरी तरह से सच नहीं। आलोचक फिर संकट में है। अगर अच्छी आलोचना की तो अपनों का रोष सहना होगा यहाँ तक कि सदस्यता से भी हाथ धोना पड़ सकता है और अगर जो मामला गंभीर साबित हो गया तो कॉलोनी से हमेशा के लिये निष्कासित भी किये जा सकते हैं। अगर जो आलोचना सही नहीं हुई तो अंतरात्मा कचोटेगी। ये आलोचक अभी सतह से उतने उठे नहीं कि अंतरात्मा की आवाज उन तक नहीं पहुँचे। हालांकि बहुत आलोचक सही-गलत, उचित-अनुचित, आचार-विचार से इतने ऊपर उठ चुके होते हैं कि वे इन सब बातों के परे हो चुके होते हैं।

समय के साथ हमारे आलोचक आज 'स्टार वैल्यू' को प्राप्त हो चुके हैं। यहां तक पहुँचने के लिये उन्हें बहुत करना-सहना पड़ा है। जहाँ जो करना था वो किया, जहाँ जो सहना था सो सहा लेकिन अर्जुन की तरह चिड़ियाँ की आँख को जो लक्ष्य बनाया उसे इसी जीवन में प्राप्त कर लिया। शुरू-शुरू में रात-रात भर जागकर अपने गुरुजनों की स्तुति, समर्थकों की संस्तुति और विरोधियों की भर्त्सना की। धीरे-धीरे जब आलोचकों की पुरानी और विद्वान पीढ़ी समय के साथ सिधार गयी तो वे ही बचे रह गए। आज स्थति यह है कि उनके जमाने का कोई भी बचा नहीं रहा सो जो वो कहें सभी सत्य जान

सीने से लगा लेते हैं। बरसों से उन्होंने अब लिखना भी छोड़ दिया है। अब वे सिर्फ बोल कर अथवा वक्तव्य देकर ही जीवन चला रहे हैं। सुबह उठते ही चाय के बाद टीवी चैनलों के स्टूडियो का रास्ता लेते हैं। भेस-भूषा ऐसी बना रखी कि हर दिन उसी में दिखें तो नयी अथवा पुरानी का पता करना कठिन हो जाय। बरसों से वही कुर्ते-धोती में दिखायी देते हैं। बहुत मन हुआ तो धोती की जगह पायजामा पहन लिया। कभी-कभार आँखों में अंजन भी डाल लेते हैं। बाल भी ऐसे कि जिन्हें कंघी करने की आवश्यकता न हो। यहाँ तक कि मुँह में जो पान है वह भी लगता है पिछले कई सालों से वही पीक उँड़ेल रहा है। संयम इतना कि होठ के नीचे एक पतली सी कत्थई रंग की रेखा जिसकी मोटाई एक मिलीमीटर से दो नहीं हुई कभी। आँखों पर मोटे फ्रेम का काला चश्मा दशकों से शोभायमान है जिसका काँच समय के साथ धुंधला तो हुआ लेकिन उसके पीछे की शिकारी आँखों का तेज समय के साथ तीव्र से तीव्रतर होता चला गया। यह अनुभव अथवा अंजन का प्रताप हो सकता है।

सुबह को टीवी पर एक वक्तव्य दे दिया। दोपहर को संगोष्ठी, शाम से पहले एक संभाषण, शाम को लोकार्पण, रात को व्याख्यान और देर रात को रेडियो अथवा टीवी पर फिर से एक बयान अथवा साक्षात्कार। कुल जमा समय इनकी व्यस्तता को देखकर सकुचा रहा है। दिल कहता है दो घंटे और मिल जाएँ तो रात लंबी होना चाहती है। आज कोई ऐसा समारोह नहीं, लोकार्पण नहीं, संगोष्ठी नहीं, संस्था नहीं, सरकार नहीं जहाँ इनका साथ नहीं, इनकी उपस्थिति नहीं। लोग इन्हें घर से उठा लाते हैं। ये 'ना-ना' करते भी चले जाते हैं, न चाहते हुए भी कह जाते हैं, सत्य इनके मुख से बिन प्रयास निकल सार्थक हो उठता है।

आज उनका एक-एक कथन ब्रह्म वाक्य की तरह लिया जाता है। सिर्फ उनके भक्तों में ही नहीं उनके विरोधियों में भी। वैसे भी यह कहा जाता है आज के दौर में आपकी लोकप्रियता का पता आपके प्रशंसकों से नहीं बल्कि विरोधियों की संख्या से अधिक लगता है।

आज जब वे कुछ कहते हैं तो वह कथन एक चिंगारी की तरह होता है। देखते-देखते पूरी की पूरी साहित्यिक बस्ती में आग लग जाती है। सब कुछ धू-धू करके जलने लगता है। फिर वे सफाई की एक बाल्टी पानी उँड़ेल देते हैं और आग की ज्वाला फिर कम होकर तापने लायक हो जाती है। फिर वे दोनों हाथों को सेंकते हुए अगली चिंगारी के बारे में सोचने लगते है। देखो कहीं आग बुझने न पाए, कोई बस्ती झुलसे बिना रहने न पाए-वे गुनगुनाने लगते हैं।

एक बार उन्होंने कह दिया कि प्रेमचंद हिन्दी के लेखक नहीं थे। फिर क्या था सारी बस्ती वाले हाय-हाय करने लगे। यहाँ तक कि जिनका प्रेमचंद से पहले कोई वास्ता भी नहीं था उन्होंने भी इस विरोध के सुर से सुर मिला दिया—आज न छोड़ेंगे हमजोली। विरोधियों को विरोध करने का बस बहाना चाहिए। आलोचक भी कच्चे खिलाड़ी नहीं थे उन्होंने भी आग को फैल जाने दिया। विद्रोह की लपटें जब आसमान छूने लगीं तो एक जगह सफाई दे दी—प्रेमचंद के हिन्दी के लेखक नहीं होने वाली बात का ठीक अर्थ नहीं लगाया गया। मेरा ऐसा कहने का तात्पर्य था कि वे हिन्दी के ही नहीं दुनिया की समस्त भाषाओं के लेखक थे। उनके जैसा लेखक एक भाषा में सिमट कर नहीं रह सकता।

बस सारे विरोधी हाथ मलते रह गए। उन्होंने तय किया कि अगली बार उनके किसी कथन के आगे-पीछे पूरा विचार कर ही विरोध करेंगे। आज भी उनके और विरोधियों के बीच साँप-सीढ़ी अथवा 'तू डाल-डाल मैं पात-पात' का खेल जारी है।

आज अपने समर्थकों के बल पर वे जीते-जी 'लीजेंड' का दरजा पा चुके हैं। कभी इन्होंने किन्हीं लोगों के चरण पखारे थे तो आज इनके चरण भी पखारे जा रहे हैं। न चाहते हुए भी अपनी धोती थोड़ी ऊँची कर वे अपने चरण दे देते हैं पखारने के लिये। उनके समर्थक निषाद राज की तरह उनके चरण पखारकर अपनी मंडली में उत्सव मना रहे हैं। कोई उन्हें सम्मानित कर रहा है, कोई उन्हें मानद डाक्टरेट दे रहा है, कोई उनके वक्तव्यों का संग्रह बना रहा है तो कोई उनकी आलोचना की आलोचना (प्रशंसा) कर रहा है।

हर महान व्यक्ति की तरह अपने समर्थकों के दबाव में आकर वे पिछले एक दशक से अपनी आत्मकथा लिख रहे हैं। अब उनकी अवस्था को देखकर उनके उत्तराधिकारी की खोज भी शुरू हो चुकी है। उन्होंने हालाँकि अपने उत्तराधिकारी की घोषणा विधिवत की नहीं है लेकिन किसी हलके में लोग उत्तराधिकारी को जानने, पहचानने और मानने भी लगे हैं। सभी की कामना है कि आलोचना का यह स्वर्णिम अध्याय ऐसे ही चलता रहे। और अगर यह अध्याय न चाहते हुए समाप्त हो भी जाय तो नए अध्याय का नेतृत्त्व संभालने वाले के स्वागत में सभी हाथ जोड़े खड़े हैं...

●

गांवों का शहर—लैस्टर

✦ नीना पॉल, यू.के.

एक हल्की सी आवाज से निशा की नींद खुल गई।

आवाज खुली खड़की से आई थी। जम्हाइयां और अंगड़ाइयां लेते हुए उसने कम्बल को एक ओर सरकाया। कल की रात ही कुछ ऐसी उमस से भरी गर्म थी कि खिड़की खोलनी ही पड़ी।

ब्रिटेन में ऐसे अवसर कम ही होते हैं जब रात को ठंडी हवा की जरूरत महसूस हो।.... वैसे यहां के मौसम का कुछ भरोसा भी तो नहीं किया जा सकता। सर्द हवाओं के बाद जब यह मौसम अचानक करवट लेता है तो वातावरण में एक अजीब सी उमस भर जाती है। ठंडी पड़ी धरती पर जब सूरज की गर्म किरणें थोड़ी गरमाहट पहुंचाने की कोशिश करती हैं उस समय हवा में एक हल्का दबाव सा महसूस होता है। यहां की गर्मी भारत जैसी नहीं है कि सूरज का तपता हुआ गोला प्रकट हुआ और सब पसीने से नहा गये। यहां तो पसीना निकालने के लिये तेज धूप में बैठना पड़ता है जहां पसीना तो कम निकलता है लेकिन चमड़ी का रंग जरूर गहरा हो जाता है।

चमड़ी का रंग गहरा करने हेतु ही तो थोड़ी सी गर्मी होते ही लोग घरों से बाहर निकल पड़ते हैं जो इतने महीनों से गर्म कपड़ों में लिपटे शरीर को सूर्य की थोड़ी किरणें छू सकें। वैसे ब्रिटेन में सूरज की गर्मी कहां नसीब होती है। यहां की अंग्रेज लड़कियां अपने पीले रंग को थोड़ा गहरा करने के लिये बिजली की मशीनों का प्रयोग करती हैं। यह मशीनें भी ऐसी कि नीचे आरामदायक बिस्तर बिछा होता है और ऊपर के पलड़े पर बड़ी बड़ी टयूब लाइट्स लगी होती हैं जिनमें से गर्मी निकलती है।

लड़कियां अपना रंग भूरा करने के लिए घंटों इस तेज रोशनी और गर्मी से भरी बिजली के नीचे लेटी रहती हैं। यह सोचे बिना कि यह तेज बनावटी गर्मी हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। इससे चमड़ी पर कैंसर होने का भी डर होता है। फिर भी गर्मी में सुंदर दिखने के लिए लड़कियां इन मशीनों का प्रयोग करती हैं। वाह रे उल्टी खोपड़ी.... एक तरफ तो ये गोरे लोग भूरी चमड़ी वालों से नफरत करते हैं और दूसरी तरफ इतने पोंड खर्चा करके इन जैसा रंग भी अपनाना चाहते हैं।

रंग तो स्वयं ही बदलेगा जब धूप निकलते ही लोग छोटे-छोटे कपड़े पहने हुए पार्क या किसी समुद्र के किनारे का रुख करते हैं। पार्क में जहां बड़े बच्चे आपस में फुटबाल खेलते दिखाई देते हैं तो वहीं छोटे बच्चे झूला झूलते हुए मिलते हैं। ऐसे मौसम को कोई भी चूकना नहीं चाहता। युवा जोड़े भी इस मस्ती से दूर कैसे रह सकते हैं। कुछ लोग तो खुलेआम इनकी मस्ती ही देखने के लिए आते हैं।

मस्ती भी ऐसी कि ब्रिटेन के समुद्री तटों पर लोगों का तांता लग जाता है। कुछ कुर्सियों पर लेटे धूप का आनंद ले रहे होते हैं तो कुछ रेत पर बैठे बच्चों के साथ घरौंदे बना कर खेल रहे होते हैं। धूप में लेटी हुईं अर्धनग्न महिलायें शरीर पर लोशन लगा कर सनटेन लेने की कोशिश कर रही हैं। चारों ओर शोर-शराबा, समुद्र की लहरों से खेलते युवा जोड़े, सतरंगी सूरज की किरणों से मेल खाते लोगों के रंग-बिरंगे कपड़े, बच्चों की किलकारियां, मस्ती भरा माहौल मिलता है।...यह है ब्रिटेन के सूर्य देवता का कमाल जिसका लोग महीनों इंतजार करते हैं।

इंतजार तो निशा को भी है सुबह का। उसने जम्हाइयां लेते हुए बिस्तर छोड़ दिया। वह खिड़की के सामने से पर्दा हटा कर बाहर देखने लगी।...

बाहर का दृश्य बांहें खोले निशा को निमंत्रण दे रहा था। निशा की आदत है कि सुबह उठते ही वह कुछ समय के लिये खिड़की के पास खड़ी हो जाती। जब पहाड़ी के पास घर हो...फूलों से सुगंधित ब्यार चल रही हो...सुबह के उगते सूर्य में हल्की सी गर्मी हो....कौन घर में बैठ सकता है।

निशा लैस्टर के एक गांव लॉफ्बरो में रहती है। लॉफ्बरो जो अपनी युनिवर्सिटी के साथ-साथ और भी बहुत सी चीजों के लिये प्रसिद्ध है। अंतरिक्ष से अपनी पहली उड़ान के दौरान परीक्षण के लिए लाए गये पत्थर के टुकड़े का परीक्षण लॉफ्बरो यूनिवर्सिटी में ही हुआ था।

यहां की बहुत ही प्रसिद्ध बीकन हिल्स का नाम भी लॉफ्बरो निवासी बड़े गर्व से लेते हैं। निशा बीकन हिल्स के करीब ही विक्टोरिया स्ट्रीट में रहती है। काली और भूरी चट्टानों से भरी बीकन हिल्स जिन पर खड़े होकर पूरे लॉफ्बरो को देखा जा सकता है। चारों तरफ बने हुए एक जैसे मकान, कहीं फैक्टरियों से उठता हुआ धुआं तो कहीं लम्बी टेढ़ी-मेढ़ी सड़कें।...दूर से धुंध में डूबा हुआ लॉफ्बरो का मशहूर क्वीन्स पार्क जिसके बीच में एक लम्बा स्मारक चिन्ह गर्व से अपना सिर उठाये खड़ा है जिसे क्रीलियन के नाम से जाना जाता है।

बीकंस हिल्स से ही लॉफ्बरो के चर्च आकाश को छूते मिलते हैं। जिधर नजर दौड़ाओ बस चारों ओर हरियाली ही हरियाली फैली हुई है। गर्मी के दिनों में बीकन हिल और इसके आस-पास लोगों की काफी रौनक रहती है। शाम के प्राकृतिक दृश्य रोज एक नई कहानी सुनाते हैं। एक तरफ सूरज के डूबने से चट्टानें भूरे और नारंगी रंग में भीग कर अपना सौंदर्य फैला रही होती हैं तो दूसरी ओर धीरे धीरे सरकती रात से चट्टानों पर सलेटी रंग की चादर बिछ जाती है।...

सलेटी रंग नहीं सफेदी से भरी कोहरे की चादर उस दिन भी

बिछी हुई थी जब पहली बार निशा की मॉम सरोज ने परिवार सहित ब्रिटेन की धरती पर कदम रखा था।

छोटी सी 5 महीने की बच्ची निशा को सीने से चिपकाये हीथरो हवाई अड्डे पर सरोज उनके पति सुरेश भाई व मां सरला बेन डरते हुए भीड़ के साथ आगे बढ़ रहे थे। उनके समान और लोग भी डरे हुए थे जो पहली बार ब्रिटेन आ रहे थे।

डरने की तो बात ही थी। अपना बसा-बसाया घर बार छोड़ कर किसी अनजान स्थान पर जाकर फिर से आशियाना बसाना कोई मामूली बात तो थी नहीं। निशा की नानी सरला बेन को एक बार फिर मजबूर होकर नया घर बसाने के लिये दर-दर भटकना पड़ा। अपना घर-बार छोड़ने का दर्द सरला बेन से अधिक कौन जान सकता है। उनकी खामोश नजरें दिल में उमड़ता तूफान छुपाये हुए थीं।

असली तूफान सबकी जिंदगियों में उस दिन उठा था जब...।

सुरेश भाई दुकान को ताला लगा कर बड़े उदास मन से घर में आये। उनका सिर झुका हुआ था। किसी गहरी सोच में डूबे हुए वह धम्म से कुर्सी पर बैठ गये....

सरोज जल्दी से बाहर आई..."क्या बात है जी... तबियत तो ठीक है। आज दुकान भी जल्दी बंद कर दी।"

"हां सरोज, चिंता तो इस बात की है कि पता नहीं यह ताला कल खुलेगा भी या नहीं...?"

"शुभ-शुभ बोलो जी...ऐसी क्या बात हो गई। किसी से झगड़ा हुआ है क्या...जल्दी से बताइये बात क्या है? मेरा दिल बैठा जा रहा है।"

"इस बात की अफवाह तो बहुत दिनों से फैल रही थी सरोज। कुछ अकलमंद लोग सब कुछ बेच-बाच के यहां से चले भी गये हैं। किंतु कुछ हमारे जैसे भावुक यहीं से चिपके पड़े हैं, यह सोच कर कि सब कुछ ठीक हो जायेगा। पर नहीं सरोज...हमारे राष्ट्रपति ई डी अमीन ने खुलेआम ऐलान कर दिया है कि सब भारतीय यूगैंडा छोड़ कर चले जायें।"

"क्या...चले जायें पर कहां...?"

"यह तो कोई नहीं जानता किंतु सप्ताह के अंदर हमारी जमीन जायदाद सब कुछ जब्त कर लिया जाएगा। इतने थोड़े से समय में कोई घर दुकान बेच भी तो नहीं सकता। जब यहां के निवासियों को भरा-भराया घर और दुकानें मिल जाएंगी तो कोई क्यों खरीदेगा। हम अपना कुछ निजी सामान ही लेकर जा सकते हैं। ई डी अमीन को अपने देश में भारतीय नहीं उनका पैसा, जायदाद व व्यापार चाहिये। मेरा तो दिल बैठा जा रहा है सरोज, परिवार के साथ हम कहां जायेंगे?"

सरोज की मां सरला बेन...जिन्होंने दुनियाँ देखी हुई थी वह आगे बढ़ कर सुरेश भाई को धीरज बंधाने लगीं। "घबराइये मत जमाई जी। मैं भी पड़ोसियों से यह बात सुन कर आ रही हूं। वह सब इंग्लैंड जा रहे हैं। आपके पापा ने जाने से पहले बहुत अच्छा काम किया था कि हम सबका ब्रिटिश पासपोर्ट बनवा दिया था, नहीं तो आज हम कहीं के न रहते। हमारे पास भी ब्रिटिश पासपोर्ट है। जिधर सब जा रहे हैं उधर हम भी अपनी किस्मत आजमाने चल पड़ेंगे।"

सब खोमोशी से अपना सामान बांध रहे थे। खामोशी के अतिरिक्त और कोई विकल्प भी तो नहीं था। सबको इस बात का भी ध्यान रखना था कि सामान बीस किलो से अधिक न हो जाये नहीं तो हवाईजहाज वाले पैसे लगा देंगे।

नया जीवन आरम्भ करने के चक्कर में जिसे जिधर रास्ता दिखाई दिया वह उधर की ओर चल पड़ा। अधिकतर भारतीयों के पास ब्रिटिश पासपोर्ट थे। अपना निजी सामान लेकर व सब कुछ पीछे छोड़ कर सबने एक अनजान देश ब्रिटेन का रुख किया।

पीछे केवल घर जायदाद ही नहीं छोड़ा बल्कि वहां का मौसम भी छूट गया। ब्रिटेन जैसे ठंडे देश का तो किसी को अनुभव ही नहीं था। एयरपोर्ट से बाहर निकलते ही जिस सबसे पहली चीज का सामना करना पड़ा, वे थीं ब्रिटेन की ठंडी हवाएं। नवम्बर का सर्द महीना था।...मौसम के हिसाब से ढंग के कपड़े भी नहीं थे किसी के पास। वैसे अपनी सोच के अनुसार सभी ने गर्म कपड़े पहने हुए थे। शायद किसी को ये अंदाजा नहीं था कि इतनी ठंड भी हो सकती है।

छोटी सी निशा...शाल में लिपटी हुई बाहर की सर्दी से बेखबर सरोज के सीने से चिपकी हुई मां के शरीर की गर्मी ले रही थी। ठिठुरते हुए अधिकतर लोगों ने लैस्टर का रुख किया। कारण साफ था कि लैस्टर को इंडस्ट्रीज का शहर माना जाता था। लैस्टर एक सस्ता शहर भी था। इंडस्ट्रीज के कारण उनके हिसाब का काम भी सारा लैस्टर में था।

लैस्टर में ही इनके आने से पहले कई भारतीय बसे हुए थे। सुरेश भाई के दूर के रिश्ते के भाई मुकुल पटेल ब्रिटेन में आकर बस गये थे जब ब्रिटिश सरकार ने यहां की फैक्टरियों में काम करने के लिये भारतीयों को अनुमति व बीजे दिये थे। यह वो समय था जब फैक्टरियों में काम करने वालों की कमी थी। उस समय प्रोडक्शन बढ़ाने के लिये ब्रिटिश सरकार को यह एक सस्ता और आसान तरीका नजर आया था।

भारत के एक प्रदेश पंजाब के देहातों से व गुजरात से लोग काम करने के लिये ब्रिटेन में लाये गये। ब्रिटिश निवासियों ने इनके आने पर आवाज तो उठाई परंतु देश की भलाई के कारण अधिक आपति नहीं जताई। मुकुल पटेल भी गुजरात से आये हुए लोगों में से एक थे। लोग आये तो ये सोच कर थे कि पैसा कमा कर थोड़े समय के पश्चात वापिस अपने देश लौट जायेंगे किंतु यहां की सुख सुविधायें व अच्छा वेतन देख कर वे परिवार सहित यहीं बस गये। जब यहां पर बस ही गये तो यहां का रहन सहन अपनाने में ही सबने अपनी भलाई समझी।

मुकुल पटेल एक बड़ी सी कार लेकर सुरेश भाई के परिवार को लेने हीथरो हवाई अड्डे पर पहुंच गये। ब्रिटेन में कार केवल सुख सविधा के साधन के लिये ही नहीं बल्कि कार यहां पर एक जरूरत

की वस्तु है... यहां का मौसम और दूरियों को देखते हुए। मुकुल भाई को देख कर सबको खुशी हुई। परदेस में यदि कोई अपना मिल जाये तो दिल को कितनी तसल्ली होती है।...

कार में बैठते ही मुकुल भाई ने कार में लगा हीटर चालू कर दिया जिससे सर्दी से सबको थोड़ी राहत मिली। सब उत्सुकतावश कार के शीशों से बाहर देख रहे थे। जहां ब्रिटेन की साफ-सुथरी चौड़ी सड़कों पर सैकड़ों कारें चुपचाप अपनी दिशा की ओर भागी जा रही थीं। कहीं से भी शोर या भोंपू की आवाज नहीं।...सड़कों पर सफेद कोहरा बिछा हुआ था। बीच में धुंध भी मिल जाती थी। कहीं पर तो धुंध इतनी गहरी हो जाती थी कि सामने का रास्ता भी ठीक से दिखाई नहीं देता था। नजर आती थीं तो आगे चलती हुई कारों की लाल बत्तियां।...

❐❐

परिवार साथ हो और काम हाथ में ना हो तो अपना और प्रियजनों का पेट पालने के लिये इन्सान कोई भी काम करने को तैयार हो जाता है।

बाहर से आये लोग तो कोई भी काम करने को तैयार थे किंतु ब्रिटिश निवासी इन्हें अपनाने को तैयार नहीं हुए। इतने सारे एक जैसे लोगों को देख कर वो वैसे ही घबरा गये थे। पहले ही कुछ वर्षों से ब्रिटेन की फैक्ट्रियों में काम करने के लिए यहां की सरकार ने भारतवासियों को वीजा देने शुरू कर दिए थे। प्रोडक्शन बढ़ाने के लिए उन्हें यह एक आसान तरीका लगा था। मेहनती लोग सस्ते दामों पर मिल जाएं तो और क्या चाहिए।

जहां पहले कभी जिन अंग्रेजों ने कोई एशियन नहीं देखा वहां इतने सारे एक जैसे चेहरे देख कर वह पागल हो गये।...एक दूसरे से अपने दिल का डर बताने लगे...

"देखो तो....लगता है इतने सारे एलियंस हमारे देश पर हल्ला बोलने आ रहे हैं" खिड़की का पर्दा हटा कर बाहर झांकते हुए बलिंडा ने कहा।

"नहीं बलिंडा, ये एलियंस नहीं अफ्रीका से आने वाले कुछ और एशियंस हैं।"

"अब हमारा क्या होगा।...ये एशियंस तो चारों ओर से हमें घेर रहे हैं।...लगता है हमने जो करीब दो सौ साल तक भारत पर राज्य किया है ये शायद उसी का बदला लेने इतनी बड़ी संख्या में इकट्ठे हो रहे हैं। हैरानी तो इस बात की है कि सब कुछ जानते हुए भी अंग्रेज सरकार ने इतने सारे लोगों को यहां आने की अनुमति कैसे दे दी।...?"

अनुमति तो मिली किंतु बेचारे अफ्रीका से निकाले गये लोग बहुत डरे हुए थे। अंग्रेजों का डरना अपनी तरह का था और एशियंस का दूसरी तरह का। सब एशियंस एक साथ रहने में ही अपनी भलाई मानते थे। इसमें उनका भी कोई दोष नहीं था। नया देश, नई भाषा, नए लोग, वो एक गुट बना कर रहने में ही स्वयं को सुरक्षित समझने लगे।

इससे पहले कोई एकआध भारतीय ही पढ़ाई के सिलसिले में ब्रिटेन आया करता था और उसे काफी कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता था। कोई भारतीय कितना भी पढ़ा लिखा क्यों ना हो उसे हीनता की भावना से ही देखा जाता था। भारतीयों में भी हीनता आना और डर पैदा होना स्वाभाविक था। इतने साल अंग्रेजों की गुलामी जो सही थी। जहां थोड़े से अंग्रेज आकर अपनी रणनीति से इतने बड़े भारतवर्ष पर राज कर सकते हैं, वहीं उन्हीं के देश में कदम रखते घबराहट तो होती ही है।

वैसे एक बात तो ब्रिटिश निवासी भी मानते हैं कि लैस्टर को असली पहचान एशियंस ने ही दिलाई है। 19वीं सदी के आरम्भ में लैस्टर के विषय में कोई जानता भी नहीं था। मोटर-वे पर कहीं लैस्टर का साईन तक नहीं मिलता था। यहां तक कि ब्रिटेन के नक्शे में छोटा सा लैस्टर का नाम कहीं लिखा मिलता था। यूं कहिये कि लैस्टर की पहचान एशियंस से, और एशियंस की पहचान लैस्टर से हुई।

लैस्टर अपने टैक्सटाइल के नाम से भी पहचाना जाता है, क्योंकि कपड़ा बुनने से लेकर पूरा वस्त्र तैयार करने की फैक्टरियां यहां मौजूद हैं। कच्चा माल सस्ते दामों पर भारत से लाकर, फिर उससे सामान तैयार करके पूरी दुनियां में बेचा जाता था। प्रोडक्शन और सामान की मांग बढ़ने लगी तो काम करने वालों की कमी महसूस हुई। ऑर्डर्स पूरे करने के लिये अधिक से अधिक लोगों को काम पर रखा जाने लगा।

काम की बात तो और है किंतु ब्रिटेन के लोग किसी से भी मिल कर नहीं रहना चाहते। ये स्वयं को सब से ऊंचा और सभ्य मानते हैं। यहां तक कि अपने जैसे गोरे दिखने वाले अपने ही देशवासी आइरिश लोगों के साथ इनका व्यवहार सदैव घृणाजनक रहा है। आइरिश लोगों को चर्च, पब, यहां तक कि आइरिश बच्चों को इनके स्कूलों में भी जाने की अनुमति नहीं थी। ये उनके साथ मेल-मिलाप रखना पसंद नहीं करते।

उस दिन गर्मी बहुत थी। कुछ आइरिश नौजवान ठंडी बियर पीने के लिये एक पब में घुस गये।

ग्राहकों को आया देख कर एक बारमैन ने मुस्कुराते हुए आगे बढ़ कर कहा...''यस सर..."

"चार गिलास ठंडी बियर मेरे दोस्तों के लिये देना।"

उस लड़के का आइरिश एक्सेंट सुन कर बारमैन के होठों से मुस्कुराहट गायब हो गई। उसे बगलें झांकते देख कर दूसरा बारमैन जल्दी से आगे आ कर बोला "हमारे यहां बियर नहीं बिकती..." पब लोगों से खचाखच भरा हुआ था। अधिकतर लोग बियर ही पी रहे थे। वह लड़का जरा गुस्से से बोला...''नहीं बिकती तो यह सब कैसे पी रहे हैं।''

"मैंने कहा न, हमारे यहां बियर नहीं बिकती, आप लोग किसी अपने जैसों के पब में जाइये। यह इंगलिश पब है...।"

चारों लड़के बारमैन की ओर गुस्से से देखते हुए पब से बाहर हो गये।

पब तो दूर की बात है इंगलिश चर्च में भी इन्हें जाने की अनुमति नहीं थी। चर्च तो इबादत का घर है। जब ऊपर वाले ने सब को एक जैसा पैदा किया है तो फिर ये धरती पे रहने वाले किस अधिकार से मतभेद करते हैं। वो भी इतना कि धर्म के नाम पर मरने मारने पर उतारू हो जाएं। इंगलिश लोगों से अधिक तो आइरिश धार्मिक माने जाते हैं। हर रविवार को पूरे परिवार के साथ ये चर्च जाते हैं। आइरिश लोग अधिकतर कैथोलिक धर्म को मानने वाले हैं। वैसे तो ब्रिटेन में हमेशा से ही दो धर्म मानने वाले पाए गये हैं–कैथोलिक और प्रोटेस्टियन्स। जिनमें अक्सर धर्म के नाम पर झगड़े भी होते रहते हैं...

❐❐

आज चर्च में बहुत भीड़ व चहल-पहल थी। लोगों के चेहरे से खुशी साफ झलक रही थी। बात ही कुछ ऐसी थी। आज से चर्च के द्वार आइरिश लोगों के लिये खुल गये थे। अब यह लोग भी जब चाहें चर्च आ सकते थे।

धार्मिक कार्य समाप्त होते ही एक आइरिश व्यक्ति माइकल अपने पूरे परिवार के साथ आगे बढ़ा पादरी के हाथ को किस करने के लिये जो पादरी उनके मुंह में भी वाइन में भीगा हुआ डबल रोटी का टुकड़ा डाल दें। उसे अपना हाथ देने से पहले ही पादरी ने पीछे खींच लिया। और पीछे खड़े अंग्रेज की ओर बढ़ गया। आयरिश लोगों के चेहरे से सारी खुशी गायब हो गई। चर्च के द्वार तो खुल गये किंतु कोई अंग्रेज पादरी इनको संडे सर्विस देने को तैयार नहीं हुआ।

आइरिश लोग भड़क उठे। यह सरासर उनका अपमान था।

"अब हम क्या करेंगे माइकल...केवल चर्च के दरवाजे खुलने से ही हमारी पूजा पूरी नहीं होती।"

"घबराओ मत...यदि यहां के पादरी स्वयं को भगवान से भी ऊंचा समझते हैं तो हम इटली से पादरी बुलवायेंगे जो हमें संडे सर्विस दे सके।"

पादरी तो आ गया किंतु संडे सर्विस से पहले ही इटली से आये पादरी के सफेद लम्बे चोंगे को लेकर विवाद खड़ा हो गया। वैसे भी जब कहीं छोटा सा भी परिवर्तन होता है तो ना चाहने वाले आवाज तो उठाते ही हैं। और अधिक पचड़े में ना पड़ने के कारण इटली से आये पादरी ने कैथोलिक चर्च बनाने के लिये लैस्टर में ही एक जमीन का टुकड़ा खरीद लिया।

"फादर...जमीन तो खरीद ली हमने किंतु इस पर चर्च बनाने का खर्चा कहां से उठायेंगे?"

"बेटे जिसने यह जमीन खरीदने की हिम्मत दी है, वही आगे भी सहायता के लिये हाथ बढ़ा देगा।"

सहायता मिलनी आरम्भ हो गई। इटली में अधिकतर कैथोलिक धर्म को मानने वाले रहते हैं। जब उनके पादरी ने ब्रिटेन में पहला कैथोलिक चर्च बनाने का प्रस्ताव रखा तो धर्म के नाम पर इटली निवासियों ने दिल खोल कर दान दिया।

इस तरह लैस्टर में ही नहीं पूरे ब्रिटेन में इस पहले कैथोलिक चर्च की स्थापना हुई।... इसकी बाकी की बची हुई जमीन पर एक कम्युनिटी सैंटर बनाया गया जो बाद में एक स्कूल में परिवर्तित कर दिया गया जो केवल लड़कियों के लिये ही था। आगे चल कर काफी मुसलमान लड़कियों ने इसमें दाखिला लिया। यह ब्रिटेन का सबसे पहला ऐसा स्कूल था जिसमें अधिकतर एशियंस और आइरिश लड़कियां थीं।

आइरिश लोगों के लिये चर्च के दरवाजे खुले और उधर एशियन बच्चों की मेहनत भी रंग दिखाने लगी। जिन स्कूलों में पहले उन्हें दाखिला नहीं मिलता था उनकी पढ़ाई की लगन को देख कर उन्हीं स्कूलों के दरवाजे एशियंस के लिये खुलने लगे। किंतु केवल स्कूलों के दरवाजे खुलने से ही बच्चों की मुश्किलें समाप्त नहीं हुईं। वहां पढ़ने वाले कई अंग्रेज छात्रों को उन्हें अपनाने में बड़ा समय लगा। अंग्रेज और भारतीय छात्र अपने अलग गुट बना कर रहते। अक्सर खेल के मैदान में दोनों की आपस में भिड़ंत भी हो जाया करती।

ये नहीं कि केवल लड़के ही बुली करते हों, लड़कियों में यह भावना और भी अधिक पाई जाती है। हां ! वह तभी ऐसा करतीं जब तीन चार इकट्ठी होतीं। यह लड़कियां जब किसी एशियन को पास से निकलता देखतीं तो नाक पर रूमाल रख कर ऐसे रास्ता बदलतीं मानों सामने से गंदगी का ढेर चला आ रहा हो। कुछ तो घृणा से उनकी तरफ देख कर सड़क पर थूक भी देतीं। वैसे सड़क पर थूकना अंग्रेजी सभ्यता के खिलाफ समझा जाता है। एशियंस के लिये पाकी, ब्लडी, बास्टर्ड आदि सुनना तो आम सी बात लगने लगी।...

निशा जब ब्रिटेन आई थी तो कुछ महीने की बच्ची थी। ब्रिटेन में पहले प्ले ग्रुप व फिर यहां के स्कूल में पढ़ने के कारण उसे दूसरे बच्चों के समान अंग्रेजी भाषा से इतनी दिक्कत नहीं आई। फिर भी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ना और अंग्रेजी माहौल में रहना दो अलग बातें हैं।

निशा घर में तो अपनी मातृ-भाषा ही बोलती है। जो अंग्रेजी में बोलते ही नहीं सोचते भी अंग्रेजी में ही हों, उनके लहजे को समझने और पकड़ने में समय तो लगता ही है।

सैकंडरी स्कूल में पहुंचते ही निशा को अलग ही माहौल का सामना करना पड़ा। अंग्रेज बच्चे स्वयं को इन सब से ऊंचा मानते थे और अपना अलग ही गुट बनाये रहते थे। एशियन बच्चों का बोलने का ढंग, कपड़े पहनने का ढंग, खाने का ढंग आदि... सबका मजाक उड़ा कर वे हंसते।

मजाक उड़ता देख कर भी निशा ने हिम्मत नहीं हारी और अंग्रेज बच्चों से दोस्ती का हाथ बढ़ाने में पहल उसी ने की। एक स्कूल कैन्टीन ऐसी जगह होती है जहां सभी बच्चे इकट्ठे बैठ कर खाना खाते हैं। कुछ सोच कर निशा अपनी प्लेट लेकर एक मेज की ओर बढ़ी जहां पहले से ही कुछ अंग्रेज छात्र बैठे खाना खा रहे थे।...

इस लड़की का हौंसला तो देखो अपना गुट छोड़ कर अकेली ही हमारी मेज पर आ रही है। खाना खाते हुए एक छात्र बोला...

आने दो ना मजा आयेगा...

निशा जैसे ही एक खाली कुर्सी पर बैठने लगी सब ने ऐसे मुंह बनाया जैसे अचानक कोई कड़ुवी चीज खा ली हो।

हाय...मेरा नाम निशा है। हम एक ही कक्षा में पढ़ते हैं और आपस में जान पहचान ही नहीं तो सोचा क्यों न मैं ही दोस्ती का हाथ बढ़ा दूं। निशा ने जैसे ही हाथ आगे बढ़ाया सब ऐसे बनने लगे जैसे उसकी बात समझ में ना आ रही हो। फिर उसके एक्सेंट का मजाक उड़ा कर हंसने लगे।

उनकी हंसी ही नहीं जुबान भी बंद हो गई जब पढ़ाई में भारतीय बच्चे स्वयं को साबित कर गोरों से आगे निकल गये। एशियन बच्चे समझ गए थे कि अंग्रेज बच्चों का मुकाबला करने के लिए उन्हें उनसे अधिक नम्बर लाने होंगे जिसके लिए मां-बाप ने भी उनका पूरा साथ दिया।

कुछ माता पिता इकट्ठे होकर स्कूल की मुख्य अध्यापिका के पास पहुंच गए। मुख्य अधयापिका बच्चों के माता पिता को देख कर दफ्तर से बाहर आकर उनके आने का कारण पूछने लगी।

"मैडम! आप तो जानती ही हैं कि हमारे बच्चे कितने मेहनती हैं। अंग्रेजी हमारी मातृभाषा नहीं है जिस के कारण वह पिछड़ जाते हैं। हम चाहते हैं कि इन बच्चों को अलग से स्कूल के पश्चात एक दो घंटे अंग्रेजी की शिक्षा दी जाए जो उन्हें अंग्रेजी लहजा समझने में कोई कठिनाई न हो।"

इतने सारे पेरेंट्स की बात अध्यापिका कैसे ठुकरा सकती थी। स्कूल में ही एशियन बच्चों को अंग्रेजी लिखना बोलना सिखाने के लिए अलग से कक्षाएं लगनी आरम्भ हो गईं। उनकी लगन और मेहनत को देख कर दूसरे अध्यापकों का रवैया भी धीरे-धीरे बदलने लगा। जिस स्कूल में एशियन बच्चे पढ़ते थे उस स्कूल की पढ़ाई का परिणाम काफी अच्छा आने लगा। अब तो हर बड़े स्कूल ही नहीं बल्कि प्राइवेट स्कूलों में भी एशियन बच्चों को दाखिला मिलने लगा जहां पहले अमीर अंग्रेजों के बच्चे ही पढ़ सकते थे।

बच्चों की अंग्रेजी भाषा में परिवर्तन साफ दिखाई दे रहा था। निशा के माता-पिता के समान और मां-बाप भी घर में अपने बच्चों को अंग्रेजी में ही बात करने के लिए प्रोत्साहित करते दिखाई दिये। इससे उनके दो मकसद पूरे हो रहे थे। एक तो बच्चों को यहां का समाज अपना ले, और वह दूसरे अंग्रेज बच्चों के साथ घुलमिल कर रहें। इसी बहाने बड़े लोग स्वयं भी काफी अंग्रेजी के शब्द सीख रहे थे।

कुछ भी हो एशियन्स और अंग्रेजों के रहन-सहन में अंतर तो है ही। किसी हद तक ब्रिटिशर्स का डर भी सही था। जब बच्चे एक साथ बड़े होंगे, आपस में मिलेंगे जुलेंगे तो जाहिर सी बात है कि यहां के स्वतंत्र माहौल में रहने के कारण लड़के लड़कियों में आपस में नजदीकियां भी बढ़ेंगी। युवा बच्चों के मेल-जोल को दोनों परिवार रोक नहीं पाएंगे। अंतर उस समय और भी सामने आएगा जब अंतर्राष्ट्रीय विवाह होंगे। दो भिन्न संस्कृतियों के ऐसे मिलने से टकराव होना स्वाभाविक ही है।

❐❐

"मम्मा यह लोग तो यहां बढ़ते ही जा रहे हैं" सामने वाले घर में इतने सारे लोगों को आते जाते देख कर मिडल एवन्यू स्ट्रीट के लोग घबरा गये।

"घबराओ मत बेटा, यह लोग कुछ समय के लिये ही यहां पर हैं। कुछ साल यह यहां ब्रिटेन में काम करके, अधिक से अधिक धन कमा कर वापिस अपने देश चले जाएंगे तब तक तो हमें इन्हें झेलना ही होगा।"

"अपने देश तो यह लोग बाद में जायेंगे मम्मा, पहले तो यह भी पता नहीं चल रहा कि सामने वाले इतने छोटे से घर में कितने लोग रहते हैं, कुछ समझ में नहीं आता।"

"हां बेटा, जब से सामने वाले घर में रहने वाली महिला जून की मृत्यु हुई है तब से हमारी स्ट्रीट का माहौल ही बदल गया है। मना करने पर भी उसकी बेटी इन लोगों को मकान बेच कर लंदन चली गई है। उसे तो बस पैसों से मतलब था।"

"जी मम्मा...एक छोटा सा तीन बैडरूम का घर और सुबह शाम इतने नये चेहरे दिखाई देते हैं। इतने लोग सोते कैसे होंगे मां।"

"पता नहीं बेटा...जब तक यह कोई नियम न तोड़ें हम कुछ कर भी तो नहीं सकते।"

गोरों की उत्सुकता अपने स्थान पर सही भी थी। एक तीन बैडरूम के घर में दस से भी अधिक लोग रहते हैं। यह लोग शिफ्टों में काम करते हैं। कुछ लोग दिन में और कुछ रात में। किसी का भी परिवार साथ न होने के कारण पांच बिस्तरों को दस लोग प्रयोग करते हैं। जो लोग दिन में काम करते वह रात को जिन बिस्तरों का प्रयोग करते उन्हीं बिस्तर पर रात को काम करने वाले दिन में सोते हैं। इस प्रकार वह अधिक से अधिक पैसे बचाने की कोशिश कर रहे हैं जो जल्दी या तो अपने देश वापिस चले जाएं या अपना स्वयं का घर लेकर परिवार को यहां बुला सकें।

अंग्रेज तो ऐसा कुछ करने के विषय में कभी सोच भी नहीं सकते थे। उनके लिए ये सब दूसरी ही दुनिया की बातें थीं। जब लोगों ने वापिस भारत जाने के स्थान पर अपने परिवारों को ब्रिटेन में ही बुलाने की बात ब्रिटिश सरकार के सामने रखी तो वह कुछ न कर सकी क्योंकि सबके पास रहने के लिए वीजा जो थे। एक दूसरे की सहायता से लोगों ने अपने घर खरीदने आरम्भ कर दिये जो उनका परिवार आराम से रह सके और वह बच्चों को अच्छा जीवन दे पाएं।

❐❐

अच्छे जीवन की लालसा में ही तो एशियन लोग कड़ी मेहनत कर रहे हैं। सुरेश भाई जिस घर में रहते हैं वहीं पर एक नीचे के कमरे को थोड़ा बड़ा कर उसमें शैल्फ लगा कर उन्होंने उसे एक दुकान में परिवर्तित कर दिया। दिन में वो दुकान निशा की नानी सरला बेन चलातीं और शाम को काम से आकर सुरेश भाई उस दुकान को सम्भालने का काम करते हैं।

किसी हद तक लैस्टर निवासियों का यह कहना उचित है कि यदि किसी एशियन के पास कोने का घर है तो समझ लो कि वहां एक दुकान खुल जायेगी।

ब्रिटेन में यह कोने की दुकानें एक विशेष महत्त्व रखती हैं। यह दुकानें देखने में छोटी जरूर होती हैं किंतु इनमें घरों में प्रयोग होने वाले सारे आवश्यक सामान के साथ समाचार पत्र से लेकर शराब तक मिलती है। दुकान से अभी इतना पैसा नहीं निकलता था कि घर का खर्चा आराम से हो पाए।

आखिर सरोज को एक फैक्ट्री में काम करना पड़ा।

सरोज जिस फैक्ट्री में काम करती है वह सर रिचर्ड टाउल्स की फैक्ट्री है। सर रिचर्ड जो एक मामूली कोयला खदान में काम करने वाले मजदूर की एकलौती संतान हैं। इनके माता पिता ने उस समय बेटे को अच्छी शिक्षा दिलाने का सपना देखा था जबकि युनिवर्सिटी में बच्चों को पढ़ाना केवल अमीर लोगों का काम था।

सर रिचर्ड ने अपनी मेहनत, लगन व ईमानदारी से केवल अपने माता पिता का सपना ही पूरा नहीं किया बल्कि देखते ही देखते लॉफ्बरो में ही एक के बाद एक तीन फैक्ट्रियां खड़ी कर दीं।...

लॉफ्बरो जैसे छोटे गांव में जिधर भी नजर घुमाओ ''टाउल्स टैक्स्टाइल'' की इमारतें ही दिखाई देने लगीं। पूरे लैस्टरशायर में उनका दबदबा बढ़ने लगा। कोयला खदान में काम करने वाले एक मामूली से मजदूर का बेटा नाम और इज्जत कमा कर रिचर्ड से "सर रिचर्ड टाउल्स" बन गया।

❐❐

टाउल्स फैक्ट्रियों की इमारतें एक विशेष प्रकार के हल्के भूरे रंग की ईंटों से बनी हुई हैं। यह ईंटें भी लॉफ्बरो के कारखाने में ही तैयार की गई हैं। इमारत के अंदर घुसते ही सामने एक बड़ा सा दरवाजा है लोगों के अंदर आने के लिये। दरवाजे के ऊपर सर उठाये एक नीले रंग का बोर्ड लटक रहा है जिस पर सफेद शब्दों में लिखा हुआ है "टाउल्स टैक्स्टाइल्स"। बायें हाथ पर एक बड़ी सी क्लॉक मशीन लगी हुई है। वहां काम करने वाले सबसे पहले अपने नाम और नम्बर का कार्ड निकाल कर उस मशीन के अंदर डाल कर पंच करते हैं जिससे उस पर समय छप जाता है कि वह कितने बजे काम पर आये। ऐसे ही जाते समय सब लोग कार्ड को पंच करके जाते हैं।

फैक्टरी के दरवाजे के अंदर कदम रखते ही कहीं मशीनों की आवाजें तो कहीं ट्राली को इधर से उधर घसीटने के शोर से पता चल जाता है कि यह कोई बड़ा कारखाना है। यह 70वें दशक का समय था जबकि कारखानों की नहीं काम करने वालों की कमी थी।

सरोज सर रिचर्ड की फैक्टरी में एक प्रेस का काम करती है। वह जब से ब्रिटेन आई है बहुत कड़ी मेहनत कर रही है। नहीं तो इतनी सुबह सबेरे गर्म बिस्तर छोड़ कर सर्दी में कौन घरों से बाहर निकलना चाहेगा। मजबूरी इंसान से क्या नहीं करवाती...जब तक सरोज के बच्चे छोटे थे सुरेश भाई रात की शिफ्ट में काम करते थे जो दिन में सरोज काम पर जा सके।

चाहे कैसा भी मौसम हो सरोज सुबह पांच बजे उठ कर पहले घर के कितने ही काम निपटाती। बच्चों का, पति का, अपना दोपहर के खाने का डिब्बा तैयार करना। मां दुकान सम्भालती हैं इसलिये उनके लिये भोजन की व्यवस्था करना।...बच्चों को स्कूल के लिये जगा कर 7.30 से पहले वह काम पर पहुंच जाती है।

सरोज के साथ और भी बहुत सी महिलाएं प्रेस का काम करती हैं। ये लोग जहां काम करती हैं वह एक बहुत बड़ा सा कमरा है। बायें हाथ की दीवार के साथ ही 9-10 लम्बी प्रेस लगी हुई हैं। जो बहुत बड़ी और भारी दो पलड़ों वाली इंडस्ट्रियल प्रेस होती हैं। इन्हें प्रयोग में लाने से पहले कुछ सप्ताह सीखना पड़ता है। इस प्रेस की लम्बाई लगभग पांच फुट और चौड़ाई तीन-साढ़े तीन फुट होती है। ऊपर और नीचे के दोनों पलड़े बराबर के होते हैं जिन पर गद्देदार कपड़ा कसके बिछा होता है। प्रेस के नीचे तीन पैडल लगे हैं। एक ऊपर के पलड़े को नीचे खींचने के लिए, दूसरे को दबाने से स्टीम निकलती है और तीसरा कपड़े को सुखाता और ठंडा करता है।

प्रत्येक प्रेस के सामने एक लम्बी मेज काम करने के लिए बिछी हुई है। सामने ही बड़ी-बड़ी खुली अलमारियां हैं जो ओवरलॉकिंग किए हुए कपड़ों के बंडल से भरी हुई हैं। महिलाओं को काम देने के लिये दो पुरुष हैं जिनमें से एक ओवरलॉकिंग के कमरे से ट्राली पर बंडल भर कर लाता है और दूसरा उन्हें प्रेसर की मेज पर रखने का काम करता है। यहां तेजी से काम करते हुए मनुष्य भी मशीनों से कम नहीं लगते।

सरोज का सारा ध्यान इस समय अपने काम पर है जिसमें हाथ और पैर दोनों चलते हैं। ओवरलॉकिंग किया कपड़ों का एक बंडल खोल कर सरोज ने उसमें से कुछ कपड़े निकाल कर ठीक से प्रेस के नीचे के पलड़े पर बिछा दिये। बाईं ओर के लगे पहले पैडल को बायें पैर से दबाते ही ऊपर का पलड़ा थोड़ ढीला पड़ गया। फिर शीघ्र ही उसने दायें हाथ से ऊपर के पलड़े को नीचे खींच कर उन बिछे हुए कपड़ों पर रख दिया जो नीचे बिछे कपड़े हिलें नहीं...

तब दूसरे पैडल से 10-15 सैकिंड तक कपड़ों को स्टीम देकर तीसरे पैडल को दबाने की बारी आई जहां से ठंडी हवा निकल कर उन प्रेस किये कपड़ों को सुखाने लगी। प्रेस किए कपड़ों को फिर से सरोज ने उसी रस्सी से इस प्रकार बांधा कि उनकी प्रेस खराब न हो।

हर एक बंडल के साथ एक लम्बी सी टिकट होती है जिस पर प्रत्येक डिपार्टमेंट का नाम लिखा हुआ है। काम करने के पश्चात उस बड़ी टिकट में से अपनी छोटी टिकट काट अपना नाम वहां पर लिख कर बंडल के साथ उस बड़ी टिकट को अगले वर्कर के लिए भेज दिया जाता है। प्रेस के बाद यह बंडल कटर्स के पास जाता है जहां नाप के अनुसार और डिजाइन देकर इन कपड़ों को काट कर और सिलाई करके फिर से प्रेसर के पास पहुंचा दिया जाता है। इस बार प्रेसर नाप के अनुसार एक ''रेम'' पर वस्त्र को चढ़ा कर उसे प्रेस करती हैं।

यहीं पर ही काम समाप्त नहीं होता। प्रेस किये हुए तैयार वस्त्र एग्जामिनर्स के पास जाते हैं। वे प्रत्येक बने हुए कपड़े की ठीक से जांच करके प्लास्टिक के लिफाफों में डाल कर पैक कर देती हैं। इस प्रकार कितने हाथों से निकल कर एक वस्त्र तैयार होता है। प्रत्येक काम करने वाला साथ लगी बड़ी टिकट से अपनी टिकट काटना नहीं भूलता। शुक्रवार उनकी टिकटों को गिनने के पश्चात सबको उन्हीं टिकटों के अनुसार वेतन दिया जाता है।

❐❐

सरोज एक बहुत अनुभवी प्रेसर है। पैसों की कमी होने के कारण वह कभी ओवरटाईम भी कर लेती है। सरोज जहां काम करती है वह कमरा थोड़ा बड़ा है। लंच ब्रेक के समय उसकी और सहेलियां भी जो दूसरे डिपार्टमेंट में काम करती हैं यहीं आ जाती हैं खाना खाने के लिये।

सरोज के बाजू वाली प्रेस पर एक युवा गोरी लड़की एंड्रिया काम करती है। अच्छी लड़की है। अधिक पढ़ी लिखी नहीं है। वह ठीक से अपने काम की टिकटें भी नहीं गिन सकती जिसके लिये सरोज उसकी सहायता कर देती है। एंड्रिया का ब्वॉय "रेंड जैक'' भी उसी का हमउम्र है। कुछ दिनों से वह भी एंड्रिया के साथ खाना खाने के लिये प्रेस डिपार्टमेंट में ही आने लगा। युवा दिमाग हो और उसमें कभी कोई खुराफात न आए ऐसा तो हो ही नहीं सकता।

कुछ दिन तक तो सब ठीक चलता रहा। एक दिन खाना खाने के पश्चात एंड्रिया को मस्ती सूझी और वह जैक के सामने अपनी मेज पर टांगें नीचे लटका कर लेट गई। उसका इशारा समझ कर जैक एंड्रिया के साथ शैतानी करने लगा जो शायद एंड्रिया को बहुत अच्छा लगा। अब यह रोज की बात हो गई। बात धीरे धीरे हल्की फुल्की छेड़खानी से आगे बढ़ने लगी।

यही शैतानियां बदतमीजी पर उतर आईं। दोनों उन बैठी हुई महिलाओं की ओर शैतानी से देखते और शर्मनाक हरकतें करते। सरोज और उसकी दोस्तों से वहां बैठना दूभर हो गया।

एक दिन सरोज को इतना गुस्सा आया कि वह खाना वहीं छोड़ कर कहीं चल दी।

"मैनेजर साहब, मैं अंदर आ सकती हूं।"

"अरे सरोज आप...आइये अंदर आइये।" मैनेजर सरोज को जानते हैं कि यह एक बहुत तेज और खामोशी से काम करने वाली महिला हैं। सरोज जो आज मैनेजर के पास आई है तो अवश्य ही कोई जरूरी काम होगा।...

"कहिये सरोज क्या बात है...?"

"सर हमें आधे घंटे का लंच ब्रेक मिलता है। कुछ दिन पहले तक सब ठीक से चल रहा था जब से जैक हमारे कमरे में नहीं आता था।"

"यह जैक कौन है और कहां से आता है" मैनेजर ने जरा जोर से पूछा।

"सर, यह कौन है मैं नहीं जानती। यह वहीं काम करने वाली युवा लड़की एंड्रिया का दोस्त है। ये लोग ब्रेक के समय ऐसी शर्मनाक हरकतें करते हैं कि हमारे लिए वहां बैठना मुश्किल कर दिया है। आप अभी चल कर अपनी आंखों से देख लीजिये...।"

मैनेजर उसी समय उठ कर सरोज के संग हो लिया।

"जैक..." एक कड़कती आवाज आई "एंड्रिया...ये सब क्या हो रहा है। जैक तुम यहां क्या कर रहे हो महिलाओं के कमरे में।"

"सर मैं यहां अपनी दोस्त एंड्रिया के साथ खाना खाने आता हूं।"

"वो तो मैंने देख ही लिया है कि तुम क्या करने आते हो...आइंदा तुम किसी भी महिला डिपार्टमेंट में दिखाई दिये तो फैक्टरी से बाहर कर दिए जाओगे...और तुम एंड्रिया...इतनी ही गर्मी चढ़ी हुई है तो जाकर घर बैठो...।"

"घर तो मैं इसको बिठाउंगी जो बड़ी होशियार बनती है।..." एंड्रिया ने बॉस से तो माफी मांग ली परंतु मन में सरोज के प्रति एक खुंदक रखी जिसके लिए वह समय की प्रतीक्षा करने लगी।

अंग्रेजों की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है कि किसी से कितनी भी दुश्मनी क्यों न रखें परंतु चेहरे पर एक भाव भी नहीं आने देते। हमेशा बत्तीसी निकाल कर और गले मिल कर ही मिलते हैं। समय आने पर कब पीछे से वार कर दें किसी को पता भी नहीं चलेगा।...

यही एंड्रिया ने किया। किसी बड़ी कम्पनी के आर्डर की आखिरी तारीख सर पर थी। बड़ी तेजी से काम हो रहा था क्योंकि यह बड़ी कम्पनियों का जब समय पर आर्डर पूरा नहीं होता तो यह पूरा का पूरा आर्डर कैंसिल कर देती हैं जिसका सारा नुकसान फैक्टरी को भुगतना पड़ता है। फैक्ट्री का फोरमैन परेशान है आर्डर ठीक समय पर निकालने के लिये। वह सबसे ओवरटाइम करने के लिये पूछ रहा है...

"सरोज दो सप्ताह थोड़ा ओवरटाइम लगा दो, बहुत बड़ा आर्डर है" फोरमैन ने कहा।

"देखिये मैं 40 घंटे में ही इतना काम कर देती हूं जितना ये बाकी की महिलाएं ज्यादा समय लगा कर भी नहीं कर पातीं। मेरा तीन साल का बेटा राह देख रहा होता है। मैं आपको कल बताऊंगी...।"

कल क्या बताती दूसरे दिन वह काम पर आई तो चौंक गई। यह क्या...शाम को तो मैं अपनी प्रेस को अच्छा भला छोड़ कर गई थी ...यह कपड़े पर इतना बड़ा छेद कहां से आ गया। सरोज सोचते हुए वहीं खड़ी हो गई। जब तक पूरा प्रेस का कपड़ा न बदला जाए काम करना असम्भव है। स्टीम के साथ जल जाने का डर है।

"सुंदर भाई...सरोज ने वहां काम करने वाले आदमी को पुकारा ... "जरा फोरमैन को बुला दीजिये।...प्रेस का कपड़ा फटा हुआ है ऐसी प्रेस पर काम नहीं हो सकता, ये तो मुझे जला देगी। और कोई प्रेस खाली भी नहीं जिस पर मैं जाकर काम करूँ।"

"अरे इतना बड़ा छेद। आप यहीं रुकिये, मैं फोरमैन को बुला कर लाता हूं।"

"यह कैसे हो गया सरोज?" फोरमैन ने आते ही पूछा।

"मालूम नहीं...शाम को तो मैं ठीक ठाक छोड़ कर गई थी। आप जल्दी से इसका कपड़ा बदलवा दीजिये।"

"कपड़ा बदलना इस समय नहीं हो सकता। इतनी सुबह तो मैकेनिक नहीं आता। तुम ऐसे करो काम शुरू कर दो जैसे ही मैकेनिक आएगा मैं लेकर आता हूं।"

सरोज जब तक प्रेस पर कपड़ा बिछा कर काम करती रही सब ठीक चल रहा था। परंतु जहां "रेम" पर चढ़ा कर प्रेस करने की बारी आई तो छेद में से गर्म स्टीम सीधी सरोज की बाजू पर आई। जलन के मारे वह चीख पड़ी। उसकी बाजू पर फफोले पड़ने लगे। सरोज से हमदर्दी दिखाने के स्थान पर फोरमैन उसी को डांटने लगा।...

"ध्यान से काम नहीं कर सकती थीं। जरा सी बात के लिए काम पिछड़ जायेगा।" फोरमैन को अपने बोनस की पड़ी थी। समय पर काम निकल जाए तो उसे बड़ा बोनस मिलेगा।

"अब यह लो कपड़ा हाथ पर बांधो और काम शुरू कर दो। एक-एक मिनट कीमती है...।"

सरोज की आंखों में दर्द के मारे आंसू भरे हुए थे। मन तो चाहा कि ये कपड़ा फोरमैन के मुंह पर फेंक कर अभी घर चली जाए। पैसों की आवश्यकता ने उसे वहीं रोक दिया। जले हुए हाथ से स्टीम के साथ काम करना मुश्किल ही नहीं असम्भव था।

असम्भव को सम्भव बनाने के लिये एंड्रिया जो थी वहां। वह आवाज में प्यार भर कर हमदर्दी जताने चली आई...

"सरोज बहुत जल रहा है। मैं यदि तुम्हारे स्थान पर होती तो यह गंदा कपड़ा फोरमैन के मुंह पर मार कर अभी घर चली जाती।"

"आप अपनी हमदर्दी अपने तक ही रखिये एंड्रिया। जरा जल्दी हाथ चलाइये नहीं तो काम भेजना मुश्किल हो जायेगा..." पीछे से सुंदर की आवाज आई।

मुश्किल समय तो अब फोरमैन के लिये आने वाला था। उसका व्यवहार एशियन्स के प्रति कभी भी ठीक नहीं रहा। फिर भी किसी ने भी उसकी शिकायत करने की हिम्मत नहीं दिखाई। सबको अपनी नौकरी की चिंता है।

चिंता केवल सुंदर भाई ने व्यक्त की। सुंदर भाई जो इन सब महिलाओं को प्रेस करने के लिये काम देते हैं उनसे सरोज का दुख देखा नहीं गया। फोरमैन के व्यवहार से वह भली भांति परिचित था। उसे केवल अपने काम की पड़ी है कोई वर्कर जीये या मरे उसकी बला से। परंतु मैं सरोज को इंसाफ दिलवाऊंगा। सुंदर ने चुपचाप से जाकर यूनियन से सम्पर्क किया और उन्हें सब कुछ बता दिया। इस फोरमैन की पहले से ही काफी शिकायतें यूनियन के पास दर्ज थीं। अब कुछ करने का समय आ गया था। इस फोरमैन को सबक सिखाना ही पड़ेगा।

यह वो समय था जब यूनियन का काफी बोलबाला था। यूनियन कर्मचारी प्रेस डिपार्टमेंट में आया...

"कम ऑन एवरी बाडी आऊट।...।" यूनियन के लीडर ने आते ही कहा..."सब लोग अपना काम छोड़ दीजिये। इस फैक्ट्री के फोरमैन कहां हैं, बुलाइये उनको...।"

फोरमैन के हाथ पैर फूल गये। वह सब काम छोड़ कर भागा हुआ आया। वह तो सरोज को बाकी एशियन महिलाओं के समान दब्बू और सीधी सादी अनपढ़ औरत समझता था।

"मिस्टर बील्स आप इस बात से अवगत हैं कि आपके यहां काम करने वाले एक कर्मचारी के साथ काम करते हुए दुर्घटना हुई है...।" यूनियन कर्मचारी टोनी ने कहा।

दुर्घटना तो हुई है परंतु सरोज इस असमंजस में है कि यूनियन को कैसे पता चल गया। अब बिना किसी कारण इतना बड़ा हंगामा खड़ा हो जायेगा फैक्ट्री में। फैक्ट्री बंद हो गई तो सब उसी को कोसेंगे।

कोस तो इस समय फोरमैन रहा था स्वयं को कि उसने इस ओर ध्यान क्यों नहीं दिया। वह जल्दी से बोला...

"जी मैं जानता हूं कि यहां काम करने वाली महिला सरोज का मामूली सा हाथ जला है और मैंने कपड़ा भी बांध दिया था उस पर।"

"इसको आप मामूली सा जला कहते हैं...। उन्होंने सरोज की बांह आगे करते हुए कहा...। "ये फफोले देख रहे हैं आप।"

"दुर्घटना रजिस्टर में तो आपने इस हादसे को दर्ज कर दिया होगा मिस्टर बील्स..."

"नहीं कर पाया इतना समय ही नहीं मिला।" फोरमैन अभी भी इस बात की गम्भीरता को नहीं समझ रहा था।

सरोज के चेहरे से भय साफ दिखाई दे रहा था। वह तो इसी असमंजस में थी कि यूनियन को पता कैसे चला। सरोज को डरा हुआ देख कर उस यूनियन के आदमी को दया आने लगी।

"सरोज आप डरिये मत, हम आपको इंसाफ दिलवा कर रहेंगे।"

"ठीक है इसको आप इंसाफ दिलाते रहिये, हमें कोई आपति नहीं लेकिन इसके कारण हम काम रोक कर क्यों नुकसान उठाये?" एंड्रिया काम करते हुए बोली।

"जो आज इनके साथ हुआ है कल आपके साथ भी हो सकता है मिस...क्या है आपका नाम?"

"एंड्रिया..."

"हां तो एंड्रिया...अभी तो हमने यह भी पता लगाना है कि अचानक सरोज की प्रेस में इतना बड़ा छेद कहां से आ गया। शायद आपने ही किसी को देखा हो..."

एंड्रिया एकदम सकते में आ गई। उसने उसी समय काम करना बंद कर दिया।

"किस बात का इंसाफ दिलाने की बात हो रही है टोनी। क्या हुआ है यहां, कोई मुझे भी बतायेगा..." सूचना मिलते ही फैक्ट्री का मैनेजर वहां आ गया।

"यहां ये हुआ है..." सरोज की बांह आगे करते हुए टोनी यूनियन के आदमी ने कहा..."ये सब आपकी फैक्ट्री के फोरमैन की लापरवाही के कारण हुआ है। सरोज को हस्पताल भेजने के स्थान पर उनके हाथ पर यह गंदा कपड़ा बांधने को बोला है जिससे सेप्टिक

भी हो सकता है। आपका फोरमैन इस बात से अवगत नहीं है शायद कि सरोज चाहे तो अभी सारी फैक्ट्री को बंद करवा सकती है।"

फैक्टरी बंद होने के नाम से मैनेजर मुलायम आवाज में बोला...

"मेरे ऑफिस में आओ टोनी, आराम से बैठ कर बात करते हैं। सुंदर आप सरोज को हस्पताल ले जाकर मरहम पट्टी करवा कर लाइये। और हां सरोज..." मैनेजर ने जाते हुए कहा..."आप घबराइये मत आपको इसका पूरा हरजाना मिलेगा।"

"क्या हरजाना देने वाले हो। बेचारी का बहुत हाथ जल गया है।"

"सरोज एक बहुत ही भले घर की पढ़ी लिखी महिला है। कभी कुछ मजबूरियां ऐसे लोगों को भी फैक्ट्री का रास्ता दिखा देती हैं।"

"भई फैक्ट्री के बाहर का रास्ता तो आपको अब इस फोरमैन को दिखाना होगा, नहीं तो कहीं किसी दिन इसके कारण सच में ही हड़ताल न हो जाये। वैसे भी सरोज के स्थान पर यदि कोई अपनी अंग्रेज महिला होती तो फैक्ट्री के बाहर तमाशा कर रही होती।"

"खैर सरोज से हमारा सम्पर्क रहेगा इसलिये...?"

"उसका ख्याल तो रखना ही पड़ेगा टोनी...बात अब यूनियन तक जो जा पहुंची है।...चिंता मत करो सरोज को हरजाने के साथ 6 से 8 सप्ताह की छुट्टी पूरे वेतन के साथ दी जायेगी।"

"ये पूंजीपति लोग हम जैसे गरीबों से ही तो डरते हैं नहीं तो..." और हंसते हुए टोनी ने कुर्सी छोड़ दी।...

●

लघु कथा

तब से गुलाब लाल होने लगा

✦ **उषा वर्मा, यॉर्क, ब्रिटेन**

एक बुलबुल थी। अपने नीड़ में बहुत सुखी थी। एक दिन वह अपने बच्चे के लिए सारे दिन खाना खोजते खोजते थक गई, कहीं से दो-चार दानों का जुगाड़ न हो सका। घर वापस आ रही थी कि उसे एक श्वेत गुलाब दिखा, गजब का आकर्षक था। वह जरा देर उसके आसपास चक्कर लगाती रही फिर घर वापस आई। चिड़ा पहले से ही उदास बैठा था। उस रात सब भूखे ही सो गए। दूसरे दिन बड़े सुबह ही चिड़िया घर से निकली, खाना खोजते खोजते अचानक उसे गुलाब की याद आई, दोपहर हो रही थी। चिड़िया एक अजीब खिंचाव से बेबस हो कर उड़ते उड़ते श्वेत गुलाब के पौधे पर जा बैठी। थकी तो थी ही झपकी आ गई। जरा देर बाद जब आँख खुली तो उसे लगा जैसे वह श्वेत गुलाब उसे अपनी गोद में छुपा लेना चाहता है। गुलाब के कांटे उसके सीने में धंसते जा रहे हैं।

कांटों की चुभन प्यार के नशे को गहरा कर रही है। उसका सोना और जागना क्या उसे तो सफेद गुलाब से पागलपन की हद तक प्यार हो गया। मन मार कर किसी तरह उड़ी, लेकिन सारे घर में उदास हो-होकर देखती रही। चिड़ा थोड़ा सा खाना आज लाया था। वह अब क्या करे। चिड़ा से क्या कहे, क्या करे? बच्चों का ध्यान आते ही कलेजा मुंह को आ जाता। अब क्या हो? घर छूटा, साथी छूटा बच्चे छूटे। सब कुछ छोड़ कर प्यार में पागल बुलबुल उड़ चली, सफेद गुलाब की तरफ। प्यार की पेंगें बढ़ने लगीं।

बुलबुल आकाश में उड़ती और गाती फिर जा कर सफेद गुलाब पर बैठ जाती। गुलाब के कांटे उसके सीने में चुभते, लाल-लाल खून टपकता, पीड़ा से कराहती, तौबा करती। अब क्या करूं पर फिर आकर जोर जोर से गाती और गुलाब से सट कर बैठ जाती। खून की, कांटों की, किसे परवाह? प्यार परवान चढ़ता रहा। बुलबुल सोचती यह कैसा प्यार है जो पीड़ा को सहने की ताकत देता जा रहा है। प्यार ही निश्चय इस शक्ति का स्रोत है। बहता है तो बहने दो खून। और बुलबुल श्वेत गुलाब के पास आते ही सब कुछ भूल कर बेतहाशा गाती, गाती रहती। उसके लाल रक्त से श्वेत गुलाब भीगता रहता।

एक दिन श्वेत गुलाब बोला...बुलबुल रानी तुम्हारा रक्त अब मेरी शिराओं में बहने लगा है। देखो तुमसे प्यार कर मैं कितना रक्तिम हो गया हूं। तुमने सुना है न लाली मेरे लाल की। बुलबुल घबड़ा गई। अरे यह तो सर्वनाश। बुलबुल ने ध्यान ही नहीं दिया था। वह अधीर हो कर गुलाब के गले से लिपट गई, कहां गया मेरा श्वेत गुलाब जिसे मैंने प्यार किया था। इस आलिंगन से रहा-सहा श्वेत अंश भी लाल हो गया। तुम बदल गये। अब मैं किसे प्यार करूं?

मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं रहा। इसके पहले कि गुलाब यह कहता कि मैं तो तुम्हारे लिये ही तुम्हारे रक्त से रक्तिम बना हूं, इतनी बड़ी सजा न दो मुझे, बुलबुल श्वे.....त गुलाब...श्वे....त कहती जमीन पर गिर गई। और तब से गुलाब लाल होने लगा।

(एक किंवदन्ती के आधार पर)

●

ढीठ मुस्कुराहटें

✦ ज़किया ज़ुबैरी, लंदन, यू.के.

'अरे भई रानी मेरी एड़ी को गुदगुदा क्यों रही हो... क्या करती हो भई... ये क्या हो रहा है... यह गीला गीला क्या है... अरे अब तो जलन भी हो रही है... उठो जागो भी, देखो क्या हो गया है..!"

रानी ने अंगड़ाई लेते हुए करवट बदली और फिर से मुंह ढँक कर सो गई।

सरजी बोलते रहे, बड़बड़ाते रहे... कराहते भी रहे... रानी ख़िदमत कर कर के तंग आ चुकी थी। छोटी सी बीमारी को पहाड़ बना दिया करते थे सरजी। मगर आज शायद सचमुच तकलीफ में थे। एक बार फिर जोर से आवाज लगाई रानी सुन नहीं रही हो... मैं तड़प रहा हूँ, ... दर्द और जलन से जान निकल रही है।"

रानी एक झटके से उठी और एड़ी से चादर उठाई तो देखा खून रिस रहा था और एकाएक वहां से एक चूहा कूद कर भागा। रानी चीख पड़ी... घिग्घी बंध गई उसकी। "सरजी चूहा... चूहा... सरजी ...वो भागा चूहा... वो... भा....गा... लगता है उसी ने काटी है आपकी एड़ी..."

यह सुनते ही सरजी ठण्डे पड़ गए... बदहवासी में कुछ भी अनाप शनाप बकने लगे... रानी डॉक्टर को बुलाओ... नौकरों को आवाज दो... और हाँ हर तरफ झपट लगवा दो एक चूहा भी नजर न आए हमारे घर के आस पास... जरा मेरी एड़ी को भी तो देखो ... कुछ करो जल्दी से... चूहे का काटा तो खतरनाक होता है... जहर फैल जाता है !"

डॉक्टर के इंजेक्शन के बाद जब तूफान थोड़ा थमा, तब कहीं जाकर रानी को कुछ सोचने का अवसर मिला। उसने अपने पति की ओर देखा... दोबारा गहरी नींद सो गए थे... वे विवाह के पहले दिन से ही उसके लिये 'सर जी' बन गए थे जो कि वक्त के साथ चलते चलते 'सरजी' में परिवर्तित हो गया था। रानी को बहुत शौक था कि उसका पति उसका मित्र बन जाए, किन्तु दोनों की आयु में दस वर्ष का अन्तर आड़े आ गया।

अचानक रानी के चेहरे पर एक हल्की सी मुस्कान उभर आई। उसके जहन में खुरच खुरच कर यादें अपनी मौजूदगी का अहसास दिलाने लगीं। उसकी बददुआ पर सरजी कैसी खलनायकी हंसी हंसे थे। रानी के दिल-ओ-दिमाग पर यह बात कहीं बैठ गई थी कि चूहे का सरजी के जीवन में अवश्य ही कोई ना कोई विशेष स्थान बनेगा। सलोनी उसके दिमाग को मंथने लगी थी...

उस दिन घर में उसे कुछ ऐसी आवाजें सुनाई दी थीं...

"साली !... हरामखोर !..."

"मैं तो कहता हूं... क्या कहा...?... आवाज नहीं आ रही?... ठहरो मैं जरा खिड़की के पास जाता हूं... ये साले मोबाइल भी मनमानी करते हैं... हां... अब बोलो... आवाज साफ हो गई है... वोह मोटी भैंस हो गई है... बकती है... धंधा खूब चल रहा है ... मुहल्ले भर के लोग उसी की परचून की दुकान से सौदा सुलुफ खरीदते हैं.... नहीं यार ऐसा नहीं... उसका बेटा उल्लू का पट्ठा है... काहिल-ए-आजम... मां को इस्तेमाल कर रहा है।.... नहीं भाई कितनी बार बताया कि कर्ज़ा लेने दोनों साथ आए थे।... वो मक्कार तकरीबन पांव पकड़ने ही वाली थी... वो तो मैंने ही पांव हटा लिए... मेरे तो जूते ही गंदे हो जाते।... अरे तुम फोन पर हो या फिर कट गया?...ये साले फोन भी..."

"सर यह बताइए कि अब करना क्या है?"

"करना क्या है... पकड़ो साली को। अरे भाई अढ़ाई लाख का मामला है।... नहीं देती तो पुलिस को डालो बीच में। पुलिस अढ़ाई के पांच निकलवा लेगी। तब होश आएंगे ठिकाने... हरामजादी के। नहीं नहीं वहां की पुलिस नहीं... यहां का इन्स्पेक्टर मेरा जानने वाला है... हां, मैं उससे बात करता हूं। बड़ा जालिम और रिश्वतखोर है।. .. तुम फोन बन्द करो..."

"इन्स्पेक्टर साहब, यार तुमको इससे क्या मतलब कि कितना बड़ा बैंक है? तुम अपना हिस्सा उसी से हासिल कर लेना। हां! मेरी तरफ से खुली छूट है।"

"फिर तो मैं सर, अगले हफ्ते ही आपके पैसे निकलवा लूंगा।"

"अब मियां, इतनी भी डींग ना मारो! हमने पूरी कोशिश करके देख ली है। तुमको कोई सख्त कदम उठाना होगा। आसानी से मानने वाली नहीं है।"

"...अरे क्या बात करते हो। चूड़ियां पहन रखी हैं क्या तुमने?"

"नहीं सर, हम तो सीधे उसके घर पहुंच गये थे। बाहर निकाला उसे... डराया, धमकाया। मगर वो तो पैर ही पकड़ने लगी। कहती है कि कर्ज़ा ये कह कर लिया था कि साल भर बाद उतारना शुरू करेंगे। अभी तो छः हफ्ते ही ऊपर हुए हैं और बड़े साहब पीछे पड़ गये हैं। मैनेजर को रोज रोज भेज देते हैं। ऐसा लगता है जैसे उसके पास और कोई काम ही नहीं। रोज मेरे घर आकर बैठ जाता है। मैं तो उसके आने से ही डर जाती हूं। उसकी नजर अच्छी नहीं है इन्स्पेक्टर साहब!"

"ओए सुन जनानी। मेरी तरफ देख... मेरी नजर कैसी है? मैं तो तुझे ऐसा पेलूंगा कि तू जिन्दगी भर देखती ही रह जाएगी।"

इन्स्पेक्टर ने वापिस आकर साहिबजी को पूरी रिपोर्ट दी अपनी पहली मुलाकात की। जनरल मैनेजर साहब को प्रभावित करने के लिये उसने एक एक डॉयलॉग को कई-कई बार दोहराया।

इन्स्पेक्टर साहब पहली ही मुलाकात में आने वाले कल का

प्रोग्राम बना बैठे थे। सलोनी की टखने तक चढ़ी गुलाबी शलवार में से मोटी-मोटी गोल पिंडलियां झांक रही थीं–वो भी गुलाबी गुलाबी। पैर मोटे मोटे गद्देदार डबल रोटी जैसे; मगर खुरदरे खुरदरे। मोटे मोटे नाखून; गहरी लाल नेल पॉलिश–शायद साल भर पहले लगाई थी। अब दीवार के चूने कि तरह जगह जगह से उखड़ी हुई थी। लगता था कि इन पैरों को जीवन में कभी भी झांवें से नहीं रगड़ा गया हो। टेढ़े मेढ़े नोकीले मैल भरे मोटे मोटे नाखून।

इन्स्पेक्टर ने बहुत बारीकी से 'सर जी' का काम किया था। उसको खूब अच्छी तरह से निहार लिया था। इन्स्पेक्टर जब चलने लगा तो सलोनी ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा, "इन्स्पेक्टर जी दया करो। हम गरीब लोग हैं। गरीबी से तंग आकर कर्ज़ा लेना पड़ गया। मैनेजर साहब ने तो खुद ही कहा था कि बैंक से पैसे लेकर कोई धंधा शुरू कर लो। बड़े साहब से भी उन्होंने ही मिलाया था। अब सब भूल गए कि मैंने धंधा चल जाने पर पैसा वापिस करने का वादा किया था।"

"अरी, धंधे की औलाद, अगर वो धंधा नहीं चलता तो कोई और धंधा कर ले!"

"साबजी, थक गई हूं।"

"अभी से थक गई है... ? अभी तो तुमने मुझे देखा ही नहीं।"

"देख तो रही हूं, इन्स्पेक्टर साबजी विनती भी कर रही हूं। और क्या करूं?"

"बेटा कहां है तेरा?"

"अन्दर घर में बैठा है। बुरी तरह से डरा हुआ है।"

"घर में क्यों बैठा है? काम पर क्यों नहीं जाता?"

"मां, यह इन्स्पेक्टर जी क्यों आए हुए हैं?..." इतने में बेटे ने बाहर से आते हुए पूछा।

"अरे यह तो बाहर से आ रहा है। तू तो कह रही थी कि घर के भीतर बैठा है।"

"साबजी जमाना ही ऐसा है। बेटों को घर में ना बैठाएं तो हमको तो गिद्ध नोच डालें।"

"तो तू झूठ बोल रही थी... ! मुझसे झूठ? जानती नहीं है, पुलिस का इन्स्पेक्टर हूं... कमरे में बन्द करके सब उगलवा लूंगा... समझी के ना...!"

"सरजी, आप समझे नहीं... अपनी इज्जत बचाने के लिए बेटे का झूठ बोलना पड़ता है।"

"तू क्या समझती है बेटे से मैं डर जाऊंगा? उस पर कोई भी इल्जाम लगा कर चार दिन के लिए हवालात की हवा खाने भेज दूंगा। अच्छा अब बता सरजी के साढ़े तीन लाख कब दे रही है?"

"इन्स्पेक्टर जी, साढ़े तीन नहीं अढ़ाई लाख...।"

"तो फिर मेरा हिस्सा कहां गया...?" कम से कम एक लाख तो मेरा भी बनता है ना। चल अब जल्दी जल्दी बता कि कब उतार रही है कर्ज़ा... या फिर उतारूं तेरी गुलाबी शलवार?"

"हाय हाय, इन्स्पेक्टर जी, कैसी बातें करते हो? भला शलवार उतारने से क्या पैसे मिल जाएंगे?"

"बहुत जबान चलाती है। जबान काट कर गुलाबी शलवार में डाल दूंगा।"

"इन्स्पेक्टर जी मेरी गुलाबी शलवार के पीछे क्यों पड़ गये हो? मैं कह तो रही हूं थोड़ा टैम दे दो। मैं एक एक पैसा उतार दूंगी।"

"चल मैं अब चलता हूं... दो दिन का और टैम दिया... बेटे को काम पर भेजना ना भूलना...।"

❐❐

"सर जी बड़ी दबंग जनानी है। बराबर से जबान चलाती है। मैंने बहुत कोशिश की रुपयों की बात करने की पर घुमा फिरा कर चक्कर देने की कोशिश करती रही।"

"इन्स्पेक्टर अगर तुमको चक्कर देने की कोशिश करती है तो इसका मतलब हुआ, मैनेजर सच ही बोल रहा था कि काम की बात पर आने ही नहीं देती।"

"सरजी वो मोटी भैंस अपना नाम सलोनी बताती है।"

"अरे भई कभी जवानी में रही होगी सलोनी... वैसे अब क्या उम्र होगी उसकी?"

"यही कोई तीस पैंतीस सर जी..."

"ये कैसे हो सकता है... बीस का तो बेटा ही है उसका।"

"चलिये चालीस समझ लीजिये सर जी।... मगर क्या गदराई हुई है सर जी!"

"तुम्हारा दिमाग चकरा गया लगता है इन्स्पेक्टर जो मुझसे ऐसी बातें कर रहे हो। कभी किसी की हिम्मत नहीं हुई मुझ से इस तरह बात करने की।"

"सरजी आप ही तो उसकी उम्र पूछ रहे थे। मैंने तो बस थोड़ी डिटेल में बता दी।"

"काम की बात करो इन्स्पेक्टर–पैसों का क्या हुआ?"

"सरजी समय मांग रही है, यानि कि वक्त मांग रही है। मैंने दो दिन का कह दिया है।"

"क्या पूरे पैसे उतार देगी?... तुमने मांगे कितने हैं?"

"वही जो आपने कहे थे।"

"अपना हिस्सा मुझसे मत मांगना। बैंक ऐसे वैसे काम नहीं करता।"

"सरजी बैंक तो आप खुद ही हो। यहां कौन बैठा है जो आपसे पूछ-गछ कर सके।"

"ध्यान से बोला करो इन्स्पेक्टर... जो मुंह में आता है बोल देते हो। तुम जैसे लोगों के मुंह पर भी तो प्लास्टर लगाना होता है ना... वो काम हमारा बैंक नहीं करता। हमें आप ही फैसला करना होता है कि किसको क्या देना है... भई काम तो निकालना होता है ना।"

"सरजी मेरा हिस्सा तो आप ही को देना होगा। उस कमीनी से तो आप ही के पैसे निकलवाने मुश्किल लग रहे हैं।"

"अरे भाई तुमने मांगे तो होते।"

"सरजी, रोने पीटने लगी। मेरे भी पांव पकड़ने लगी। मैंने तो एक ठुड्डा भी मारा। गिर पड़ी। मोटी मोटी पिंडलियां केले के तने

की तरह, चिकनी चिकनी गोल गोल, गुलाबी शलवार के बाहर झांकने लगीं।"

"इन्स्पेक्टर, तुम मजे लूट कर आए हो।"

"नहीं नहीं, सरजी भगवान कसम, नहीं।"

❐❐

"अरे भाभी जी, आप!.. नमस्ते।" रानी को बैठक की ओर आते हुए देख कर इन्स्पेक्टर खड़ा हो गया। "अच्छा सर जी, मैं चला, रिपोर्ट देता रहूंगा।"

रानी ने चेहरे पर मुस्कुराहट लाए बिना नमस्ते का एक सपाट सा जवाब दिया और सर जी के हाथ में घर का फोन थमाते हुए कहा, "लीजिये, आपके मैनेजर का फोन है।"

पति देव ने फोन हाथ में लेते हुए अपना आदेश भी सुना दिया, "रानी, नाश्ता लगवा दो आज बैंक जल्दी जाना है।"

"आपको तो रोज ही जल्दी जाना होता है और देर से वापिस आना होता है... वैसे यह इन्स्पेक्टर रोज रोज क्यों आकर हमारे घर में बैठ जाता है। पुलिस वालों का इस तरह हमारे घर आना अच्छा नहीं लगता। आप इसे बैंक में ही बुलाकर मिल लिया कीजिये। मेरे घर को पवित्र ही रहने दीजिए।"

"तुम कहना क्या चाहती हो, कि बैंक अपवित्र होता है ?"

"होता नहीं, बना दिया जाता है। जैसे अधिकारी होते हैं वैसा ही वातावरण बनता है।... आप शायद भूल गये कि मैनेजर अभी भी फोन लाइन पर मौजूद है।"

"तुम बाहर जाओ तो बात करूं।" रानी ने पति की ओर शक-भरी नजरों से देखा और कमरे से बाहर निकल गई।

खाने के कमरे में मेज पर चीजें रखने की आवाजें आने लगीं। कबाब और गरम-गरम ऑमलेट की खुशबू फैल गई। " सरजी, आ जाइए नहीं तो परांठे ठण्डे हो जाएंगे।"

सरजी अपने मैनेजर से बात खत्म करने के बाद ही आए और आते ही बोले, "अरे भई, सूजी का हलवा कहां है ?"

"आज परांठे बनवाए थे, इसलिये सूजी का हलवा नहीं बनवाया। मीठी सिवइयां बनी हैं।"

"चलो ठीक है। आज इस समय तो चल जाएगा मगर रात के खाने पर बनवा लेना। हां भुने कीमे के साथ साथ बकरी के गोश्त का स्टू भी बनवाना। पूरी के साथ अच्छा लगेगा।"

रानी सुनती रही। हां हां करती रही और सोचती रही कि हार्ट अटैक के बाद से डॉक्टर ने सादा खाना खाने की हिदायत की थी; वजन कम करने को कहा था; सिगरेट बिल्कुल बन्द करने को कहा था; वर्ज़िश और सैर करने की ताकीद की थी। मगर सरजी को तो अपनी मनमानी करनी होती है। किन्तु रानी हिम्मत नहीं जुटा पाई कि पति को याद दिला सके।

सरजी को तो यह भी पसन्द नहीं था कि उन्हें कोई नाम लेकर पुकारे। पहली बार ही रानी के ऐसा करने पर उन्होंने पत्नी को झिड़क दिया था। फिर रानी तो उम्र में भी अपने पति से दस बारह साल छोटी थी। कई बार तो लोगबाग उसे सरजी की बेटी ही समझ लेते थे।

सरजी को इस बात का भी खासा गुरूर था कि उनकी पत्नी उनसे इतनी छोटी है। यार दोस्तों से मूंछों पर ताव देकर कहते, मियां इतनी छोटी लड़की से शादी करने के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए। बेचारी छोटी लड़कियां, शादी के बाद बूढ़े पति में अपना जीवन-साथी, अपना दोस्त ढूंढते-ढूंढते अपना पूरा जीवन होम कर देती हैं। उसका अपना अस्तित्व तो कुचला जाता है; किन्तु उसका जीवन अपने बूढ़े पति को कभी बाप की तरह तो कभी मालिक की तरह देखभाल में गुजर जाता है। रानी घर की रानी तो बन गई, किन्तु कभी भी सर जी के सपनों की रानी नहीं बन पाई।

सरजी तो शायद सपने देखते ही नहीं थे। खड़ा खेल खेलते थे। रात को शराब के नशे में डूबे हुए जब आते तो रानी को अवश्य आवाज लगाते—जूते उतारने के लिये। बस फिर लुढ़क जाते बिस्तर पर। सारा घर जैसे शेर की गरज से गूंजने लगता। उन धुआंधार खर्राटों में रानी को नींद ना जाने कैसे आती होगी।

खर्राटों से भी कहीं अधिक रानी शराब की बदबू से परेशान रहती। आवाज का इलाज तो हो सकता है—कान में रुई ठूंस कर। मगर नाक में रुई ठूंसने से तो दम घुटने का अंदेशा रहता है। हालांकि रानी का दम तो वैसे ही घुटता रहता था सरजी के सामने।

सुबह सवेरे दरवाजे पर घण्टी बजी। रानी दौड़ी दरवाजे की ओर ताकि घण्टी के शोर से सर जी की नींद में खलल ना पड़े। मगर उसके दरवाजे तक पहुंचते पहुंचते सर जी की दहाड़ सुनाई दे गई, रानी, मैनेजर होगा। उसको बैठक में बिठा दो और चाय भिजवा दो हम दोनों के लिए।"

"सर जी, बड़ा गजब हो गया। इन्स्पेक्टर तो दिन रात सलोनी के घर के चक्कर लगाता रहता है। ना मालूम क्या घुट रहा है दोनों में।"

"तुमको कैसे मालूम है कि इन्स्पेक्टर रोज रोज चक्कर लगा रहा है?"

मैनेजर हड़बड़ा गया, संभलते हुए बोला, "आते जाते लोग तो देखते हैं ना सरजी। वही बात को हर तरफ फैलाते हैं।"

"यार मैंने तो सुना है कि तुम पैसा लाने के बजाए उल्टे उसे पैसे दे आए हो—उस मोटी भैंस को।"

"सर जी ऐसी कोई खास मोटी भी नहीं है...गद्दर अनार है !"

"तुम तो उसके प्रेम के जाल में फंसे हुए लगते हो।"

"परेम वरेम क्या सरजी, दो चार बार दिल बहला लेने को प्रेम थोड़े ही कहते हैं। प्रेम तो मैं अपनी पत्नी से ही करता हूं।"

"तभी पराई औरतों की चौखटें चाटते फिरते हो।"

"नहीं सरजी, ऐसा नहीं है। सलोनी जैसी मिले तो...."

"सुनो... उठो... और बाहर निकलो यहां से। यह शरीफों का घर है। यहां ये गुण्डागर्दी की बातें नहीं होनी चाहिये। " सरजी ने देख लिया था कि रानी करीब ही खड़ी गुलदान में फूल लगा रही थी। फट से बातों का रुख ही बदल दिया सर जी ने। बड़े उस्ताद हैं सर जी। मैनेजर और इन्स्पेक्टर तो उनके सामने कुछ भी नहीं।

मैनेजर के बाहर जाते ही सर जी ने आवाज दी, "रानी जरा घरवाला फोन देना तो।"

"घरवाले फोन से तो आपको गंदे लोगों को फोन भी नहीं करना चाहिये। फोन भी अपवित्र हो जाता है।"

"अरे भई अगर तुम इतनी बड़ी संन्यासिन हो गई हो तो पहन लो भगवा चोला, चिमटा बजाती हुई चली जाओ हरिद्वार।"

रानी चुप रही। वो समझदार है; पति से बहस में नहीं पड़ना चाहती। वह अपनी बात कहने से चूकती भी नहीं मगर लड़ाई भी नहीं करती। इसीलिये मन ही मन सर जी दिखाने को तो शेर बने रहते हैं मगर असल में रानी से रौब खाते हैं।

जैसे ही रानी कमरे से बाहर निकली, सरजी ने मोबाइल से इन्स्पेक्टर को फोन मिलाया। सिगनल कमजोर थे... भांय-भांय की आवाज हो कर कॉल बन्द हो गई। "ये.... मोबाइल भी मनमानी करते हैं।" सर जी ने खींचकर मोबाइल दीवार पर दे मारा। सामने दीवार पर रानी और सरजी की बड़ी सी फोटो लगी हुई थी। मोबाइल फोन सीधा जा कर फोटो में सरजी के मुंह से टकराया। शीशा मकड़ी के जाले की तरह चकनाचूर तो हुआ मगर वहीं चिपका रहा, नीचे नहीं गिरा। साथ में रानी की तस्वीर वैसे ही मुस्कुराती रही जैसे कह रही हो–'सरजी, अभी तो फोटो पर अटैक हुआ है, आइन्दा क्या पता... !'

रानी सब समझती थी कि मैनेजर, इन्स्पेक्टर और उसका अपना पति मिलकर कैसी कैसी बातें करते हैं। पति का संस्कार नाम की चिड़िया से कुछ भी लेना देना नहीं था। जंगली पौधों की तरह उसका जन्म हुआ था और वैसे ही जैसे तैसे बड़ा हो गया था। तिकड़मी था, इसलिये बी.ए. पास करते ही बैंक में किसी भी तरह नौकरी पा ली। अपने अफसरों को खुश रखना आता था; इसलिये तरक्की हो जाती। अब ऐसे शहर में तबादला हो गया था जहां के लोग पैसे वाले थे। उनका ईमान भी पैसा ही था। पुलिस वालों के तो यहां मजे थे।

मजे तो सरजी के भी थे। बैंक से एडवांस देते और अपनी चुटकी अपने अकाउंट में जमा करा देते। करोड़ों के मालिक बन गए थे, बैंक को चूस रहे थे पर सलोनी के ढाई लाख रुपए वसूलने के लिए जान लगाए दे रहे थे। कभी मैनेजर को और कभी इन्स्पेक्टर को बार बार उसके घर भेजते और मजे ले लेकर उसकी पिंडलियों उसके बदन के रंग, उसके उलझे हुए बालों के बारे में पूछते। गुलाबी शलवार के जिक्र से झुरझुरा जाते...

ये पूरी कोशिश करते कि ये दोनों वहां ज्यादा देर तक रुकने न पाएं। टाइम का पूरा हिसाब मांगते...और ये भी कहते जब बेटा घर में हो तभी जाया करो...मगर पकड़ो उसे गर्दन से...हराम का पैसा नहीं है। बैंक को क्या हिसाब दिया जाएगा...

"देखो भई इन्स्पेक्टर, अगर ये केस तुमसे नहीं संभल रहा तो जवाब दे दो मैं किसी और को लगाऊं...।"

इन्स्पेक्टर आया हुआ माल कैसे जाने देता। जल्दी से बोला... "सरजी आपका कहा मानता हूँ। ले जाता हूँ और भी सिपाही उसके घर और वही काम करता हूँ जो चूहे वाला आपका आइडिया है..."

"अरे इन्स्पेक्टर उस समय तो मैं भी वहां होना चाहूँगा...तमाशा देखूंगा..जब उसके शरीर का एक एक अंग अलग अलग कांपेगा... कुरते से जवानी बाहर निकल पड़ेगी..."

"जी सरजी, तो रख लेते हैं ये प्रोग्राम आज से दो दिन के बाद। सब अफसरों की छुट्टी होगी...कोई सुनने वाला भी नहीं होगा...।"

उन दो दिनों के बीच इन्स्पेक्टर दो बार उसके घर हो आया। बेटे को बाहर भेजकर...यही लालच देता की तेरे पैसे माफ करवा दूंगा सरजी से कह कर...

और आज दो दिन बाद सरजी को भी साथ देखकर खुश हो गई सलोनी कि सरजी पैसे माफ करने आए हैं...

मगर साथ में तो दो लेडी कॉन्स्टेबल भी थीं। उन लोगों ने पहुँचते ही एक गन्दी सी गाली देकर कहा कि सरजी के पैसे खाकर बैठी है, देख कैसी जवानी फूट रही है। अभी निकलवाते हैं तुझसे पैसे...

सलोनी भयभीत हो गई। हाथ पैर जोड़ने लगी कि थोड़ा और टेम दे दिया जाए. एक लाख उसने जोड़ लिए हैं...बेटा गया हुआ है कहीं से उधार मांगने। सरजी तो खुश हो गए, चलो अच्छा हुआ बेटा नहीं है यहाँ...सरजी उसको उसकी काली कोठरी में ले गए...

"सरजी यह आप क्या कर रहे हैं... दया करो सर जी... मैं तो इन्स्पेक्टर और मैनेजर को आपके नाम से डराया करती थी। वो दोनों हरामी ठठ्ठा मार-मार कर हंसा करते थे। एक दूजे को आंख भी मारा करते थे।.... नहीं-नहीं सरजी आप तो मेरे बाप जैसे हैं।... कैसी गुलाबी शलवार?... सरजी यह तो लाल थी... रंग उड़ गया है..."

"रंग तो अब तेरा उड़ेगा, ऐसे थोड़े ही छोड़ दूंगा।"

"नहीं, नहीं... नहीं... सरजी... सरजी...."

सलोनी की हाय-हाय का शोर बाहर लाइन में लगे सब सुनते रहे... ढीठ मुस्कुराहटें उनके चेहरों पर दिखाई दे रही थीं... अपनी अपनी बारी की राह देख रहे थे...

सर जी सीना फुला कर निकले ही थे कि दोनों भैंस जैसी मोटी पुलिसवालियां लाइन तोड़कर अन्दर घुस गईं और अपनी ड्यूटी बजाने लगीं। उसकी गुलाबी शलवार को खींचकर दोनों पाएंचे नीचे से बांध दिए और ऊपर से नेफे के पास से हाथ अन्दर डालकर चूहा अन्दर छोड़ दिया और शलवार ऊपर से कसकर बाँध दी। सलोनी को उस वक्त तक कुछ समझ में नहीं आया जब तक चूहे ने उसकी शलवार में हर ओर दौड़ना नहीं शुरू किया। वहां सलोनी की चीख पुकार सुनने वाला कोई नहीं था। सब एक आवाज यही कह रहे थे, "अब निकाल पैसे कहाँ छुपाकर रखे हैं"... वो तड़प रही थी और सब हंस रहे थे... उसकी आवाज आकाश से टकराती धरती पर फैल कर गुम हो जाती, हाथ उसके बंधे हुए थे...औरतों को औरत होने का वास्ता देती पर वहां तो सब दरिन्दे थे... तमाशा देखने आए थे पैसा निकलवाने के नाम पर...

सरजी घबराकर उठकर बैठने लगे, इधर उधर टटोलने लगे कि कहीं चूहा उनके पायजामे के अन्दर तो नहीं घुस गया... सर्दी लग कर बुखार चढ़ना शुरू हो गया था। एड़ी दर्द और जलन से फटी जा रही थी और सूज भी गई थी... डाक्टर बुलाओ, डाक्टर बुलाओ ! पागलों की तरह चीख रहे थे सरजी.... अरे रानी मेरे पायंचे का ख्याल रखना कोई नीचे से बांध ना दे...

●

दरारें

✦ **अरुण सभरवाल, लंदन**

सुबह से ही उसका मन उखड़ा-उखड़ा था। बाईं आँख भी फड़क रही थी। वह खुद ही नहीं जानता था कि उसे हुआ क्या है। किसी काम में चित्त ही नहीं लग रहा था। एक अजीब-सी बेचैनी उसके भीतर घर कर गई थी। ऐसी तो कोई विचलित कर देने वाली समस्या भी नहीं थी, फिर भी न जाने क्यों सर्जरी में उसके सहकर्ता बार-बार पूछ रहे थे, ''डॉक, आर यू ऑल राइट?''

जैसे-तैसे सर्जरी समाप्त करके वह अपने घर पहुँचा। रात के आठ बजे थे। मन ठीक न होने से भूख ही मारी गई थी। जबर्दस्ती एक प्याला चाय के साथ ब्रेड खाकर वह सोने चला गया। काफी देर तक बिस्तर पर करवटें पलटता रहा, फिर जाकर नींद आई। रात का तीसरा पहर रहा होगा। वह गहरी नींद में था। अचानक फोन की घंटी बजी। वह हड़बड़ाकर उठा। उसे कुछ समझ नहीं पड़ा। नींद में वह इधर-उधर हाथ मारता रहा। आखिरकार फोन उसकी पकड़ में आ ही गया, मगर तब तक फोन बंद हो चुका था।

''साले चैन से सोने भी नहीं देते। वक्त-बेवक्त फोन कर मारते हैं। होगा साला कोई सिरफिरा...।''

उसने सोचा, क्यों न बाथरूम में हाजिरी लगा ली जाए। दुबारा उठना नहीं पड़ेगा। बाथरूम से आकर उसने कॉलर आई.डी. पर नज़र मारी। स्क्रीन पर कोई नंबर नहीं था। वह निश्चिंत होकर बिस्तर में घुसा और एक बार फिर सोने का प्रयास करने लगा।

अभी दुबारा आँख लगी ही थी कि फोन फिर घनघना उठा। उसने बड़े बेमन से फोन उठाया तो उधर से छोटे भाई विजय की बेटी भावना की घबराई-सी आवाज़ आई, ''हैलो...बड़े पापा?'' सुनते ही उसके कान खड़े हो गए।

''भावना? इतनी रात को?? क्या बात है बेटी???''

''बड़े पापा, मैं भावना,...पापा विंस्टन अस्पताल के आई.सी.यू. में दाखिल हैं। आप जल्दी से आ जाइए, प्लीज़।''

''घबराओ नहीं बेटी, मैं जल्दी से जल्दी पहुँचने की कोशिश करूँगा।''

इस खबर को सोखने में डॉक्टर विवेक को कुछ समय लगा। उसके अंदर अँधेरा छा गया। नींद काफूर हो गई। लैंप जलाकर कमरे में प्रकाश किया। घड़ी की सुइयों पर नज़र डाली। रात के तीन बजे थे। हृदय और मस्तिष्क पर जैसे भूकंप के झटके लगे इस खबर से। विजय, उनका छोटा भाई। माँ-बाप के जाने के बाद से उसकी परवरिश उन्होंने ही की थी। बिल्कुल अपने बेटे की तरह। उनका तन-मन थरथरा उठा। भीतर की बेचैनी और छटपटाहट अब न ही उसे सोने दे रही थी न कुछ करने। वह हाथ जोड़कर प्रभु से प्रार्थना करने लगा, ''हे प्रभु! मेरे भाई को कुछ दिन और बख्श दे। वह मेरा इंतज़ार कर रहा है।''

विवेक को कुछ पल और लगे अपने को समेटने में। सुबह होने तक वह विजय के बारे में सोचता रहा। सुबह आई...खामोश और सुन्न उसकी आँखों के सामने पिछली ज़िंदगी के दृश्य अटक गए...वह भयानक दिन जब उनका परिवार युगांडा में सबकुछ छोड़कर एकमात्र ब्रिटिश पासपोर्ट के सहारे यू.के. में बसने चला आया था। पिताजी तो उन्हीं दंगों का शिकार हो गए। सबसे बड़ा होने के नाते परिवार का भार विवेक के कंधों पर आन पड़ा। परिवार के पाँव मैनचेस्टर में जमाए।

अगले दस सालों में बहन की शादी की व विजय को सफल डॉक्टर बनते हुए देखा।

साथ ही साथ वह स्वयं भी पढ़ाई करता रहा। बहन और भाई सबको लायक बनाकर उसे अपनी ओर ध्यान देने का अवसर मिला वरना तो वह कतई भूल चुका था कि उसका अपना भी कोई जीवन है, जिसे वह जीना चाहता है। विवेक अमेरिका जाना चाहता था; अत: माँ की जिम्मेदारी विजय पर छोड़कर वह अमेरिका में जा बसा।

सुबह का सूरज उसकी खिड़की तक चढ़ आया...उसने सेक्रेटरी को फोन करके अपनी फ्लाइट बुक करवाई। करीब दस मिनट बाद ही उसका फोन आ गया। ''डॉक, आज शाम को तुम्हारी न्यूयॉर्क से मैनचेस्टर की उड़ान बुक हो गई है जो तुम्हें कल सवेरे पहुँचा देगी।''

मैनचेस्टर पहुँचते ही वह सीधा टैक्सी लेकर अस्पताल पहुँचा। उसे देखते ही विजय की आँखों में चमक की लहर दौड़ गई। कुछ क्षण बाद आँखों में नमी तैरने लगी। उसके माथे पर दो छोटे-छोटे से बल उभरे। विवेक ने उसका हाथ दबाकर ढांढस दिलाया। विजय मशीनों से लदा-बिंधा पड़ा था। विनय ने उसका चार्ट पढ़ा तो पाया कि उसके जिगर और फेफड़े फेल हो चुके थे। उसे टर्मिनल न्यूमोनिया हो गया था और वह नीम कोमा में जा चुका था। सभी जानते थे कि अब दुआएँ भी नाकाम रहेंगी। झुर्रियों ने विजय की सूरत को डरावना बना दिया था मानो शरीर निचुड़ चुका हो। ज़िंदगी ऐसे खिसक रही थी जैसे आस-पास फैली झाड़ियों की छाया शाम होते घर की दीवार पर से सरकती हुई गायब होने लगती है। विवेक लाचार-सा विजय की इस छवि को विक्षुब्ध निहारता रहा। उसका भाई शनै:-शनै: जग की भीड़ को पीछे छोड़ रहा था।

शायद विवेक के आने की ही राह तक रहा था। उस रात तीसरे

पहर विजय चुपचाप चल बसा। विवेक नि:शब्द आँसू टपकाता रहा। बहन के आ जाने से उसमें इतनी हिम्मत आई कि वह विजय के सभी संस्कार शांति से निबटा सका। पिता की मृत्यु से भावना एकदम सुन्न रह गई। उसकी बुआ ने बहुत कोशिश की कि वह अपना दु:ख बाहर निकाले। बहुतेरा सहलाती-पुचकारती रहीं, इस उम्मीद से कि संवेदना के किसी स्पर्श से वह पिघल जाए पर भावना गठरी बनी रही।

चौथे वाले दिन उसकी माँ शीला झक सफेद साड़ी में लिपटी जब उसके सामने आई तो वह सहसा चीख पड़ी, '' पापा को मम्मी पर सफेद कपड़ा कभी नहीं भाया। उन्हें सफेद रंग पसंद ही नहीं था।'' वह माँ से लिपटकर रोने लगी।

शीला ने उसे थामकर गले से लगा लिया पर उसकी आँखें कोरी ही रहीं। बेटी का दु:ख भी उसके हृदय में जलती आग को शांत न कर सका। मन ही मन वह विजय से कब की विदा ले चुकी थी। उसका प्यार बेटे नकुल की मौत के साथ ही चिता पे चढ़ चुका था। वह सोचने लगी कि क्यों सब ऐसे व्यक्ति के लिए रो रहे हैं, जिसने अपने ही हाथों से अपनी दुनिया तबाह कर दी। बेटे को 'ही मैन' बनाने के चक्कर में उसे अकाल मौत के मुँह में धकेल दिया। क्या सपने थे विजय के? कभी उसे फौज में भेजने की योजना बनाई। शुक्र हुआ वह चुना नहीं गया। सोलह साल का हुआ तो उसे मोटरसाइकिल ले दी। कच्ची उम्र। कितना रोज दौड़ता था? दो बार बाल-बाल बचा। शीला ने कितना समझाया पर विजय ने हँसी में उड़ा दिया। होनी उसके सिर पर खेल रही थी। लाख मना करने पर भी खुद एक बाप ने बेटे की ज़िंदगी दाँव पर लगा दी।

नकुल का 18वाँ जन्मदिन था। खूब धूमधाम से मनाया मगर सरप्राइज़ के नाम पर उसे तेज रफ्तार गाड़ी की चाभी पकड़ा दी शीला से बिना पूछे। विजय जैसे उसे चिढ़ाना चाहता था। शीला तिलमिला कर रह गई। छ: महीने ही बीते थे कि एक रात शेखी में, दोस्तों के साथ घर लौटते समय, मोटर वे पर खूब तेज कार चलाई और दुर्घटना में मारा गया, संग दोस्तों को भी ले डूबा। कैसे माफ कर दे शीला? उसकी गोद उजाड़कर क्या मिला विजय को? पुरुषत्व और रईसी की झूठी शेखी? एक माँ के तार-तार आँचल को तो झाँककर भी ना देखा। अपराधबोध से खुद के जर्जर हुए दिल को सिगरेट और शराब में डुबोकर कमरे में दुबककर बैठा रहा। कभी शीला के दिल के टुकड़े तो न गिने? उस आदमी के लिए वह क्या आँसू बहाए?

अभी जख्म पर पपड़ी जमी भी न थी कि कच्ची उम्र में भावना की शादी तय कर दी। वही सामंती सोच। शीला उसे बेटे ही जगह देखने लगी थी। उसे पढ़ा-लिखा कर स्वावलंबी बनाना चाहती थी, पर...!

भावना के ससुराल जाने के बाद शीला ममता का गला घोंटकर अकेली बिलबिलाती रही। विजय की शराब और इकलदुसापन उनके बीच की दरार बन गया। शीला जाए तो कहाँ जाए। धीरे-धीरे उसने घर से बाहर की दुनिया में अपने को रमा लिया। सहेलियाँ, किट्टी पार्टियाँ, शॉपिंग और गपशप, यही थोथी ज़िंदगी।

मातम की अवधि समाप्त हो चुकी तो शीला ने विवेक से कहा, ''भाई साहब, अमेरिका जाने से पहले आप विजय के कागजात छाँट दें प्लीज़!''

''हाँ-हाँ, क्यों नहीं, शीला तुम और मैं मिलकर छाँटते हैं।''

''नहीं-नहीं...मैं नहीं। मैंने तो इनके कागजातों को हाथ भी नहीं लगाया और न ही अब लगाऊँगी। वैसे भी इन्होंने किसी को कमरे में जाने ही नहीं दिया कभी।''

''ठीक है, मैं भावना को बुला लूँगा। कागजात छाँटते वक्त आप दोनों में से एक का होना बहुत ज़रूरी है। बाद में तो आप लोगों को ही सब सँभालना है। अब चलता हूँ।''

अगले दिन जब विवेक विजय के घर जाने लगा तो बहन ने दबी जुबान से समझाया, ''विवेक, स्थिति की नज़ाकत को ध्यान में रखना। ऐसी कोई बात न हो कि जिससे शीला को ठेस पहुँचे। हम सबने विजय को पल-पल फिसलते देखा है। पर विकट से विकट स्थिति में भी वह शांत बना रहा। अशांति में शांति की कला सिर्फ उसे ही आती थी। उसका मान रखना चाहिए हम सबको, आगे तुम समझदार हो।''

विवेक के वहाँ पहुँचते ही शीला ने कमरे की चाभी उसे थमा दी। कमरा खोलते ही वह भौंचक्का, नि:शब्द रह गया। एक अजीब-सी गंध थी जो सिर पर चढ़ गई। कमरा रिहाइशी कम, घूरा अधिक लग रहा था, मानो बरसों से सफाई न हुई हो। कमरे का फर्श तक नहीं नज़र आ रहा था, मानो बरसों से सफाई न हुई हो। कमरे का फर्श तक नहीं नज़र आ रहा था। चारों तरफ मेडिकल जर्नल और अधखुली चिट्ठियों के ढेर लगे हुए थे जिन पर परतों धूल जमी थी। यहाँ-वहाँ शराब की खाली बोतलें आपस में भिड़ रही थीं। कहीं काई से भरे चाय के प्याले घूर रहे थे। पलंग पर किताबें ऐसे पड़ी थीं मानो कई वर्षों से किताबें ही उसकी हमबिस्तर रही हों।

ऐसा नहीं था कि शीला सफाईपसंद नहीं थी। सदा टिप-टॉप रहती थी। दुनियाभर के शौक थे। उसके पास पति के लिए कोई टाइम नहीं था।

''नमस्ते बड़े पापा!'' भावना की मीठी आवाज़ ने उसकी सोच की शृंखला तोड़ी।

''आओ बेटा, तुम्हारा ही इंतज़ार था।'' विवेक के स्वर में किंचित उपालंभ था, परंतु भावना भी उसी तरह स्तब्ध रह गई। एक गहरी साँस लेकर बोली, ''अब समझ में आया कि यह कमरा पापा ने नो एंट्री जोन क्यों बना रखा था।'' इतना कहकर वह फूट-फूट कर रोने लगी।

विवेक ने उसे दिलासा देते हुए कहा, ''ऐसे काम नहीं चलेगा। तू तो बहुत बहादुर बेटी है। हौसला रख। मैंने सभी कागजात के

अलग-अलग फोल्डर बना दिए हैं। मेडिकल संबंधी सभी कागज मैं देख लूँगा। तू बाकी सँभालकर रख। हाँ, कुछ भी रद्दी की टोकरी में फेंकने से पहले एक नज़र सरसरी तौर पर पढ़ लेना।''

भावना 'जी' कहकर काम में जुट गई, ''बड़े पापा ये दो चेक इंश्योरेंस कंपनियों के हैं, 2006 और 2008 के। भुनाए नहीं गए हैं।'

''इन्हें अलग फोल्डर में सँभाल लो। बाद में अपनी मम्मी के हस्ताक्षर करवाके भेज देना और उन कंपनियों को स्थिति समझा देना।''

कई घंटों तक दोनों काम में लगे रहे। अचानक विवेक के हाथ एक बी.एम.जे. (ब्रिटिश मेडिकल जर्नल) लगी। उसके कोने में विजय ने लिखा था, ''आज शीला से सामना होने पर दो-चार बातें नन्हीं गेंद की भांति उछलकर घर की दीवारों के आर-पार चली गईं। बात-बात पर शीला का मुझे दोषी ठहराना मेरे सूने मन-मस्तिष्क पर हथौड़े मारता है।''

विवेक ने वह पन्ना फाड़कर चुपचाप अपनी जेब में डाल लिया। भावना अपने काम में लीन थी। आधे घंटे के बाद उसने कहा, ''भावना यह लो, पिछले रॉयल कॉलेज ऑफ सर्जन्स के निमंत्रण पत्र, इन्हें रद्दी की टोकरी में डाल देना।''

भावना ने आश्चर्य से कहा, ''पापा ने तो कभी इनका जिक्र तक नहीं किया।''

फेंकने से पहले भावना ने उन्हें जिज्ञासावश खोलकर देखा और फिर फूट-फूट कर रोने लगी।

''भावना, क्या हुआ? लाओ, मुझे दो यह कार्ड। मेरे ख्याल से तुम यह काम रहने दो।'' विवेक ने स्नेहपूर्वक कहा।

''नहीं बड़े पापा, नहीं...अब मैं बड़ी हो गई हूँ। जानना चाहती हूँ सच...पापा का सच!''

इतना कहकर वह कार्ड पढ़ने लगी। लिखा था...''मैं एक राह हीन। ...मेरी जीवनयात्रा का कोई पग-साथी नहीं...किसके साथ जाऊँ इस उत्सव में?...कई बार मन किया कि टीका लगाकर जीवन से मुक्त हो जाऊँ, पर डरता हूँ कि ज़िंदगी और मौत के बीच लटक न जाऊँ। हर बार भावना का मोह रोक लेता है। वही मेरा एकमात्र जीने का सहारा है। हफ्ते में एक बार ही सही, उसका मासूम चेहरा देखने की आस रहती है। बेटा नकुल, तू तो चकमा देकर चला गया। तेरी टी शर्ट को अक्सर छाती से लगाकर सूँघ लेता हूँ।''

एक और कार्ड निकला जो नकुल को जन्मदिन पर लिखा था, ''बेटा, आज तेरा जन्मदिन है। तेरी मीठी-मीठी याद हर पल दिन में कसक पैदा कर देती है। तेरे जाने के बाद लगता है मैं भी मर गया हूँ। जीवन सदा के लिए थम गया है। क्यों छोड़ गया तू हमें? अब न तो भावना ही कमरे में आती है न ही उसकी हँसी घुँघरू की तरह छन-छन करती कोने-कोने में बिखरती है। बड़ी हो गई है। वह नहीं जानती उसकी भोली मुस्कान मेरे दिल में बहार ला देती है...जब कभी किसी बच्चे के रोने की आवाज़ सुनता हूँ तो मुझे तुम दोनों के गालों पर बहती आँसुओं की लकीरें याद आती हैं...तेरी माँ भी मुझे छोड़ गई है।''

भावना सिसकते हुए बोली, ''बड़े पापा, कितनी बड़ी विडम्बना है। दोनों के मन की दरारें बढ़ती गईं और किसी को पता ही नहीं चला, एक ओर मम्मी अपना गम भुलाने के लिए सैर-सपाटे और किट्टी पार्टियों में मगन रहीं, दूसरी ओर पापा ने कभी अपने दुख का इज़हार नहीं किया बल्कि उनसे जूझने के लिए सिगरेट, शराब और इस कमरे का सहारा लिया। दोनों ही मुझसे प्यार करते थे मगर एक खिलौने की तरह। क्यों मुझे अपने दुख में शामिल नहीं किया?''

कमरे की उदासी असह्य हो गई। विवेक के पास भावना के प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था। रात बहुत हो गई थी। प्यार-पुचकार से उसने भावना को उठने के लिए राजी कर लिया। वह माँ के कमरे में सोने चली गई। इधर विवेक के कानों में उन टिप्पणियों के शब्द गूँजने लगे जो उसने भावना से छुपाकर पढ़े थे।

''सोने की कोशिश कर रहा हूँ...आँखों में नींद कहाँ? वर्तमान साथ नहीं दे रहा। अतीत घुमा रहा है। किसी एक्सीडेंट में मारा जाता तो कितना अच्छा होता! आज मगर ज़िंदा हूँ तो शराब के बूते पर। वही काम करती है मलहम का। हर दुख की दवा है यह कागज, कलम और किताबें! मेरे अकेलेपन के साथी!''

यही सब सोचते-सोचते उसकी आँख लग गई। सुबह फिर से नाश्ते के बाद वह दोनों काम में जुट गए। ''भावना बेटी, आज काम खत्म हो जाना चाहिए। जो कुछ कहना-सुनना होगा यह सब समेटने के बाद। सफाई के लिए अपनी मम्मी से कह देना।''

''मुझे नहीं लगता कि वह करेंगी। आपकी बात शायद मान जाएँ, कहकर देख लीजिएगा।'' शाम को चाय के समय विवेक ने शीला से अलमारी और पलँग आदि की सफाई की बात की तो उसने उपेक्षा से मुँह मोड़कर 'नहीं' कह दिया और अपनी ओर से इस मुद्दे को ही बंद कर दिया।

शीला को लग रहा था कि उसने गलत किया। विवेक अब शायद उससे बात भी न करे। मगर क्या वह खुद देख नहीं सकता कि उसे कितनी गहरी चोट लगी है। पहले बेटा और अब पति... उसका सहारा? सिर्फ भावना...इसीलिए उसने भावना को पिता से दूर रखा। पुरुष था तो उसने शराब का सहारा ले लिया। मेरे पास क्या बचा? एक बार, सिर्फ एक बार प्यार से कह देते कि शीला बेटा दोनों ने खोया है। चलो मिलकर इस प्रहार को सह लेंगे तो बहुत कुछ बदल जाता। सभी दरारें समाप्त हो जातीं, पर हम दोनों ही अहम् के युद्ध में अपने-अपने मानदंडों पर अड़े रहे।

वह रात विवेक और भावना के लिए बहुत भारी थी काटनी। दोनों ने जो कुछ पढ़ा या देखा वह हृदयविदारक था। उस रात भावना पापा के कमरे में ही सो गई। वह पापा को महसूस करना चाहती थी।

पापा के कपड़ों से लिपटकर वह बड़बड़ करती रही, ''पापा मुझे माफ करना। अंधी और स्वार्थी हो गई थी आपकी लड़की! माँ के साथ

घूमने और खरीदारी करने के सिवा और कुछ दिखाई ही नहीं दिया। क्यूँ मैंने निष्पक्ष होकर देखा नहीं, सुना नहीं? मैंने बस यही सोचा कि मेरे पापा डॉक्टर हैं...पापा तुम्हारे पास बुद्धि थी, लगन थी, साहस था, पर तुम थे एक नंबर के जिद्दी। तुम व्यावहारिक नहीं थे शायद इसीलिए तुम्हारे दोस्त नहीं थे। तुम अपने दिल की बात कहते भी तो किससे? उम्रभर खुद को ही कोसते रहे। कभी नहीं सोचा कि किस्मत पहले से लिखी होती है बाकी सब उसके कारण बन जाते हैं।''

वह सिसकते-सिसकते कहती गई, ''पापा, आपने कभी बताया क्यों नहीं?...जानते हैं आज जब अलमारी खोली तो धूल का एक गुबार मुझसे लिपट गया। एक भी कपड़ा धुला हुआ नहीं था। नई कमीजें अभी पैकेट में ही थीं। जाने कब से लाई हुई। किसी का बटन टूटा था, मैल की लकीरें कालरों पर जमी थीं। जेबों में जली हुई सिगरेट के टुकड़े थे। तुमने मुझे अपने बारे में अँधेरे में क्यूँ रखा? मैंने जैसे ही अलमारी बंद की, एक मुड़ा हुआ कागज का टुकड़ा नीचे गिरा। तुमने उस पर लिखा था, 'आज मेरे अहम् ने शीला से कह दिया है कि मेरा हाल न पूछा करे; क्योंकि मैं जानता हूँ मुर्दा बोलेगा तो कफन फाड़ के। बंजर ज़मीन पर कँटीले झाड़ ही उगेंगे। साथ रहने पर साथ न हुआ तो क्या हुआ? केवल रिश्तों की गठरी में बाँधकर रखा गया हूँ'।''

भावना ने देखा पलंग की चादर तक सफेद से सलेटी हो गई थी। रजाई का गिलाफ जैसे कीचड़ में से निकला हो। बदबू ऐसी कि जैसे हवा तक न गुजरी हो वहाँ से। कागजों की कतरनें गद्दे के नीचे से निकलीं। काफी बदरंग पड़ चुकी थीं, जैसे आँसुओं की बूँदों से भीगी हों। शायद विजय को अपना अंत नज़र आ गया था। मरने से दस दिन पहले उसने लिखा था। बहुत कोशिश कर रहा हूँ सोने की। हारकर मैंने दो गोलियाँ नींद की खा ली हैं। मेरे भीतर का अँधेरा बढ़ता ही जा रहा है। डर लगता है कि कहीं खाई में न गिर जाऊँ। आजकल सुबह में भी रोशनी नहीं दिखती।'

भावना के क्षोभ का कहीं अंत न था। ''पापा, कितनी आसानी से माँ ने आरोपी का बोझा आपके ऊपर डाल दिया? भैया तो आप दोनों का बेटा था फिर उसका दुख क्यों न बाँट सके? मैं भी आपकी इस हालत की दोषी हूँ क्योंकि मैं एक तरफ की ही सुनती रही। पापा, प्लीज़ मुझे माफ करना।'' कहते-कहते न जाने वह कब सो गई।

विवेक विजय के घर से चल पड़ा पर वह गुमसुम था। उसके मन में जो गुबार छाया था वह चैन नहीं लेने दे रहा था। वह घंटों खाली सड़कें नापता रहा। घर के दरवाज़े पर पहुँचकर उसने गहरी साँस ली। भीतर घुसते ही उसने ऐलान कर दिया कि वह सोने जा रहा है। एक पैग व्हिस्की का बनाकर वह सीधा बिस्तर में जा पड़ा। उसका चेहरा देखकर किसी की हिम्मत ही नहीं पड़ी कि कुछ पूछे। पर नींद ने साथ नहीं दिया। उसकी छटपटाहट नहीं घिरी रही। उसे याद आया एक पत्रिका के पीछे लिखा था...''आज महाभारत को न्योता दिया। बस इतना ही पूछा था कि शीला बता दो कहाँ जा रही हो, कब आओगी? वह उपहास से बोली क्या अवकाश ले लिया है मेरी चौकीदारी करने के लिए। उसकी वह खिल्ली उड़ाती। हँसी! ...उफ्...ऐसी हँसी जो कभी पीछा नहीं छोड़ती। शीला के लिए मैं एक सामाजिक प्रतिष्ठा के शो-केस में रखा पति मात्र हूँ। तलाक की तख्ती को ढकने का साधन! या फिर ए.टी.एम. की मशीन। मुझे जलाने के लिए बच्चों को भी नकार देती है। कहती थी बच्चे तो शादी करने की सजा हैं। मैं साथ थोड़े ही लाई थी। मैं तो इसी धूप-छाँव में अपना कर्तव्य निभारता रहा।''

विवेक सोचने लगा कैसी दुरूह स्त्री है यह शीला। अच्छा हुआ उसने कभी शादी नहीं की। कैसा रूखा उत्तर दिया था कमरे की सफाई के नाम पर। क्या थी यह संवेदनहीनता? क्यों उसके चेहरे पर भाव आ-जा रहे थे? कभी पीड़ा के, कभी अपराधबोध के। क्या वह क्रूरता उन्हें छिपाने का आवरण थी? इसीलिए शायद वह मुँह घुमाकर रसोईघर में चली गई थी। विवेक को वह पत्र भी याद आया जिसमें विजय ने लिखा था–

...''मेरी हर सुबह एक अँधेरे से शुरू होती है और हर रात को दूसरे अँधेरे में डुबो देती हैं। अपने अंतिम संस्कार का प्रबंध कर दिया है। मैं चाहता हूँ पंडित को दूर रखा जाए। आर्यसमाजी विधि से मेरा संस्कार किया जाए और बाद में कोई श्राद्ध या बरसी ना मनाई जाए। एक लिफाफे में पाँच हज़ार पाउंड रख दिए हैं। एक पत्र भी पड़ा है, जिसे मेरे मरने के बाद खोला जाए।''

उस आखिरी पत्र को भी विवेक ने ही खोला था। लिखा था, ''माफ करना, अपनी ही नज़र में शर्मिंदा हूँ। स्थिति पूरी तरह नकारात्मक हो चुकी है। मेरा एकांत पीड़ा में परिवर्तित हो चुका है। इसे मैं जी नहीं, भोग रहा हूँ। जानता हूँ मेरा अंत आ गया है। मन में एक विस्फोट उमड़ता रहा है। मेरे भीतर की चीखें उसे तोड़ने के लिए मचलती रहीं, किंतु बीच में मेरा मौन खड़ा रहा, दीवार बनकर।''

विवेक ने आँखें बंद कर लीं। आँसू की बूँदें ढरककर कानों तक बह आईं। मन ने कहा, आज विजय का पलंग उसके जितना करीब था शायद और कोई नहीं। समय की धूल में लदा-फँदा चीथड़े बना...वही उसकी तबाही का साक्षी है...उसी की तरह बना उसका वजूद अंततः एक लाश में बदल गया। उसकी छाती में दर्जनों सूराख थे...हे प्रभु! कितना अकेला था मेरा भाई!!...कितना भयंकर!!!...यही उसका सच था।

●

कतार से कटा घर

✦ अनिल प्रभा कुमार

स्कूल की बस सड़क के किनारे रुकी तो हम तीनों बस्ते संभाल कर खड़े हो गए। बस ड्राइवर ने बटन दबाया और एक तीन फुट की लम्बी-सी लाल पट्टी खिंच कर बाहर निकल आई जैसे किसी ट्रैफिक-पुलिस वाले की बांह हो। उसके सिरे पर लाल अष्टकोण सा हाथ, जिस पर सफेद अक्षरों से लिखा था–स्टॉप। दोनों तरफ की कारें जहां की तहां रुक गईं, बच्चे उतर रहे हैं। रुकना कानून है। ड्राइवर ने बस का दरवाज़ा खोल दिया। स्कॉट और अनीश मुझसे पहले उतरकर, पीठ पर बस्ता झुलाते, गप्पें मारते जा रहे थे और मैं उनके पीछे चुपचाप चलता गया। वह ऐसे चलते हैं जैसे मैं होऊं ही नहीं।

''होमवर्क करने के बाद मेरे घर आ जाना, बेसबॉल खेलेंगे।'' स्कॉट ने बायीं ओर अपने घर की ओर मुड़ते हुए ज़ोर से कहा।

''हाँ, आ जाऊंगा। तेरे डैडी तो बॉल फेंक कर प्रैक्टिस करवा ही देंगे। कुछ बेचारों के घर में तो कोई मर्द ही नहीं होता। बेचारे! च्च च्च।'' कहकर अनीश मेरी ओर देखकर ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा।

जी में आया कि एक ज़ोर का घूंसा मारकर इसके सारे दांत तोड़ दूं। वह ऐसे घटिया तानों के बंटे मेरी ओर अक्सर फेंकता रहता है। एक ही पड़ोस में रहते हैं हम सभी पर मुझे कभी खेलने के लिए नहीं बुलाते और न ही कभी मेरे घर आते हैं। हालांकि यह एक बड़ा निजी सा पड़ोस है, शहर के सबसे अमीर इलाके में। पांच घर दायें और पांच घर बायें और दोनों कतारों के बीच में ग्यारहवां घर हमारा जहां आकर सड़क रुक जाती है। मेरा घर न दायीं कतार में आता है और न बायीं कतार में। बस कतारों से कटा हुआ है।

अनीश का घर दायीं कतार में है। मुड़ने से पहले उसका हाथ मुझे बाय करने के लिए उठा पर सामने गेट पर उसकी मम्मी खड़ी उसका इंतज़ार कर रही थीं। अनीश ने अपना हाथ नीचे गिरा लिया और जल्दी से अन्दर भाग गया।

मैं भी उनको अनदेखा कर अपने घर चला गया। शर्ली मम्मी हमेशा मेरे आने के लिए दरवाज़ा खुला छोड़ देती हैं, पर उनके कान दरवाज़े की ओर ही होते हैं ताकि मेरे आने की आहट सुन सकें। मुझे बहुत अच्छा लगता है यह।

मम्मी ने पास आकर मेरे सिर पर प्यार से हाथ फेरा, ''कैसा रहा मेरे बेटे का दिन?''

''ठीक था।'' कहकर मैं ऊपर अपने कमरे की ओर भाग गया। ज़मीन पर बस्ता फेंककर खुद को भी पलंग पर फेंक दिया। रुलाई छूट रही थी। मिशेल मॉम और शर्ली मम्मी को क्या पता कि उनकी वज़ह से मेरे साथी मुझ पर कैसी तानाकशी करते हैं। आज मुझे अपनी दोनों मम्मियों पर बहुत गुस्सा आ रहा है। वे तो बहुत बहादुर हैं। कहती हैं हम अपनी शर्तों पर जी रही हैं पर मेरे बारे में कुछ नहीं सोचतीं कि लड़के मुझे कितना छेड़ते हैं। आज प्ले-ग्राउंड में डेविड और अनीश ने मुझे जान-बूझकर धक्का मार दिया। मेरी कोहनी छिल गई और आंखों में आंसू आ गए तो वे लोग हंसने लगे–''औरतों के साथ रहेगा तो रोयेगा ही न?''

मैं चुपचाप उठकर चलने लगा तो पीछे से जेरेमी ने भी चलते हुए मुझे अड़ंगी मार दी। मैं गुस्से से पलटा तो वह भी ऐसे ही हंसने लगा था। ''अरे! मुझे शेव करना कौन सी मम्मी सिखाएगी?''

''मेरे डैड सिखा देंगे, इसमें कौन-सी बड़ी बात है।'' मैक्स ने बड़ी लापरवाही से कहा और मुझे खींचकर दूर ले गया।

मैं तो चुप रहता हूं। शर्ली मम्मी कहती हैं, 'ध्यान ही मत दो। एक कान से सुनो और दूसरे से निकाल दो।' इतना आसान होता है क्या? मिशेल मॉम तो नर्सरी राइम ही गुनगुनाना शुरू कर देती हैं। मैं भी तो मन ही मन यही कहता रहता हूं–'स्टिक अंड स्टोन्स, मे ब्रेक माइ बोन्स, बट वर्ड्स विल नैवर हर्ट मी।' तभी तो ढीठ बना मुस्कराता रहता हूं। पर बातें ही तो सबसे ज़्यादा तकलीफ देती हैं। कोई ऐसा दोस्त भी तो नहीं है मेरा जिससे मैं अपने दिल की बात करूं। मैक्स मेरा दोस्त है। वह अच्छा भी है पर उससे भी यह ख़ास बात कहते डरता हूं कि कहीं वह दोस्ती ही न तोड़ दे।

मैं अनमना सा अपनी किताबें और कॉमिक बुक्स पलटने लगा। मेरे हाथ में अपनी बनाई हुई तस्वीर आ गई ''मेरा परिवार''। किन्डरगार्डन में था, तब की। इसकी वजह से ही क्लास में मेरा मज़ाक बना था। टीचर ने कहा था सभी बच्चे अपने परिवार की तस्वीर बनाओ। तभी मैंने अपने परिवार की यह पेन्टिंग बनाई थी। जिसमें दोनों मम्मियां मेरा हाथ पकड़े हुए हैं और मैं बेसबॉल हैट पहन कर बीच में मुस्करा रहा हूं। ज़ैरा पास ही घास पर लेटी है।

टोनी ने दीवार पर लगाने के लिए सब की तस्वीरें इकट्ठी कीं। अनीश मेरी पेंटिंग देखकर ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगा। मुझे तो कुछ समझ में ही नहीं आया।

''परिवार में दो मम्मियां थोड़े-ही होती है, बुद्धू।''

''पर मेरी तो दो मम्मियां ही हैं।'' मैं परेशान सा हो गया।

अनीश ने टोनी से चित्र खींचकर मेरे आगे फेंक दिया।

''नहीं, बिल्कुल नहीं होतीं!'' टोनी ने भी अनीश का साथ दिया।

मैंने अपनी पेंटिंग वापिस बस्ते में रख ली तब तक छुट्टी की घंटी बज चुकी थी।

उस दिन मैं बहुत चुप था। सोच रहा था कि किससे बात करूं? वैसे तो मेरी दोनों ही मम्मियां मुझे बहुत प्यार करती हैं। कभी-कभी

सोचता हूं कि मैं कितना किस्मतवाला हूं कि मुझे दो-दो मांओं का प्यार मिलता है। स्कॉट के मम्मी डैडी तो हर वक्त लड़ते ही रहते हैं। कभी-कभी तो हमारे घर तक भी आवाज़ आ जाती है। एक बार सबके सामने ही उन्होंने स्कॉट को तमाचा जड़ दिया था। मैक्स ने बताया कि वह तो स्कॉट की मम्मी की भी पिटाई कर देते हैं। हमारे घर में तो कोई ऊंची आवाज़ में बात तक नहीं करता। दोनों ही मॉम मेरे होमवर्क में मदद करती हैं और जब वक्त मिले तो खेलती हैं, बातें करती हैं।

मिशेल मॉम ने ही मुझे बताया था कि ''गे'' का मतलब क्या होता है? जब एक ही लिंग के दो लोग आपस में प्रेम करते हैं और अपना-अपना जीवन साथ बिताना चाहते हैं तो वे लोग ''गे'' कहलाते हैं। वे दो मॉम भी हो सकती हैं और दो डैड भी।

बस, इतनी सी बात! इसके बाद मुझे कुछ और जानने में दिलचस्पी ही नहीं हुई। मुझे क्या फर्क पड़ता है, जब तक हमारे परिवार में सब प्यार से रहते हैं। स्कॉट के मम्मी-डैडी की तरह हर वक्त लड़ते तो नहीं!

अगले दिन टीचर ने जब मेरी पेंटिंग के बारे में पूछा तो मैंने धीरे से पास जाकर बता दिया कि अनीश और टोनी कहते हैं कि दो मम्मियां नहीं हो सकतीं पर मेरी तो दो मम्मियां हैं इसलिए मैं अपनी पेंटिंग नहीं दे सकता!

टीचर चुप हो गई! उसने सबकी तस्वीरें हाथ में पकड़ लीं और हम सबको अपने पास आने को कहा। एक-एक करके वह सब तस्वीरें दिखाने लगीं। सब तस्वीरें एक दूसरे से अलग थीं। किसी में एक मां और दो बच्चे! किसी में एक बच्चा और दो मम्मी-डैडी! किसी में सिर्फ डैडी और दो बच्चे। ऐसे ही टीचर सबकी तस्वीरें दिखाती गईं।

''देखा तुमने। हर परिवार अपने आप में ख़ास होता है। परिवार प्यार से बनता है इसलिए दो मम्मियों वाला परिवार भी हो सकता है और दो डैडियों वाला भी।''

मैंने अपनी पेंटिंग टीचर को दे दी। उसके बाद से उस स्कूल में मुझे किसी ने कुछ नहीं कहा।

पर आज स्कूल वाली घटना से मुझे लगा कि हमारे घर में शायद कुछ अटपटा है। शाम को जब मैं मॉम और मम्मी के बीच बैठकर टेलीविज़न देख रहा था—कोई फैमिली प्रोग्राम, तो वही एक बात मुझे तंग किए जा रही थी कि मेरी फैमिली कुछ अलग है।

''मॉम, क्या हम लोग अजीब हैं? औरों जैसे नहीं हैं?''

दोनों मम्मियां चुप हो गईं। एक-दूसरे को देखने लगीं। मुझे लगता है कि दोनों मम्मियों के बीच कुछ है, कोई जादू जैसा। वह बस एक-दूसरे की ओर देखती हैं और आपस की बात समझ जाती हैं। कुछ है उन दोनों के रिश्ते के बीच कि उसका गुनगुनापन मुझे और ज़ैरा को भी छूता रहता है।

शर्ली मम्मी ने खींचकर मुझे अपने पास बिठा लिया। मेरे बाल सहलाने लगीं।

''नहीं रॉबी, हम लोग बिल्कुल अजीब नहीं। जब से दुनिया बनी है, हर समय, हर समाज और हर धर्म में इस तरह के लोग होते हैं, जिनकी पसन्द अलग-अलग होती है। वह जानबूझकर ऐसा नहीं करते। वह होते ही ऐसे हैं। बस, ज्यादातर लोग इस बात को बर्दाश्त नहीं कर सकते कि कोई उनसे अलग तरह की सोच या पसन्द वाला इन्सान भी हो सकता है। इसलिए कई देशों में उन्हें जेल में डाल देते हैं, यातनाएं देते हैं।''

''रेत में सिर छुपा लेने से तो तूफान को नहीं नकारा जा सकता। लोग इस बात को मानना ही नहीं चाहते, इसीलिए ज़्यादातर लोग अपने सम्बन्धों को छिपाकर रखते हैं। हम क्योंकि खुले समाज में रहते हैं तो कोशिश कर रहे हैं कि जो हम हैं, उसी तरह से रहें! हम अलग हैं पर गलत नहीं!''

दोनों मम्मियों ने मुझे इतना लम्बा भाषण दे दिया। मैं तो कुछ और ही पूछना चाहता था।

''मॉम, क्या सचमुच मेरा कोई डैडी नहीं है?'' जो मैं पूछना चाहता था, वह वैसे का वैसे ही मेरे मुंह से निकल गया।

थोड़ी देर के लिए चुप्पी छा गई। मिशेल मॉम गम्भीर होकर कुछ सोचने लगीं। मैं जवाब के इन्तज़ार में मॉम के मुंह की ओर देख रहा था। मॉम मुझसे कभी झूठ नहीं बोलतीं, मुझे मालूम है।

मिशेल मॉम धीरे से अपना हाथ मेरी पीठ पर रखकर मुझे देखती रहीं फिर धीरे-धीरे बोलीं जैसे मैं उनके जितना ही बड़ा होऊं!

''देख रॉबी, मुझे शुरू से ही अपने बारे में मालूम था कि मैं कैसी हूं। हम जैसे होते हैं न, वैसे ही होते हैं। इसके अलावा कुछ और हो ही नहीं सकते। मुझे पुरुषों ने कभी आकर्षित किया ही नहीं।''

मैंने सोचा यह तो बड़ी आसान सी बात है।

''मैं और शर्ली आपस में ऐसे ही प्रेम करती हैं जैसे बाकी जोड़े करते हैं। हमें एक-दूसरे का बहुत सहारा है। हमने बाकी की ज़िन्दगी एक साथ बिताने का वादा किया है।

''हुंह।'' यह भी मेरी बात का जवाब नहीं हुआ।

शर्ली मम्मी ने शायद मेरे चेहरे पर की उलझन समझ ली। मेरी ठुड्डी हाथ में लेकर बड़े प्यार से बोलीं, ''हमें लगा कि हमें एक प्यारा सा बच्चा चाहिए जिस पर हम अपना सारा प्यार उँड़ेल सकें।''

तो वह प्यारा सा बच्चा मैं हूं, जिस पर यह दोनों मम्मियां प्यार उँड़ेलना चाहती थीं। मुझे अपने होने पर गर्व हुआ और मैं मुस्कुरा उठा।

''मिशेल तुम्हें जन्म देगी। हमने काफी सोच-विचार के बाद निश्चय किया। फिर वह एक ख़ास डॉक्टर के पास गई जो बिना किसी आदमी के सम्पर्क में आये बच्चे पैदा करने में मदद करता था।'' शर्ली मम्मी बता रही थीं।

''वह कहने लगा कि वह सिर्फ स्त्री-पुरुष के उन जोड़ों की ही मदद करता है, जिन्हें बच्चे पैदा करने में मुश्किल होती है। फिर वह डॉक्टर अपने हिसाब से मुझे बताने लगा कि सही क्या है और गलत क्या है। उसने साफ कह दिया कि मैं ऐसा नाजायज़ बच्चा पैदा करने में तुम्हारी मदद नहीं कर सकता।'' वह घटना याद करके मिशेल मॉम का मुंह उस वक्त भी तमतमा उठा था।

''फिर?'' मुझे कहानी दिलचस्प लग रही थी।

''फिर मेरी एक सीनियर डॉक्टर ने मेरी मदद की। उसने मुझे एक चार्ट दिखाया, जिसमें नामों की जगह सिर्फ नम्बर लिखे थे, फोटो भी नहीं!'' मॉम हंस पड़ीं।

''उन्हीं में से मैंने एक नम्बर तीन सौ बयालीस चुना। जिसका कद छह फुट तीन इंच था। सुडौल शरीर और वह जीवाणुओं पर शोध कर रहा था। बस, इतनी ही सूचना उपलब्ध थी। मेरी उस सीनियर डॉक्टर ने बस उसके डोनेट किये स्पर्म (दान किये हुए बीज) को मेरे अन्दर डाल दिया और तू मेरी कोख में आ गया।''

मैंने सिर हिला दिया तो मैं मॉम जो की टमी से आया हूं।

''मैंने तुझे जन्म दिया तो मैं हुई तेरी जन्म मां और शर्ली ने कानूनन अर्ज़ी देकर तुझे पालने का अधिकार ले लिया तो वह हुई तेरी सह-मां।''

''शुक्र है कि हमारे स्टेट में यह सम्भव था।'' शर्ली मम्मी ने बात का आख़िरी वाक्य कह दिया।

मॉम और मम्मी मुझसे ऐसे ही मिलकर बातें करती हैं तो मैं अपने आपको ख़ास समझने लगता हूं। मुझे लगता है कि मेरी मम्मियां भी ख़ास हैं। पर इस बड़े स्कूल में जब लड़के घुमा-फिरा कर मेरी मम्मियों के बारे में गन्दी बातें कहते हैं, मैं सुलग जाता हूं। तब मुझे दोनों मॉम के ऊपर भी बहुत गुस्सा आता है। उन्हें क्या मालूम कि लोग उनके बारे में कैसी-कैसी बातें करते हैं। अनीश और टोनी तो मेरे मुंह पर ही कह देते हैं कि उनके मम्मी-डैडी ने कहा है कि ''सिक'' लोगों के घर नहीं जाना!

सिक? मैं खौल जाता हूं। मेरी मिशेल मॉम, इतनी जानी-मानी डॉक्टर हैं और शर्ली मम्मी के लेख तो बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं में छपते हैं। मैं अपनी क्लास में सबसे अच्छे नम्बर लाता हूं और मेरी बेबी सिस्टर ज़ैरा तो दुनिया की सबसे प्यारी बच्ची है। हम लोग बीमार हैं क्या? मम्मियां हमें इतना प्यार करती हैं बस हमें और कुछ भी नहीं चाहिए। रोज़ डिनर के वक्त बैठकर समझाती हैं कि क्या बात गलत होती है और क्या ठीक। मॉम कहती हैं कि कभी किसी को ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए, जिससे उसका दिल दुखे। ये लोग तो रोज़ मेरा दिल दुखाते हैं, फिर ये लोग मुझसे अच्छे कैसे हुए? तभी तो मैं अपने घर की बात किसी से करता ही नहीं, मैक्स से भी नहीं!

❐❐

ज़ैरा शायद आ गई थी। मिशेल मॉम अस्पताल से लौटते वक्त उसे लेकर आई हैं। ज़ैरा हर वक्त हंसती रहती है। उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें देखकर मैं भी हंस पड़ता हूं। जब कोई भी मम्मी उसको स्ट्रॉलर में डालकर घुमाने निकलती हैं तो लोग अजीब-सी निगाहों से उसे पलट कर देखते हैं, शायद इसलिए कि ज़ैरा काली है और हम तीनों गोरे। मम्मियां कहती हैं कि वे दोनों ''कलर ब्लाइंड'' हैं, उन्हें तो रंग में फर्क नज़र ही नहीं आता।

जब से ज़ैरा हमारे घर में आई है, हमें लगता है कि परिवार पूरा हो गया है! ज़ैरा की असली मम्मी तो फ्लोरिडा की जेल में है और उसके डैडी का तो उसकी मम्मी को भी नहीं मालूम। पर अब तो ज़ैरा मेरी बहन है, हमारे परिवार की सदस्य।

मिशेल मॉम कहती हैं, शुक्र है कि हमारे राज्य में हमें बच्चे गोद लेने का अधिकार है, दूसरे कई राज्यों में तो अभी भी दोनों मम्मियां या दोनों डैड बच्चे गोद नहीं ले सकते। अच्छा हुआ, नहीं तो बेचारी ज़ैरा कहां रहती? मैं किसके साथ खेलता?

ज़ैरा है तो भोली-भाली सी। एक बार मुझे रात को बहुत डर लगा तो मैं मम्मियों के कमरे में सोने के लिए जा रहा था, पर उनका दरवाज़ा अन्दर से बंद था। मॉम ने सिखाया है कि कभी किसी के बैडरूम में नहीं जाते, गन्दी बात होती है। अगर दरवाज़ा खुला भी हो तो भी हमेशा खटखटा कर, पूछकर ही जाना चाहिए। मैंने दरवाज़ा खटखटाया तो कोई आवाज़ नहीं आई। मैंने ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा पीटना शुरू कर दिया। थोड़ी देर में मॉम की झल्लाहट भरी आवाज़ आई,

''क्या चाहिए रॉबी?''

''मेरे कमरे में मॉन्सटर है, मैं वहां अकेला नहीं सो सकता।'' मैं रो दिया था।

थोड़ी देर बाद मिशेल मॉम ने दरवाज़ा खोला। उन्होंने हाथ बढ़ा कर मेरे गाल थपथपाए। फिर प्यार से पुचकार दिया।

''मेरा रॉबी बेटा तो बड़ा बहादुर है न, एकदम सुपरमैन!''

''हां'', मैं फिर से ठुसका था।

मॉम ने हंसकर कहा, ''अच्छा, जा, ज़ैरा के कमरे में जाकर सो जा।''

मैं खुश हो गया क्योंकि यूं मम्मियां मुझे कभी भी सोई हुई ज़ैरा के कमरे में नहीं जाने देतीं कि वह जाग जाएगी। मैं मुस्कराता हुआ ज़ैरा के कमरे में आ गया। वह भी नींद में मुस्करा रही थी। क्रिब में तो वह लेटी थी और अपने लेटने की कोई जगह मुझे दिखी नहीं। मैंने भी मौके का फायदा उठाकर उसके स्टफ्ड भालू का तकिया बना लिया और वहीं उसके पास कार्पेट पर ही लेट गया।

❐❐

शर्ली मम्मी कुछ दिनों से बीमार चल रही थीं। शायद उनकी तबियत ज़्यादा ही बिगड़ गई। उन्हें तेज़ बुख़ार था और कंपकंपी छूट रही थी। उनका जी मतला रहा था और कभी-कभी पेट पकड़ कर वह कराह उठतीं। मिशेल मॉम सारी रात सिरहाने बैठी कभी उनका माथा और कभी हाथ-पांव सहलाती रहीं। मम्मी निढाल-सी थीं और मॉम परेशान। सुबह मॉम ने अपने अस्पताल फोन किया। ''मेरी पार्टनर बहुत बीमार है, मुझे उसका ख़याल रखने के लिए कुछ दिन के लिए फैमिली-लीव चाहिए।''

उधर से कुछ जवाब आया और मॉम ज़ोर से चिल्लायीं, ''क्यों नहीं, बाकी सबको तो मिलती हैं।''

फिर फोन पर पता नहीं क्या बातें हुईं कि मॉम गुस्से से फोन रखकर सीधे बाथरूम में घुस गईं। बाहर निकलीं तो उनकी आंखें सूजी हुई थीं। बिना किसी की ओर देखे उन्होंने शायद कुछ और फोन किये। एमरजेन्सी है, बच्चों को देखने वाला कोई नहीं जैसे शब्द सुनाई दिये।

मिशेल मॉम को छुट्टी नहीं मिली। उन्हें काम पर जाना ही पड़ा। उस दिन हम एक नई बेबी-सिटर के साथ रहे और शर्ली। मम्मी अकेली अपने कमरे में ज़ोर-ज़ोर से कराहती रहीं। मॉम जल्दी काम से लौट आईं। वह कभी इतना आसानी से परेशान होने वाली नहीं पर आज लगा वह कोई और ही मॉम हैं। अन्दर जाकर कभी शर्ली मम्मी को छूतीं, कभी उनके गले लगतीं, कभी आंखें पोंछतीं, मैं बाहर से ही सब देख रहा था और सहमा हुआ था।

मॉम एकदम सीधी होकर बैठ गईं, जैसे कुछ फैसला कर रही हों। फिर उन्होंने बेबी-सिटर को मदद करने को कहा। शर्ली मम्मी को अपनी दायीं बांह से सहारा देकर, लगभग अपने ऊपर लादते हुए कार की पिछली सीट पर डाला और गाड़ी चलाकर अस्पताल ले गईं।

उस सारी रात हम बेबी-सिटर के साथ रहे। मॉम ने उसे ही दो-तीन बार फोन किये। सिटर ने मुझे देखा और कहा, ''बुरी ख़बर। तुम्हारी मम्मी के पित्त में पथरी निकली है। ऑपरेशन की ज़रूरत है पर मिशेल की इंश्योरेन्स उसके अस्पताल का ख़र्चा देने को नहीं तैयार। मेरे डैडी की इंश्योरेन्स ने तो मेरी मम्मी की बीमारी का सारा ख़र्चा दिया था।'' फिर थोड़ा सोचते हुए बोली, ''शायद ये लोग मैरिड नहीं हैं, इसलिए।''

मॉम का फिर फोन आया था। उन्होंने बताया कि उन्हें शर्ली मम्मी के इलाज के लिए ऑपरेशन की इजाजत देने का अधिकार नहीं है, उनके हस्ताक्षर मान्य नहीं। वह प्रतीक्षा कर रही हैं।

मॉम ने मुझसे भी बात की। ''रॉबी घबराना नहीं, ज़ैरा का ख़याल रखना। सब ठीक हो जाएगा।''

''तुम कहां हो मॉम?'' मेरी रुलाई छूट रही थी।

''वेटिंग-रूम में बैठी हूं। शर्ली के कमरे में जाने की मुझे इजाज़त नहीं।''

''क्यों?''

''क्योंकि मैं उसकी फैमिली में नहीं आती।'' मुझे लगा मॉम फोन पर शायद सिसकी थीं।

दूसरे दिन शाम को दोनों मम्मियां लौट आईं। शर्ली मम्मी बहुत कमज़ोर लग रही थीं और मिशेल मॉम बेहद थकी हुईं। रात को जब मैं गुडनाइट करने उनके कमरे की ओर जा रहा था कि कॉरीडोर में ही रुक गया। मिशेल मॉम के ज़ोर-ज़ोर से बोलने की आवाज़ आई। वह शायद गुस्से में थीं, नहीं तो वह कभी इतने ज़ोर से बोलती नहीं।

''यह बिल्कुल बे-इन्साफी है। बाकी सबको परिवार का सदस्य बीमार होने पर छुट्टी मिल सकती है तो मुझे क्यों नहीं? हमेशा हमसे क्यों दोयम दर्ज़े का बर्ताव किया जाता है? एक तो औरत होने के नाते वैसे ही भेदभाव। ऊपर से जब पता चलता है कि मैं उनके तय किए गए सम्बन्धों के सांचे में फिट नहीं बैठती तो और भी कहर टूटता है। पूरे टैक्स देते हैं हम, पर हमें क्यों वह लाभ नहीं मिलते जो किसी भी आम शादीशुदा जोड़े को मिलते हैं। मेरी बीमा कम्पनी क्योंकि तुम्हारी बीमारी का ख़र्चा नहीं दे सकती? आज मुझे कुछ हो जाए तो न तुम्हें मेरी नौकरी की पेन्शन मिलेगी और न ही दूसरे हक-फायदे जो कि आमतौर पर दूसरे जोड़ों को मिलते हैं। इस घर से भी निकाल दी जाओगी। वारिस बनकर पता नहीं कौन-कौन आ जाएगा।''

शर्ली मम्मी ने भी शायद जवाब में कुछ कहा।

मुझे उनकी बातें कुछ समझ में नहीं आईं सिवाए इसके कि मॉम परेशान हैं। मैं घबरा गया और बिना गुडनाइट किए ही चुपचाप आकर अपने बिस्तर पर लेट गया।

मैं मम्मियों को नहीं बताता और ज़ैरा तो अभी है ही छोटी। पर मैं इस बात से बहुत घबराता हूं कि कोई मेरी मॉम को तंग न करे, कोई उनकी बेइज्जती न करे। कोई ऐसी बात न हो जिससे वह दुखी हों। मुझे मालूम है कि मिशेल मॉम वाले नाना-नानी तो कभी-कभी मिलने आ जाते हैं पर शर्ली मम्मी वाली नानी कभी नहीं आतीं, मम्मी इससे दुखी होती हैं।

❐❐

मम्मियां मुझे संडे स्कूल नहीं भेजतीं, जहां धर्म की शिक्षा दी जाती है पर मेरे स्कूल के कई बच्चे जाते हैं। मैं और मैक्स लंच टाइम में खाना खा रहे थे तभी जॉन और उसके दोस्त दबंगई के मूड में हमारे पास ही आकर बैठ गए। वे सभी मुझसे दो क्लासें आगे हैं। जॉन हमारी तरफ मुंह करके कहने लगा–

''हमारी चर्च में है, जो भी रिश्ता एक आदमी और एक औरत के अलावा होता है, वह पाप होता है। ऐसे लोग नर्क में जाते हैं। वे जलते अलावों पर भूने जाते हैं और गर्म सलाखों से दागे जाते हैं।'' फिर वे सभी ठहाके मार-मार कर हंसने लगे।

मुझसे लंच नहीं खाया गया। शायद मेरे चेहरे पर कुछ था जो मैक्स ने देख लिया।

''चल बाहर चलते हैं।'' वह मुझे स्कूल कैफे से बाहर घसीट लाया।

मेरा चेहरा तप रहा था और माथे पर पसीना छलछला आया। बाहर आकर वॉटर फाउण्टेन से मैंने पानी पिया और मुंह भी धोया।

''मैक्स, तुझे अपनी एक बहुत निजी बात बतानी है। पहले प्रॉमिस कर, किसी को नहीं बताएगा।''

''प्रॉमिस।'' मैक्स ने अपने सीने पर क्रॉस का निशान बनाया।

''पक्का वादा?''

''हां, दोस्ती का पक्का वादा।''

''मेरी दोनों मम्मियां गे हैं।'' मैंने अपनी सारी हिम्मत बटोरकर इतनी जल्दी से कहा कि अगर एक पल के लिए सांस लेने के लिए भी रुकता तो शायद कह नहीं पाता।

मैक्स के चेहरे पर कोई भाव नहीं बदला। मुझे अचरज हुआ।

''मुझे मालूम है। मेरे डैड ने कहा था कि लगता है रॉबी की दोनों मांओं का समलैंगिक रिश्ता है, पर जब तक रॉबी खुद न बताए, तुम मत पूछना ताकि वह असहज न महसूस करे।''

''तुम्हें अजीब नहीं लगा?''

''नहीं, अनीश का अंकल भी गे है।''

''तुम्हें कैसे मालूम?''

''मुझे कैसे मालूम होगा? वह तो भारत में है। अनीश ने ही बताया।'' मेरी फटी हुई आंखें देखकर बोला, ''अरे हर जगह के लोग ''गे'' हो सकते हैं। अनीश का अंकल शादी नहीं करना चाहता था। उसके माता-पिता ने ज़बरदस्ती सुन्दर सी लड़की से उसकी शादी

करवा दी। शादी के बाद वह उसको मारता था। कहता था, तू मुझे अच्छी ही नहीं लगती। एक दिन धक्का दे दिया तो वह रोती हुई वापिस अपने मां-बाप के पास चली गई। अनीश की मम्मी कहती हैं, शायद वह ''गे'' है। अनीश ने चोरी से यह बात सुन ली थी फिर मुझे बता रहा था। ख़ैर, हमें क्या लेना है इन बातों से। मेरे डैड कहते हैं, जो जैसा है उसे वैसा ही स्वीकार करना चाहिए।''

मुझे मैक्स की बात अच्छी लगी। एकदम पूछ बैठा, ''तो फिर तुम मेरे घर खेलने आओगे?''

''हाँ आऊंगा। पर एक बात तुम भी मेरी मानोगे?''

''क्या?'' मैं इस वक्त उसकी हर बात मानने को तैयार था–दोस्ती के नाम पर।

''प्लीज़ स्कूल की कौंसलर मिसेज़ रिचर्डसन से मिल लो और जो-जो बात तुम्हें परेशान करती हैं, उन्हें बता दो। तुम्हें अच्छा लगेगा।''

अगले दिन ही मैं मिसेज़ रिचर्डसन से मिला। वह मुझे बहुत अच्छी लगीं। उन्होंने प्यार से मेरी बातें सुनीं। मुझे लगा कि जो बातें मैं दोनों मॉम से नहीं कह सकता वह बातें, अपने सभी डर, चिंताएं, सरोकार मैं उनसे कह सकता हूं।

मैंने उन्हें जॉन और उसके दोस्तों की कही बात बताई। क्या सचमुच मेरी मम्मियां पाप वाली ज़िन्दगी जी रही हैं? क्या वे सचमुच नरक की यातना भोगेंगी? मेरी दोनों मॉम इतनी अच्छी और प्यारी हैं कि उन्हें कोई तकलीफ हो, इस ख़याल से ही मेरी आंखें डबडबा आईं।

मिसेज़ रिचर्डसन ने मेरा हाथ पकड़ लिया और मुस्कराईं–

''वे सब लोग गलत मतलब निकालते हैं। अच्छा रॉबी, तुम बताओ, जीसस क्या कहते हैं?''

''सबसे प्यार करो।'' मैं धीमे से बुदबुदाया।

''तो जीसस सबसे प्यार करता है।'' उन्होंने ''सबसे' शब्द पर ज़ोर दिया।

मैं चुप।

''तो वह सबसे प्यार करता है, चाहे वह कोई भी क्यों न हो। उनका प्यार कुछ ख़ास लोगों के लिए नहीं है, अपने सब बच्चों के लिए है। अगर जॉन की मम्मी के लिए है तो तुम्हारी मम्मियों के लिए भी है।''

मुझे सुनकर अच्छा लगा। मैं मुस्करा दिया।

मैं उनके ऑफिस से बाहर निकला तो लगा जीसस की बात का असली मतलब तो मिसेज़ रिचर्डसन ही समझती हैं। अब मैं भी यही करूंगा। सबसे प्यार करूंगा, जॉन, स्कॉट, अनीश, टोनी और मैक्स सभी से।

दोनों मम्मियां एक रैली पर गई थीं। शायद कोई बहुत ही ज़रूरी बात होगी, नहीं तो वे हमें यूं अकेला कम ही छोड़ती हैं। मैं और ज़ैरा बेबी-सिटर के साथ घर पर थे–टेलीविज़न देखते हुए।

मॉम लोग तो बस एक या दो प्रोग्राम ही देखने देती हैं, पर आज बेबी-सिटर थी, टेलीविज़न देखने की पूरी छूट भी।

समाचार चल रहे थे। बहुत से लोग नारे लगा रहे थे।

''समलैंगिकों को भी कानूनी विवाह की अनुमति मिलनी चाहिए।''

''हमारे साथ भेदभाव बन्द करो।''

''हमें भी वही अधिकार मिलने चाहिएं जो किसी भी वैवाहिक जोड़े को मिलते हैं।''

भीड़ में मुझे मिशेल मॉम और शर्ली मम्मी के जोश से भरे तमतमाते चेहरे दिखे।

फिर टेलीविज़न पर एक आदमी दूसरी ही ख़बर बताने लगा।

''कैनसास सिटी में एक समलैंगिक लड़के को कुछ लोगों ने सता-सता कर जान से ही मार डाला।'' फिर कुछ पुलिस के लोग दिखाई दिये, उस लड़के की रोती हुई मां और उसके भौंचक्के दोस्त।

मैंने ज़ैरा को अपने से सटा लिया।

''पता है, कुछ लोग समलैंगिकों से बहुत नफरत करते हैं। होमोफोबिक होते हैं ये लोग! अरे बाबा, जियो और जीने दो।'' बेबी-सिटर अपनी कमेन्ट्री देती जा रही थी।

अगर किसी ने मेरी मम्मियों को भी...? मैं कांपता हुआ अपने बेडरूम में आ गया। आंखों तक कम्बल खींच लिया। मेरी सांस बहुत तेज़-तेज़ चल रही थी। मुझे लगा कि कुछ लोग मेरी मम्मियों को रस्सियों से बांध रहे हैं। उन पर पत्थर फेंक रहे हैं। उन्हें गन्दी-गन्दी गालियां दे रहे हैं। मम्मियों के बदन से ख़ून ही ख़ून बह रहा है और उनकी गर्दनें एक ओर लुढ़क गई हैं।

मैंने घबराकर आंखें खोल दीं। शायद मैं सपना देख रहा था। पसीने से तरबतर मेरे बदन में मेरा दिल इतने ज़ोर से धड़क रहा था कि लगा अभी मेरे शरीर से बाहर आ जाएगा। मैंने मम्मी को आवाज़ देनी चाही, पर लगा मेरी अपनी आवाज़ भी ऐसे मौके पर डर के मारे गूंगी हो गई थी।

मैं चुपचाप छत की ओर देखता रहा। फिर मन ही मन प्रार्थना करने लगा। धीरे से पर्दा उठाकर खिड़की से बाहर देखा। मॉम की गाड़ी ड्राइव-वे पर खड़ी थी, इसका मतलब मम्मियां घर में आ चुकी हैं।

मैं थोड़ा-सा शांत हो गया। मैक्स के डैडी कहते हैं कि दुनिया में बहुत से ऐसे पागल लोग भी रहते हैं, जिन्हें पहचान पाना आसान नहीं होता। वे लोग अपने अलावा सबको गलत समझते हैं। दूसरों की गलती सुधारने के लिए वे किसी भी हद तक जा सकते हैं। ऐसे गलती-सुधारक लोगों से मुझे दहशत होती है। अक्सर रात को मेरी नींद खुल जाती है। मैं किसी से कहता नहीं पर रात को सोने से पहले जाकर सभी दरवाज़े देख लेता हूं कि ठीक से बन्द हैं न! पता नहीं क्यूं रात को ही डर ज़्यादा लगता है। शर्ली मम्मी से भी कह दिया है कि वह मेरे लिए दरवाज़ा खुला न रख छोड़ा करें पर उनको समझ ही नहीं आता।

आजकल तो दोनों मम्मियां लगता है किसी बड़े काम में व्यस्त हैं। फोन पर लोगों से बातें करती हैं तो एक ही शब्द बार-बार सुनाई देता है–''गे राइट्स''। आए दिन रैली में भाग लेने जाती हैं। शर्ली मम्मी तो पता नहीं क्या-क्या दस्तावेज़ तैयार करती रहती हैं। मुझे ऐसा लगता है कि वे कोई बहुत बड़ी लड़ाई की तैयारी कर रही हैं।

शर्ली मम्मी उस दिन किसी से फोन पर कह रही थीं–''वह लड़ाई हम सिर्फ अपने लिए नहीं बल्कि दुनियां में रहने वाले सभी

समलैंगिकों के लिए लड़ रहे हैं। इस आन्दोलन की शुरुआत किसी ने तो करनी ही है। हम झंडा लेकर चलेंगे तो बाकी भी फॉलो करेंगे। हमारी रुचि और आकर्षण अलग हो सकते हैं, पर गलत नहीं। सही बात के लिए हम पूरी ताकत से लड़ेंगे।''

मैं ये सब बातें ठीक से नहीं समझता। पर मम्मियां जो भी करेंगी, मैं उनका साथ दूंगा। यह मेरा भी अपने से वादा है।

उस दिन शर्ली मम्मी कोई फॉर्म भर रही थीं तो एकदम नाराज़ होकर पेन ही फेंक दिया।

''बारह साल हो गए हमें साथ रहते हुए और अभी तक ''सिंगल'' पर ही निशान लगा रहे हैं। अलग-अलग दुगुना इन्कम-टैक्स भरना पड़ता है।''

मिशेल मॉम के चेहरे पर दुख और बेबसी का भाव था। मैं यह जान जाता हूं पर समझ नहीं पाता कि मैं कैसे दोनों मम्मियों को खुश करूं? मैंने मॉम जो के गले में बांहें डाल दीं और गाल पर किस्सी दी। मॉम ने मुझे अपने सीने से चिपका लिया। मुझे लगा कि मैं कम से कम यह तो कर ही सकता हूं।

❐❐

सुबह स्कूल जाने से पहले मैं आंखें मलता हुआ नीचे आया तो वहीं का वहीं ठिठक गया। किचन टेबल पर आज का अख़बार बिखरा पड़ा था और दोनों मॉम एक-दूसरे के गले से लिपटकर खुशी से गोल-गोल घूमे जा रही थीं।

मुझे देखा तो शर्ली मम्मी ने दौड़कर मुझे भी गोदी में उठा लिया और झूम गईं।

''रॉबी! बिल पास हो गया।''

मैं अभी भी उन्हें हक्का-बक्का देख रहा था। पागल हो गई हैं क्या दोनों?

''अब न्यूयॉर्क में भी ''गै-मैरिज बिल'' पास हो गया है। अब हम दोनों शादी कर सकेंगे।''

मम्मियों को इतना ज़्यादा खुश आज मैंने पहली बार देखा।

''कब होगी शादी?'' मैं भी खुश था क्योंकि दोनों मॉम खुश थीं।

''जल्दी, बहुत जल्दी।'' मिशेल मॉम बस अब और इंतज़ार नहीं करना चाहती थीं।

और हमारे घर में शादी की तैयारियां शुरू हो गईं। सबको निमन्त्रण भेजे जा रहे थे। मेरे और ज़ैरा के नए कपड़े भी आ गए। मैक्स के डैड ने कहा कि वह शादी की रस्म के बाद मॉम और मम्मी को अपनी बड़ी वाली कार में घर ले आएंगे।

मम्मी और मॉम थोड़ी खुस-पुस करती रहती थीं। लगा, कोई बात है जो इन्हें पूरी तरह खुश नहीं होने दे रही। मैं अपना होमवर्क कर रहा था तो मैंने सुना कि शर्ली मम्मी अपनी मौसी से बात कर रही हैं।

''मेरी मां को समझाओ। यह दिन मेरे लिए बहुत ख़ास है। अगर वे इस शादी में नहीं आएंगी तो...'' और मम्मी सुबकने लगीं।

शादी वाले दिन मैंने अपना काल टक्सीडो पहना और ज़ैरा ने लेस वाला गुलाबी फ्रॉक। मिशेल मॉम ने क्रीम रंग का पैंट-सूट और शर्ली मम्मी ने भी उसी रंग का स्कर्ट-सूट। मिशेल मॉम वाली नानी ने दोनों अंगूठियों के डिब्बे अपने पर्स में सम्भाल कर रख लिए। सभी घर आने वाले मेहमान आ चुके थे और मम्मियों के दोस्तों ने सिटी हॉल के बाहर ही मिलना था। मॉम के ऑफिस का कोई आदमी हमारी तस्वीरें ले रहा था कि इतने में दरवाज़े की घंटी बजी।

मेहमान को देखकर शर्ली मम्मी की खुशी से चीख निकल गई। वह दौड़कर उस बुज़ुर्ग महिला से लिपट गईं। वह रोती जा रही थीं और बोलती जा रही थीं–''थैंक्यू मॉम, थैंक यू। थैंक यू सो मच।''

मैं समझ गया, ज़रूर दूसरी वाली नानी होंगी।

रजिस्ट्रार के दफ्तर में मॉम और मम्मी ने दस्तख़्त किए। नानी ने मुझे और ज़ैरा को एक-एक अंगूठी पकड़ा दी और हमें मम्मियों को दे देने का इशारा किया। मिशेल और शर्ली मम्मी ने एक दूसरी की उंगली में अंगूठी पहनाई तो वहां खड़े सभी लोगों ने तालियां बजानी शुरू कर दीं। मॉम और मम्मी ने सबके सामने एक-दूसरे को किस्स किया तो मॉम की मम्मी ने उन पर फूल फेंके।

मैक्स के डैड अपनी कार बिल्कुल दरवाज़े तक ले आए। उस पर दो बड़े-बड़े बैलून बंधे थे और पीछे के शीशे पर सफेद रंग से लिखा था–''न्यूली मैरिड''।

मिशेल मॉम और शर्ली मम्मी एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए पीछे की सीट पर बैठ गईं। उनके पीछे की कार में मिशेल मॉम वाले नाना ड्राइवर सीट पर और नानी उनके बगल में बैठीं। ज़ैरा को बच्चों वाली सीट पर पेटी से बांधने के बाद दूसरी वाली नानी मेरे साथ पिछली सीट पर बैठ गईं।

''तुमने आख़िरी वक्त पर आने का इरादा कैसे बना लिया?'' बड़ी नानी ने पूछा तो दूसरी नानी खो सी गईं।

''क्योंकि...क्योंकि मेरी बहन ने कहा कि जैसे तुम अपने स्वर्गीय पति से अभी तक इतना प्रेम करती हो, शर्ली भी वैसे ही मिशेल से प्यार करती है। अपने पूर्वग्रहों की वजह से उसे किसी भी तरह से कमतर न आंको। सोचती रही, बस फिर लगा कि शर्ली की खुशी के लिए मुझे आना चाहिए, आ गई।''

अचानक हम सबका ध्यान बंटा। बड़ी नानी के मुंह से तो हल्की-सी चीख़ ही निकल गई। एकदम हमारे आगे बड़ी नव-विवाहित जोड़े वाली कार के ऊपर एक आदमी कुछ फेंक कर तेज़ी से भाग गया। हम सब सकते में आ गए–कहीं बम तो नहीं? मुझे लगा कि मेरी सांस रुक रही है।

कार के पिछले शीशे पर लिखा, ''न्यूली मैरिड'' शब्द, अंडे की ज़र्दी और सफेदी के नीचे दब गया।

गाड़ी झटके से हिली और बेपरवाही से अपने घर की तरफ बढ़ गई।

●

कविताएँ

अमरेन्द्र कुमार (अमरीका)

रात और दिन

(1)
रात झुक जाती है
दिन के कंधे पर
दिन उसे लिये फिरता है
फिर थक जाता है
रात की नींद खुल जाती है
दिन को थपकाती है
सहलाती और सुलाती है
खुद एक आंख में
सारी रात काट देती है
कौन कहता है कि
दिन का विलोम रात है।

(2)
रात ने लगाई
एक बड़ी सी बिंदी
चन्द्रमा की
और जूड़े को सजा लिया
अनगिनत तारों से।

जाने से पहले
उसने दिन के माथे पर
सूरज का टीका लगा दिया।

✦

आदमी और कबूतर

(1)
नाम देकर
सभ्यता का विकास
छीन कर
धरती और आकाश
बनाये जा रहे
कंक्रीट के दरबे
तैयारी हो चुकी है पूरी
आदमी को कबूतर बनाने की।

(2)
कबूतर
शांति का प्रतीक है
सरे आम
शिकार हो जाता है
आम आदमी
इस अर्थ में
कबूतर जैसा ही है।

(3)
पग-पग पर
आज बहेलिये
फिर बैठे हैं जाल बिछाकर
कबूतर फिर आज फंसे हैं
दानों के लोभ में आकर।

फंसनेवालों के बीच
प्रश्न आज फिर छिड़ा है
कैसे बचाएं अपने आपको
बहेलिया बस दो पग दूर खड़ा है।

सबको प्रतीक्षा है
कोई तो होगा
जो बताएगा आगे आकर
चले चलो जाल को उड़ाकर।

✦

लोग

(1)

धरती के इसी किसी भूखंड पर
कुछ लोग इतने बड़े हो गये
कि आम लोगों की पहुंच से परे हो गये

अपने घर की ऊँची करके दीवार
बन जाते हैं जीते जी चमत्कार

वो चाहते हैं कि आप उनके लिये
पागल हो जायें
उनसे मिलाने को हाथ
आपके हाथ लम्बे हो जायें

लेकिन वो आंखों पर
काला चश्मा पहने
आप जैसे हजारों को
लगें एक साथ देखते हुए से

आप अपनी डायरी पर
लेने को उनके हस्ताक्षर
गिर पड़ें या कुचले जायें
उनके 'फैन' की भीड़ में

उनकी कार जब चले
तो उनके पीछे प्रशंसकों
की चल पड़े भीड़

लेकिन वह जब न चाहें
आपके सामने प्रगट होना
वे आपकी ही बगल से
किसी अपारदर्शी कार में
सरसराते से निकल जायें

आपसे है जिनकी हस्ती
आपने उनको अपने से
बड़ा हो जाने दिया
आपने उनको अपने से
परे हो जाने दिया।

(2)

तुम बढ़े जब आगे
वे भी बढ़े थे आगे

तुम बढते गये आगे
वे पिछड़ने लगे
कुछ तो अपनी सामर्थ्य
कुछ अलग करने लगे

कुछ लोग जब स्वयं
आगे नहीं बढ़ पाते
खींच लेना चाहते हैं
उन सबको
जो आगे बढ़ रहे होते हैं

कुंये में पड़ा मेंढ़क
नहीं चाहता कि कोई
जा पाये कुंये से पार
जाने कैसा है संसार
खींच लेते हैं
जगत तक पहुंच गये दूसरे को
गिरा देते हैं
अपने जैसा बना देते हैं।

(3)

कुछ लोग
ऐसे भी होते हैं
जिन्हें खिलाओ
पिलाओ और घुमाओ
तो वे तुम्हारे
आस-पास मंडाराते हैं
तलवे चाट लेते हैं
अपनी दुम हिलाते हैं

लेकिन
जिस दिन
उनको दाना डालना
बंद कर दो
पलट कर काट खाते हैं।

कुछ लोग
पालतू भी नहीं रहे।

(3)
कुछ लोग
सहज ही अपने हो जाते हैं
आपको अपना बना लेते हैं
नहीं खाते हैं सौगंध
जीवन भर साथ निभाने की
नहीं करते हैं प्रयास
संबंधों में शीश चढ़ाने की
उनका होना
मात्र होना है
लेना-देना नहीं
खोना-पाना नहीं
नहीं होती उनकी
आपसे कोई अपेक्षा
आप जैसे हैं उनके हैं
वे जैसे हैं आपके हैं।

✦

आज के समय में

(1)
हमारे पड़ोस में
कुछ लोग रहते थे
हम जिन्हें
पड़ोसी कहते थे

बातें नहीं होती थीं
बहुत हमारी
उत्सवों और मेलों में
प्राय: मिल जाया करते थे
नमस्ते कर लिया करते थे

वो भी व्यस्त थे
और हम भी अपने में

महीने-साल-दशक
ऐसे ही बीत गए
हम उनके और वे मेरे
पड़ोसी ही बने रहे

नौकरी के कारण
उन्हें एक दिन
दूसरे नगर जाना पड़ा
नियत दिन वे चले गए
अब लगता है
कुछ लोग पास रहते थे
हम पड़ोसी जिन्हें कहते थे

(2)
वह आज सुबह
जल्दी उठ गयी थी
आज उसके पड़ोसी
दूसरे शहर जाने वाले थे
हमेशा के लिये

वह आकर देख जाती
अपने टैरेस से
कि जब वे जायेंगे तो
वह हाथ हिलाकर
विदा करेगी

थोड़े और समय के बाद
उसका पति भी उसके साथ था
फिर उसका छोटा बच्चा भी
सुबह की नींद में
आंखें मलता हुआ

तीनों देख रहे थे
टैरेस से टकटकी लगाए
कि उनका पड़ोसी
अब निकले कि तब

बहुत समय निकल गया
कोई नहीं निकला घर से
नहीं आयी कार भी सामने

तीनों सोचने लगे
शायद
वे लोग
पीछे के रास्ते चले गए हों..

(3)
लाख संस्तुतियां
तुम्हारे लिखे और किये
की गुणवत्तायें
तुम्हें नहीं दिला पाईं पुरस्कार
पुरस्कार दे दिया गया
किसी और को

क्योंकि पुरस्कार के लिये
वो पर्याप्त नहीं
जो तुम्हारे पास है

जिसे यह पुरस्कार दिया गया
उसके पास वैसा कुछ भी नहीं था
जिसके लिये वह पुरस्कार बना था
लेकिन फिर भी वह पा गया पुरस्कार
क्योंकि उसके पास वह था
जो अब के बदले समय में
पुरस्कार के लिये जरूरी है।

(4)
छोटे से छोटे
अथवा बड़े से बड़े
पुरस्कारों को देने
के साथ जो वक्तव्य
जारी किया जाता है

उसे सुन-पढ़कर
कई बार लगता है
कि वह सफाई है
अथवा आत्म-ग्लानि
या फिर
एक प्रकार का अपराधबोध

(5)
आज मन नहीं
हुआ उद्विग्न
पढ़कर-सुनकर
कोई समाचार

आज नहीं हुआ मैं उदास
कर बीते दिनों की याद

नहीं बोला कोई झूठ
नहीं जला मेरा मन
कहीं कोई
ईर्ष्या और द्वेष
न कोई हर्ष
ना ही अमर्ष
नहीं की कोई चुगली
और न ही कोई स्तुति

नहीं निकले कठोर वचन
क्रोध को गया भूल

बदले की भावना भी
आज नहीं कोई आयी

आज नहीं घिरा
किसी आसक्ति से
नहीं मुझे पढ़ना पड़ा दुर्बल

किसी बड़ी आकांक्षा ने
नहीं मुझे छोटा बनाया
ना ही मैं चढ़ा आकाश
करने को सपने साकार
नहीं मैंने कोई काटी रेखा
नहीं खींची कोई अपनी रेखा

चलो,
एक और दिन अच्छा बीता...

(6)
कितना कठिन है
ढूँढना एक शीर्षक
किसी नयी कविता का

नाम एक
सर्वथा नए और अपरिचित
सम्बन्ध का

चर्चा करना
अपने ही परिवार के लोगों का
माता-पिता, भाई-बहन,
पत्नी-बच्चे,
मित्र-
गली-मोहल्ले-शहर का
बीते दिन
देखे सपने
आने वाले कल का

बताना अपनी ही
किसी नयी कलाकृति के बारे में

सोचता हूँ मैं हतप्रभ हूँ देखकर
कि कुछ लोग
कितनी दक्षता के साथ
ये सब कर लेते हैं

और मैं चुप रह जाता हूँ...

✦

गांधारियों से प्रश्न

वह तो अन्धे थे ही
तुमने क्यों पट्टी बांध ली
खुद अपनी आंखों पर
रोशनी थी तुम्हारे पास
फिर क्यों भागीदार बनीं
जीवन के अन्धेपन की
क्यों साथ दिया
घटाटोप अन्धेरे का।
क्यों नहीं प्रतिवाद किया
हर गलत फैसले का
हर गलत सच का
तुम जान-बूझ कर
क्यों साथ देती रहीं
गलत रिवाज़ों का।
बेटियां कोख में मरती रहीं
और द्रौपदियां नग्न होती रहीं
और तुम आंखों पर बांधे पट्टी
गौरवान्वित होती रहीं।

मांओं, गान्धारियों, नारियों
खोल दो
आंखों पर बंधी इस पट्टी को।
झुलसा दो
उन घिनौने हाथों को
जो बढ़ रहे हैं
नोचने तुम्हारे अंश को।
कोख तुम्हारी है
उनकी नहीं
तुम करोगी फैसला
वह नहीं।
"इज़्ज़त" के नाम पर
रची गई क्रूरताओं से,
तुम ही बचाओगी
अपनी बेटियों को
जननी तुम हो,
वे नहीं।
तुम ने चुना था अन्धापन
उजाला भी चुनोगी,
तुम खुद ही।

✦

चट्टानें (ग्रैंड कैन्यन की)

सदियों पहले
जब धरती ने भी विद्रोह किया था
चुपचाप सब सहने से
बस, और नहीं।
वह अस्थिर हुई
हिली थी अपनी जगह से,
सृष्टि में हलचल मची थी।
सागर भी घबराया था तब
संतुलन बिगड़ा था
प्रकृति का।
कितना गुस्साया था सागर
धरती की हिम्मत पर।
जा बैठी रह
अपने स्वाभिमान को लेकर।
वह उसे छोड़ गया
धीरे-धीरे नीचे उतरता गया
और जाते-जाते
अपने पानी की असीम शक्ति से,
उसके चेहरे पर, बदन पर
तीव्र प्रहार करता गया,
कटाव लगाता गया
उसके अस्तित्व पर।

जितना सागर नीचे उतरा
उतनी धरती ऊपर उठी,
समय के रंगों से और निखरी
चोटों, घावों के निशान
सुन्दर कटाव दे गए उसे।
सुन्दर, सुदृढ़
मोहक चट्टान बन कर
जमी हैं सदियों से
जुड़ती रहीं उससे
उस जैसी और भी।
प्रकृति की सुन्दर अद्वितीय
कृति मानी जाती हैं वे।
ध्यान से देखो
ललछौंही चट्टानें
सबसे हमारी बात
कह रही हैं।

✦

प्रदूषण

आजकल
हवा में घुल गई है
स्वार्थ की ज़हरीली गैस,
सारे बाज़ार में फैल गई
सब कुछ काला-नीला कर गई।
मरा कोई नहीं
बस कुछ लोगों पर
ज्यादा ही असर कर गई।
कुछ के सींग
कुछ के भयानक पंजे निकल आए।
होड़ लग गई उनमें
उठा-पटक करने की
तेज़ाब डालने की
एक-दूसरे पर।
एक-दूसरे के विकृत चेहरे देख
अट्टहास करते हैं वे
अपने-अपने आईने तो
कब के तोड़ चुके हैं वे।
अब जाल बुने जा रहे हैं
सब घिर रहे हैं
उसके अन्दर
सांस लेने को छटपटा रहे हैं।
आग लगाने की तैयारी करो
जल जाए
यह जहरीलापन
शायद फिर से लोग
सांस ले सकें
एक आदमी की तरह
सहज, स्वाभाविक।
सब कुछ तो वही
मैंने देश, शहर
और कितने घर बदले
पर मेरे सिर पर निरंतर रहा
उसी एक आकाश का साया।
मैं किन-किन ठौरों पर चलती रही
पर मेरे पांवों के नीचे रही
वही एक ठोस ज़मीं।
हवा भी नहीं रुकी
एक पल को भी
चाहे मैं कहीं भी रही।
जब ज़मीन वही
आकाश वही,
सूरज वही
चांदनी वही
तो क्यों बंटवारे करूं मैं
सीमाएं खींचूं
बीच
तेरे और मेरे की।

भक्तगण
कुछ लोग
आस-पास के लोगों को
अनदेखा कर,
जबरन ध्यान लगाते हैं
पत्थर की मूर्ति पर।
सुलगते रहते हैं
कुंठाओं की आग में
धुंधआते रहते हैं
अनबुझे कोयलों जैसे।
गिले और शिकायतों की
फूंकनी से
नाराज़गी को कुरेदते हैं।
जीता-जागता ईश्वर
गुज़र गया
कितनी बार
उनके सामने से
उन्होंने आंख उठाकर
देखा ही नहीं,
वे नाराज़ हैं उसी के बच्चों से।
उनकी सांस,
विषैली फुंफकार
सारा वातावरण
दूषित कर गई,
सांस घुटने लगी।
और ईश्वर वहां से चला गया
अपने बच्चों को लेकर
और वह
अपनी ही छवि में डूबे
मूर्छित से बैठे रहे
उसी अंधकार के केन्द्र में।

✦

ग़ज़ल

आने का वादा करके वो आते ही रह गए
हम हाल अपना उनको सुनाते ही रह गए

दुनिया से कोई अपना ता-आरुढ़ न हो सका
हम खुद ही को खुद से मिलाते ही रह गए

आँखों की उम्र ख़्वाब कभी पूछते नहीं
हम ख़्वाहिशों के फूल खिलाते ही रह गए

तुम क्या गए कि याद भी हमराह ले गए
यादों की राख हम तो उड़ाते ही रह गए

बोसीदा हो चुकी थी ये रिश्तों की चादर
हम जिनको बार-बार सिलाते ही रह गए

✦

नज़्म

जल ही गयी सिगरेट उम्र की बगैर धुआँ किए
बुझाने की गफ़लत में, तमाम रातें रुसवा ही रह गयीं

मुक़द्दर को रफ़फू करते-करते चल दिये उस ओर
हाथों की लकीरें बस, कुछ यूं ही मुसकुराती रह गयीं।

अरसा हुआ अंधेरे में डूबे हैं इश्क़ में सुलगे चिराग
बर्फ पर घास उगाएँगे, दिल की हसरत ही रह गयी

राज़-ए-आतिश छुपा के उनकी गलियों से वो गुज़रे
साथ जाने की ज़िद में कसमें, कसमसाती रह गयीं।

नादानियाँ कहकर कहानियों से रुसवा किया हमको
ज़ख़्मों से लिखी नज़्में, रुसवाई से तकती रह गयीं।

✦

कविता : उसके जाने के बाद

उसके जाने के बाद मैं
ताकती रही उसके कदमों के निशाँ
मैंने कहा था उसे
हो सके तो उन्हें भी साथ ले जाना
अब कितना मुश्किल है उसका जाना...

जिंदगी के जाने के बाद मैं
छूती रही उसकी परछाई के निशां
मैंने कहा था उसे
हो सके तो साँसें भी साथ ले जाना
अब कितना मुश्किल है जीना....

यादों के जल जाने के बाद मैं
विनती रही उसकी राख के निशाँ
मैंने कहा था उसे
हो सके तो राख उड़ा ले जाना
अब कितना मुश्किल है ढेर में जीना...

✦

पुराने फ्रेम

सोचती हूँ पुराने फ्रेम में नयी तस्वीरें लगाऊँ
या पुरानी तस्वीरों पर नए फ्रेम जड़वा लूँ
शायद ऐसा करने से
मेरी बचपना की सहेली रानों
स्कूल की घंटी बजाता किशन और उसकी मूँछें
कॉलेज की कैंटीन का राम लाल तथा
मेरी शादी के मंडप में बैठे पंडित गोपी लाल जी
एक बार सबकी झलक और चेहरे
क्या पता...
मर चुके अहसासों को जिला
रोज़मर्रा की लड़ाई में
मेरे हथियार और तीर बन जाएँ
अर्जुन की कहानी को जीना है मुझे
मर्द के भीतर के काई लगे तालाब में
मछली की आँख दिख रही है मुझे

✦

ख़ामियाज़ा

सुनो
जा रहे हो तो जाओ
पर अपने यह निशां भी
साथ ले ही जाओ

जब दोबारा आओ
तो चाहे, फिर साथ ले लाना
नहीं रखने हैं मुझे अपने पास
यह करायेंगे मुझे फिर अहसास
मेरे अकेले होने का
पर मुझे जीना है
अकेली हूँ तो क्या
जीना आता है मुझे
लक्ष्मण रेखा के अर्थ जानती हूँ
माँ को बचपन से रामायण पढ़ते देखा है
मेरी रेखाओं को तुम
अपने सोच की रेखाएँ खींच कर
छोटा नहीं कर सकते
युग बदले, मैं ईव से शक्ति बन गयी
तुम अभी तक अहम् की आदिम अवस्था में ही हो
दोनों को एक जैसी सोच को रखने का
ख़ामियाज़ा तो भुगतना तो पड़ेगा।

✦

मन की सड़क

मत दिखाओ मेरे पाँव को
अपने मन की सड़क
फिर क्या पता वो रास्ता
मुझे रास आ जाए।
महरो-माह की चमक रहेगी
ताउम्र हमारे रिश्तों पर
ख़्यालों का यूं फिसलना
रातों को रास आ जाये।
थकने लगे हैं अब तो
तेरी-मेरी परछाइयों के भी पाँव
ऐ ज़िंदगी तेरा धीरे चलना
थकान को रास आ जाए।
ज़िंदगी जो बन गयी थी
तेज़ाब की उफनती नदी
क्या पता किसी रिश्ते को
फिर तैरना रास आ जाये।
वफ़ा की बात करते हो
तमाम रास्ते तिरग़ी करके
इतिहास जीने के लिए, फिर
अनारकली होना रास आ जाए।

✦

सीधी बात

आज मन में आया है
न बनाऊँ तुम्हें माध्यम
करूँ मैं सीधी बात तुमसे
उस साहचर्य की करूँ बात
रहा है मेरा तुम्हारा
सृष्टि के प्रस्फुटन के
प्रथम क्षण से
उस अंधकार की
उस गहरे जल की
उस एकाकीपन की
जहाँ तुम्हारी साँसों की
ध्वनि को सुना है मैंने
तुमसे सीधी बात करने के लिए
मुझे कभी लय तो कभी स्वर बन
तुमको शब्दों से सहलाना पड़ा
तुमसे सीधी बात करने के लिए
वृन्दावन की गलियों में भी घूमना पड़ा
यौवन की हरियाली को छू
आज रेगिस्तान में हूँ
तुमसे सीधी बात करने के लिए
जड़ जगत, जंगम संसार
सारे रंग देखे हैं मैंने
ऐ कविता .....
तुम रहीं सदैव मेरे साथ
जैसे विशाल आकाश,
जैसे स्नेहिल धरा,
जैसे अथाह सागर,
तुमको महसूस किया मैंने नसों में, रगों में
जैसे तुम हो गयीं, मेरा ही प्रतिरूप
शब्दों के माँस वाली जुड़वाँ बहनें
स्वांतरू सुखाय जैसा तुम्हारा सम्पूर्ण प्यार...
इसीलिये
आज मन में अचानक उभर आया यह भाव–
कि बनाऊँ न तुम्हें माध्यम
अब करूँ मैं सीधी बात तुमसे

✦

अलाव

तुमसे अलग होकर
घर लौटने तक
मन के अलाव पर

आज फिर एक नयी कविता पकी है
अकेलेपन की आँच से

समझ नहीं पाती
तुमसे तुम्हारे लिए मिलूँ
या एक और
नयी कविता के लिए ?

✦

कविता एक सहारा

कविता एक सहारा है
जब बेबसी बगावत करती है
और आँधी, अंधी गलियों से गुजरती है....

कविता एक सहारा है
जब सोच हवा में तिनके-सी उड़ती है
बिखर कर, फिर-फिर सिमट कर
शब्दों का चोला पहन लेती है....

कविता एक सहारा है
जब कोई खुशी आँखों से छलकती है
कोई नमकीन याद अहसास बन जाती है....

कविता एक सहारा है
कोई अनुभूति, सोच शब्दों में बँध जाती है
फिर उन शब्दों को कलम की नोक से
क़ागज़ पर चिपकाना मजबूरी हो जाती है...

कविता एक सहारा है
जब कल्पना के पंखों पर उड़ते परिंदे
स्मृति के शिलालेख बन जाते हैं...

कविता एक सहारा है
वह तो बस ओस में भीगते रहने की मौसमी मजबूरी
और जीने का सबब बन जाती है...

✦

तुम्हें छू लेती हूँ

तुम्हें छू लेती हूँ
खाली क़ागज़ पर शब्दों से
पेंटिंग में भर के रंग
ठहरे पानी में फेंक के कंकड़
बरसती बूंदों को तन पर छुआ कर
पेड़ से टपके पत्ते की शरारत से
तुम मेरे पास नहीं
फिर भी तुम्हें छू लेती हूँ
अहसासों के कुण्ड में नहा कर
छूने के लिए पास होना ज़रूरी तो नहीं।

✦

दिव्या माथुर (हर्टफर्डशायर-ब्रिटेन)

करवट

लंबी कार पर सजा दिए गये हैं फूलों से लिखे सन्देश
'लव यू पापा'
'लव यू ग्रैंड डैड'
'फ़ेयर दी वैल हब्बी'
शवपेटिका में बंद
करवट बदल रहे हैं
ओमप्रकाश
जीवन भर जो
मातृभाषा का
ढिंढोरा पीटते रहे.

✦

शव-पेटी

शव-पेटी पर लगवाए गए चमकते सोने के कुंडे
जीवन भर
जिन बेटों की माँ के कान रहे नंगे
ओछेपन से ओत-प्रोत थी शव-पेटी जिसमें उनकी
मृत माँ लेटी!

✦

यंत्रणा

भूत-प्रेत से मँडराते
परिचारक
उसे उठने-बैठने तक नहीं दे रहे
कि कहीं उसकी हृदय-गति

न रुक जाए
मल-मूत्र में सना
वह गिन रहा है अंतिम साँसें
जो नर्सिंग-होम के लिए
अशर्फियाँ हैं
किन्तु उसके अपने लिए यंत्रणा!

✦

बेटा

बचपन में एक बार
जब उसके पांव में
मोच आ गई थी
तो दौड़ते आए थे
उसके बीमार पिता और गोद में उठा कर
पैदल ही ले गए थे
हांफते हुए उसे डिस्पेंसरी
और आज वह हवाई जहाज़ से भी
नहीं पहुंच पाया उन्हें कन्धा देने!

✦

शब्दकोश

शब्दकोश वह अद्‌भुत था, 'युद्ध' शब्द उसमें न था
'शत्रु' का था न अता-पता, 'बारूद' बेचारा क्या करता

'घृणा' न थी न 'द्वेष' वहाँ, 'आहें' थीं न 'बीमारी'
न 'आँसू' थे न 'शोक' वहाँ, न 'मृत्यु' न 'गोलाबारी'

'बंजर' शब्द का अर्थ वहाँ था, 'सरसों के जैसा पीला'
'पतझड़' था 'बसंत' वहाँ और 'मरुस्थल' था 'नीला'

'झूठ' वहाँ था 'जिज्ञासा', 'आलस्य' वहाँ था 'फुर्तीला'
था 'रोना' मुस्कान वहाँ और 'बेसुर' था 'एक गीत सुरीला

'विनम्र, परिष्कृत, सदय' तो थे, किंतु न थे 'नैराश्य, हताशा'
थे 'रामराज्य शुभ मंगलमय, सम्मान स्नेह, गौरव, मर्यादा'

शब्दकोश सीने पर रख, मीठे सपनों में व्यर्थ बही
सुबह आज जब मैं जगती काश कि रहते अर्थ वही!

✦

जय वर्मा (नॉटिंघम - ब्रिटेन)

अकेला कहाँ था

आते-जाते सभी मुसाफिरों को देखा
रोशनी थी जलते दीयों की वहाँ
उजालों से उनके सभी बेखबर थे
सोने-चाँदी के सिक्कों की खनक में
घड़ियाल की नाद मैं सुनता रहा
अकेला कहाँ था मैं सूने जहाँ में

जंजीरों में बँधे थे अनोखे मनसूबे
बेल-बूटों से सजे थे महलों के कमरे
ताक पर रक्खे थे ज़ज़्बे के गुलदस्ते
इतिहास के पन्नों को पलटते हुए
तमन्नाओं के ख़ाक़े मैं बनाता रहा
अकेला कहाँ था मैं सूने जहाँ में

झिलमिलाते सागर के तट पर
तपती दुपहरी में बैठा था मौन
गुनगुना रहे थे मछियारे वहाँ
अम्बर तले बिना कुछ कहे
लहरों के साथ मैं चलता रहा
अकेला कहाँ था मैं सूने जहाँ में

नई सड़क की बनती डगर पर
पत्थरों की टोकरी सिर पर लिए
अपने माथे से पसीना पोंछती थी वह
उसके माथे से पसीना टपकता रहा
थके पाँवों की झंकार मैं सुनता रहा
अकेला कहाँ था मैं सूने जहाँ में।

✦

रिश्ते

कैसे अनोखे होते हैं ये रिश्ते
क्या-क्या रंग दिखाते हैं रिश्ते

पेड़ों के पत्तों से छनती हुई धूप जैसे
कभी बरसात से निखरे हुए रूप जैसे
हरियाली के रंग दिखाते हैं रिश्ते
छूई मुई से नाजुक होते हैं रिश्ते

चेहरे पर मुस्कान लाते हैं रिश्ते
ले जाते दूर गगन में गुनगुनाते रिश्ते
ज़मीं भी अपनी आसमान भी अपना
क्या खूब सपने दिखाते हैं रिश्ते

उगता है नया सूरज नये रिश्ते के साथ
महकता है मौसम रिश्तों के नाम
तमन्नाओं को ज़िंदा रखते हैं रिश्ते
मन को बहलाते और तड़पाते हैं रिश्ते

✦

चिराग़

तेरी रहमत से जी रहे हैं
परिधि में रहकर
चिराग़ों से जरा पूछ
अपनी मर्जी से
न वे जलते हैं
और न बुझते हैं
उनकी जलती हुई
लौ को देख
अपने पास न
वे कुछ रखते हैं
लाल अग्नि में जलकर
ख़ामोश हो जाते हैं
रोशनी किसको मिली
वे नहीं पूछते
अँधेरों में कौन खो गये
वे नहीं जानते
उनका काम था राह दिखाना
वे दिखाते रहे
उनकी फ़ितरत थी जलना
वे जलते रहे।

✦

डॉ० कृष्ण कुमार

डॉ. कृष्ण कुमार की ये कविताएं उस समय की हैं जब वह जुलाई, 2012 से पेट के कैंसर से जूझ रहे थे। प्रारम्भिक निरीक्षण के अनुसार अर्बुद (ट्यूमर) इतना बड़ा था कि इसका ऑपरेशन कर पाना संभव नहीं था। आयरन गोलियों के कारण पता न लगा और अर्बुद पेट में फट कर रक्त बहाता रहा। जीवोतिपरीक्षा (बायोप्सी) ने आशा की एक किरण दिखाई कि इस अर्बुद (जिस्ट) का ऑपरेशन किया जा सकता है। 20 अगस्त, 2012 को बर्मिंघम के एक मॉडर्न अस्पताल में ऑपरेशन हुआ और वह अब धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहे हैं। उनके इस अनुभव का परिणाम हैं ये कविताएं।

(–सम्पादक)

पेट

क्यों? शरीर में
पेट डाल कर
तुमने उसमें
संदोलन की वृत्ति बना दी
जठराग्नि लगा दी
तुष्टि पूर्ति की चाह जगा दी।

इसी पेट के कारण जीवन में
द्वंद्व बढ़े हैं
सीमाओं पर युद्ध हुए हैं।
मानवता का रक्त बहा है।
हर गरीब मां को यह कहते पाया है–
''मैंने तेरा पालन पोषण
पेट काट कर रोज़ किया है
इसकी लाज़ न जाने देना
ममता से वरदान लिया है।''
कुछ वर्षों से ''जिस्ट''
पेट में पनप रहा था
जिसके कारण पेट कट गया
अब भोजन की मांग न होगी
अब जीवन में द्वंद्व न होगा
सोच यही मन शान्त हो गया।

✦

अर्बुद

धीरे-धीरे, चलने वाला
कम गिरता है
धीरे-धीरे, उठने वाला
केवल ऊपर को उठता है
जो प्रपात सा गिर कर बहता
बहुत दूर तक, वह चलता है।

सुख आनन्द कहां मिलता ?
यह कौन जानता।

अंधियारे में प्रकाश है
सभी जानते
हर दुख में सुख छिपा हुआ है
सभी मानते
जल मुट्ठी में मगर पकड़ना
सभी चाहते
मसल सूर्य की किरणों को
सब शक्ति खोजते।
अर्बुद कोई भी
कैसा भी हो सकता था
धीरे-धीरे बढ़ कर इसने
''जिस्ट'' नाम से मुझे नवाज़ा
औ वरदान दिया जीने का
लेकिन क्यों ?
यह नहीं बताया।

✦

मोड़

भोजन नलिका
औ
आमाशय के
छिपे मोड़ सा
जीवन में जब
नया मोड़ आ जाता है
नव संगीत रचाता है
कुछ गाता है, मुस्काता है
अन्तर्मन को कभी भिगो
कुछ रोता और रुलाता है।
जब तक भेद नहीं खुलता
केवल तब तक,
उहापोह के चक्रव्यूह में
मानव मन भरमाता
फंसता जाता है।
बातिन आंखें कब
अर्बुद को देख सकी हैं ?
घाव खुला जब -
रक्त बह गया
आमाशय का चित्र मिल गया
सारा का सारा तब तो
ब्रह्माण्ड दिख गया
और अजाने उदर दर्द का
स्रोत मिल गया।
भेशज क्या उपचार करेगा ?
अर्बुद का आचरण कहेगा
और व्याकरण से जिसके ही
उसको उत्तम मार्ग मिलेगा
सूक्ष्म निरीक्षण एवं परीक्षण ने जतलाया
इस अर्बुद का नाम ''जिस्ट'' है
बहुत बड़ा हो जाने पर भी
शल्य चिकित्सण हो सकता है।
सबके चेहरों पर
नव उल्लास छा गया
लगा पवनसुत ले पूरा
पहाड़ आ गया।

✦

''जिस्ट'' क्या है...

तन में मन में
अंदर बाहर
समानान्तर कुछ होता रहता...
कालांतर में कभी-कभी यह
अपना परिचय दे जाता है।
इनमें से ही
एक व्याधि को
भेषज अर्बुद कहता है
स्ववृद्धि के कारण
जिसने तन में
सही जगह का चयन किया है
औ रोगी को रुग्ण किया है।
अर्बुद नहीं बताया करता
निज होने का अता पता
और अधिकतर अंत समय तक
मौन नहीं वह अपना तजता
आमतौर पर, हर अर्बुद
घातक होता है
जो भेषज की बात न सुनता
पुस्तक के अंतिम पन्ने पर
नाम लिखा, फिर चल देता है।
आमाशय में जगह बना कर
''जिस्ट'' सदा बढ़ता जाता है
इर्द-गिर्द सबको अपना अहसास जताता
अंदर को ही अगर बढ़ा तो
खाने-पीने में दिक्कत ला

है अपना उपचार कराता।
मैत्रीमय स्वभाव के कारण
भेषज इसका स्वागत करता है
धीरे-धीरे यह वर्षों तक
बाहर को बढ़ता रहता है
लिवर, लंग, स्प्लीन आदि पर
अपना असर दिखा सकता है
''ज़िस्ट'' बिनाइन या
मैलिग्नेंट हो सकता है।
शल्य चिकित्सण योग्य रहा तो
आमाशय का हनन हुआ है
कभी पूर्ण तो कभी आंशिक
जठराग्नि का अंत हुआ है
नव मानव का
जन्म हुआ है।

✦

मां

''पुकारो न मुझको
मेरी मां अभी तुम
नहीं मां !
अभी मैं नहीं आ सकूंगा
बताऊं तुम्हें क्या
जिसे सब पता है
कहां, कब, क्या, क्यों
कैसे घटा है ?
न भूलो मेरी मां
फ़रमान अपना
अधूरा उसे मां
नहीं मैं धरूंगा।''

''माना कि तुम भी
सही कह रहे हो
धरा को तुम्हारी
ज़रूरत अभी है
मगर देखती
तुम, अकेले बहुत हो
गैरों ने तुमको उठाया
यह सच है
अपनों ने तुमको गिराया
यह सच है
दुनिया से तुमने
नहीं हार मानी।
छोड़ो धरा को
मेरे पास आओ
मुझको तुम्हारी
ज़रूरत पड़ी है
जो अन्याय मैंने
तुम पर किया था
उसे ठीक करने
की आई घड़ी है।''

''तुमको ज़रूरत मेरी मां
अगर है
धरा पर ठहरना न होगा हमारा
बहुत शीघ्र मां
मैं चलूंगा यहां से
बेटे-बहू से जरा बात कर लूं।''

''बेटे! अपना धर्म निभाओ
अब जाती हूं
फिर आऊंगी
ध्यान रहे
हूं साथ तुम्हारे
साया बन कर
सदा चली हूं
और वही करती
करती जाऊंगी।
शीघ्र निरोग तुम
हो जाओगे
कैंसर तुम्हें न मारेगा
और एकता के परचम को
ऊंचा तुम लहराओगे।''

(दर्द के एहसास को कुछ करने के लिए तरह-तरह की दर्द-नाशक दवाइयों का प्रयोग किया गया था। मॉर्फीन के बाद मैं विभ्रम (हैल्यूसिनेशन) की स्थिति में आकाश मार्ग से उड़ते हुए दिवंगत मां के पास पहुंच कर उनसे बातें करता रहा। इस कविता में वह वार्त्तालाप है जिसमें मां यह संकेत करती है कि 1958 में मैंने तुम्हारे से जो अन्याय किया था, तुम्हारी रचनाओं को अपने पास रख कर जो अन्ततोगत्वा बुरादे की अंगीठी को सुलगाने में नष्ट हो गई थीं, उसकी एवज़ में मैं कुछ करना चाहता हूं।)

- डॉ. कृष्ण कुमार

✦

बहती ख़लाओं का वो आवारा टुकड़ा

कभी देखा था इसे
पलक झपकती रौशनी के बीच
कहीं छुपछुपाते हुए,
जहां क्षितिज के सीने में उलझी मृगतृष्णा
ढलती शाम के कदमों में दम तोड़ देती है।

और कभी
हवा के झोंकों में लिपटे
पत्तों की सरसराहट में
इसकी मध्यम सी आवाज भी सुनी थी मैंने
और कभी–
यह उसी भीनी हवा के झोंके सा
छू कर निकल गया था मुझे हलके से
कभी
फूल-फूल में
इसकी खुशबू भी चुनी थी मैंने!
कभी
इसने मुझे अपनी बाँहों में कैद करके
जकड़ के रख लिया था
अपने सीने की असीम तड़प के चंगुल में

बहती ख़लाओं का
वो आवारा टुकड़ा–

पल-पल मेरे साथ
चलता भी रहा
जलता भी रहा–
जिसे संजो के रख लिया
एक दिन मैंने
दिल की हर एक धड़कन में
और महसूस किया
उसकी खुशबू को
बहते पलों के अविरत झुरमुट में।

देखा है आज उसे पहली बार
मन के स्पष्ट दर्पण में
सुना है आज उसे ज़मीन की
उभरती साँसों के निरन्तर स्पंदन में
छुपा लिया है इसे
हर पल के बहते हुए
हर एक रंग में।

बहती ख़लाओं का
वो आवारा टुकड़ा–
घुल चूका है मिश्री-सा
मेरे जीवन के अविरल मिश्रण में।

✦

ओस की एक बूँद

ओस में डूबता अंतरिक्ष
विदा ले रहा है
अँधेरों पर गिरती तुषार
और कोहरों की नमी से।

और यह बूँद न जाने
कब तक जियेगी
इस लटकती टहनी से
जुड़े पत्ते के आलिंगन में।

धूल में जा गिरी तो फिर
मिट के जाएगी कहाँ?

ओस की एक बूँद
बस चुकी है कब की

मेरे व्याकुल मन में।

✦

माणिक

सपनों के सपाट कैनवास पर
रेखाएँ खींचता
असीम स्पर्श तुम्हारा
कभी झिंझोड़ता
कभी थपथपाता
कुछ खाँचे बनाता
आँकता हुआ चिन्हों को
रंगों से तरंगों को भिगोता रहा
एक रात का एक मखमली एहसास।

कच्ची पक्की उम्मीदों में बँधा
सतरंगी सा उमड़ता आवेग

एक छलकता, प्रवाहित इंद्रधनुष
झलकता रहा गली-कूचों में
बिखरी सियाह परछाइयों
के बीच कहीं दबा दबा।

रात रोशन थी
श्वेत चाँदनी सो रही थी मुझमें
निष्कलंक!
अँधेरों की मुट्ठी में बंद
जैसे माणिक हो सर्प के
फन से उतरा हुआ।

सुबह का झुटपुटा
झुकती निगाहों में
बहती मीठी धूप
थम गया दर्पण दिन का
अपने अख़्स में गुम होता हुआ।

और तब
थका-हारा, भुजंग-सा
दिन का यह सरसराता धुँधलका
सरकता रहा परछाइयों में प्रहर-प्रहर।
नींद में डूबी अधखुली आँखों के बीच
फासलों को निभाता यूँ दर-ब-दर
साथ चलता रहा मेरे
एकटक आठों प्रहर।

✦

मोहन राणा (बॉथ-ब्रिटेन)

मौसम

उसके बारे में बात करते आपस की सहमति हमारी
बसंत नहीं अब गरमियाँ ही सही
जून में ना हो तो जुलाई
कपड़ों को बदलने, धोने, सुखाने दस दिन तो धूप आएगी ही,
रजाई का तो कवर ही बदलता हूँ बारह महीने।

✦

मेरी नहीं किसी और की शायद

मैं उन्हें बार बार पढ़ता रहा
मेरा पढ़ना सायास पर तुम्हारी आवाज सहज
तुम्हारे शब्द कटी पंतग से और मैं बौराया भागता
गिरता
निरस्त फिर भी खुश था
तुम्हें कविता के आकाश की ऊँचाई में खोता देख
वहाँ से पल को मुड़कर तुमने देखा हो मेरे अतीत को
कुछ पा लेने की दौड़ में पराजित
मैं बचाना चाहता था कविता को समय के क्षेपकों से।

✦

तड़ीपार

समय के अँधे लोग
देख सकते हैं वे अँधेरा सोचते कि
वे देख सकते हैं रोशनी को
पूछे कोई तो मैं चुपचाप चला हूँ दोपहर-शाम के बीच
जेलर के साये में बदली भरे दिन
हर साँस जैसे फेफड़ों के गर्त में टटोलती आक्सीजन अणु।

✦

साटी

मैंने कुछ पढ़ा और यह सोच चिंतित हो गया मैं सोच रहा हूँ
अनसुना करते हुए हमेशा की तरह भय को
शब्दों की तन्हाई में जो उमड़ पड़ता
मन में बजते एक बावले गीत की तरह,
गुम हैं जिसके बोल
चलती रहती है अवचेतन के अवकाश में
केवल धुन अबूझ

पुरखों को भी याद करें अगली बार अपने उत्प्रवास परिचय में
सबसे पहले किताब का जैकेट पढ़ते
मेरे दोस्त याद दिलाते हैं मुझे जैसे वे खुद हो याद दिलाते हों
कोई विस्मृति,
अपने-अपने पहाड़ का बोध-बोझ
प्रवासी-पहाड़ी-पहाड़वाद-पहाड़ के तीरथ यात्री
कृपया अपने तालाबंद पिठ्ठू को उठाये रखें
कतार में रहें टोकती रहती एक अदृश्य आवाज बराबर
मेरी जैविक गुड़ाई-निराई को,
दैनिक कौर को देर तक चबाता रहता हूँ ताकि साटी पच जाये
पर मेरी बेताल पच्चीसी पूरी नहीं होती

आजकल सूरज हाज़री दे सौंप देता आकाश बादलों को
हाल-फिलहाल कई दिनों से कई महीनों से अब गिनती भी नहीं
शायद साल दो साल
या तीसरा हो गया
अब ऊपर देख कोई सिर हिलाता भी नहीं छतरी तले
कभी घने कुछ बादलों की छटा देख भ्रम होता उदात्त पर्वतश्रंखलाओं का
हिमालयो नाम नगाधिराज:

(साटी-मोटा लाल चावल जिसकी उत्तराखंड में खेती होती है)

✦

ओट

चहचहाना सुन मैंने देखा बाहर
रोशनी की ओर
मुझे आशा याद आई
मैंने खिड़की को पहचाना
मैं पेड़ बन गया उसे देख
बादल बना बरसा और
भीगते हुए तुमने पोंछा मुझे अपने चेहरे से,
आवारा आवोहवा के ज़माने में
पूँजी क्या प्रेम भी हो गया है ग़ाफ़िल,
मैं बनाए रखना चाहता हूँ निराशा के लिए जगह अपनी शब्दों में
कि आशा खोजने वालों को हताशा ना हो कविता में।

✦

रेखा मैत्र (अमरीका)

पलों की किरचें

ये जो पल-क्षण
भीतर तोड़-फोड़ मचाते हैं
मुझे धराशाई कर जाते हैं
अगर मैं इन्हें बाहर देख पाती
तो कीड़े की तरह उठा कर फेंक देती
पर, अन्दर की किरचें बटोरना
मुश्किल-सा काम है
एक न एक टुकड़ा
छूट ही जाता है
और मन की तहों में
चुभता-टीसता रहता है !

✦

रूह की आज़ादी

लो कर दिए अब रिश्ते
नामों की कैद से आज़ाद मैंने
उड़ने लगे अब वे खुले आसमान में
अपने खूबसूरत पंख फड़फड़ाते !

देर तक इन्हें पिंजरों में
हिफ़ाज़त से बंद रखा था
बाहर जीव-जंतुओं का
खतरा जो बहुत था !

जब पिंजरों के सींखचों से
सर पटकते पाया इन्हें
इनके लहूलुहान माथों ने
समझाया मुझे
कि बाहर के खुले
आसमान में
ज़ख़्म तो इन्हें लगेंगे ही
पर, वे भरेंगे भी
रूह तो ज़ख़्मी नहीं होगी !!

✦

उँगलियों की फ़ितरत

रेत पर लिखी हुई
तहरीर मिट ही जायेगी
वक्त के समंदर का
एक तेज़ ज्वार जो आएगा
साहिल की सारी इबारतें
समेटता चला जाएगा !

यह और बात है
कि लिखना उँगलियों की फ़ितरत है
मिटने के डर से
उँगलियाँ कहाँ थमती हैं
उन्हें रोशनाई मयस्सर न हो
तो भी वे लिखती हैं
लिखना उनकी फ़ितरत जो है !

✦

होली

दिन के अंतिम प्रहर में
सागर की लहरों से
सूरज को देखा होली खेलते !

ढेर सा अबीर अपने
चेहरे पर मले
लहरों पर रंगों की
पिचकारी फेंकता रहा।

लहरें भी आख़िर
कितना बचतीं-बचातीं
भीग-भीग गईं !

सारी क़ायनात में
रंग बिखर -बिखर गए
और, मैं उन रंगों में
डूब-डूब गयी !!

✦

स्विट्ज़रलैंड की एक शाम

पहाड़ों की गोद में
नन्हीं बच्ची सा
दुबक गया है मन !

इन पहाड़ों ने मन को
कुछ ऐसा उछाला है
जैसे बचपन में बाबा
हवा में गेंद सा
उछाल देते थे !

बीच में ये गोल झील
फिरोज़ी चूड़ी-सी दिखती है
जो कभी मेरे बाबा लाये थे
सिर्फ मेरे लिए !!

आज इन पहाड़ों ने
फिर वही उपहार दिया है
इन नज़ारों की सूरत में !!!

✦

शैलजा सक्सेना (कनाडा)

आज की कविता

कविता आज
भरे पेट की सच्चाई है
भूख ने तो जाने किस-किस प्रभु की लीला ही गाई है।

कविता आज भोंपू है
चुटकुलों सा बजता है
समय का सताया आदमी खूब
देर तक हँसता है।

कविता प्रेम का नगाड़ा है
इतना पीटा-इतना पीटा
कि चमड़ी ही उधेड़ डाली है।

कविता ने शब्दों को ऐसा घिसा-ऐसा घिसा
कि शनिदेव के तेल के कटोरे ने भी
पहचानने से मना कर दिया

नेता, अभिनेता और धन-देता
के सामने मोल बिकी बाज़ारू औरत सी
कविता ठुमके लगाती है
वाह-वाह पाती है।

कविता तेरे बदन पर पैर रख
कौन-कौन, कहाँ-कहाँ चढ़ गया
हाय-हाय, आज आदमी कितना पिछड़ गया।

✦

अम्मा

सुबह से शुरू हो जाती है अम्मा की बुड़-बुड़
महरी साफ नहीं करती बर्तन
बस फैलाती है पानी,
पानी, जिसकी बूँद-बूँद अनमोल है,
बाबा भरते हैं रोज़ सुबह चार बजे,
घर के उठने से पहले...
महरी नहीं समझती, न समझता है कोई और,
जूठन लगे बर्तन पर, कोई और नहीं बरसता
बस बरसती हैं अम्मा।
सुबह से शुरू हो जाती है अम्मा की बुड़-बुड़।

झाड़ू वाली झाड़ती नहीं धूल, केवल झाड़ती है वक्त
दो-चार क़ागज़, मोटा-मोटा कूड़ा निकालती है
छोड़ जाती है ढेरों धूल,
जो किसकिसाती है पैरों में, पैरों से बिस्तर तक
और किसकिसाती है अम्मा की जुबान, अम्मा का दिल,
अम्मा की आँखें
सोने सी चमकती गृहस्थी को अब यूँ किसकिसाते हुए देख कर...
अब कोई काम नहीं करता, सिर्फ काम का नाटक करता है।
बाबा जी का किसकिसाता है अखबार पढ़कर,
समाचार सुनकर टी.वी. पर।
बहू-बच्चों का जी नहीं किसकिसाता
वे जानते हैं
अब वह ज़माना नहीं
ज़माना बदल गया है और वे भी इसी ज़माने के हिस्से हैं
पर क्या करें? बदलते नहीं बाबूजी,
बदलतीं नहीं अम्मा
किसकिसाता रहता है उनका जी
और सुबह से शुरू हो जाती है उनकी बुड़-बुड़,
काम नहीं, काम करने के इस नाटक पर।

✦

आवाज़ें...

दिन रात चलता ही रहता है टी वी
उसके कमरे में,
विदेशी भाषा में
बात करते लोग,
वह देखती तक नहीं टी वी की तरफ
घंटों,
पर दिन रात घिरी रहती है वह
अज़नबी आवाज़ों से...
डरती है.
चुप्पी से...
चुप्पी में बरबस उभर आने वाली
अपनी अकेली आवाज़ से,
जो दिन रात उचकती रहती है
मन के गलियारों में।
पुकारती है उसकी आवाज़,
आँखों के रास्ते बाहर निकल कर...
अपनी जायी आवाज़ों को,
पर लौट आती है उसकी पुकार खाली
उस तक,
चुभती है दुगुनी
मन में और आँखों में,
लाद देती है वह
अपनी आवाज़ पर,
परायी आवाजों के लिहाफ-कम्बल,
दबा देने को अपनी आवाज़,
जो दबती तो नहीं पर
घुट जाती है कुछ देर को...
इसीलिये दिन रात चलता ही रहता है टी वी उसके कमरे में...

✦

कनाडा में बसंत...

हवा, अपनी बासंती अँगुलियाँ
डैफोडिल्स और ट्यूलिप की खुश्बुओं में डुबो
लिख रही है धूप को निमंत्रण
अप्रैल के आखिरी पन्नों पर...
धूप बेखबर खेल रही है,
आँख मिचौली बादलों के संग।
उधर हवा,
पेड़ों को जगाती हिमनिद्रा से
घास को मुस्कुराने का आदेश देती,
कलियों का मस्तक सूँघती,
पाँव दबा, महकती, छलकती
फिर रही है यहाँ से वहाँ
पाहुन धूप के आने की तैयारी में जुटी...
अप्रैल के आखिरी पन्नों पर...

✦

पिछली रोटी

उसने कभी नहीं दी
पिछली रोटी
अपने पति और बच्चों को
....खुद ली...
जब भूलने लगी अपना होना
तो याद आया
माँ ने भी नहीं दी थी कभी उसे पिछली रोटी
कहा था, ''भूलने लगते हैं खाने से इसे''
वह भी तो भूल रही थी अब
ठीक माँ की तरह... अपना होना...।

✦

''सोये प्रेत''

अँधेरे में डूबे नुक्कड़
इक्के-दुक्के चलते
कदमों की आवाज़ें
प्रेतों सी उभरतीं
मटमैली परछाइयाँ
कहीं-कहीं
हांफती हुई सड़क पर
दिखती है
स्ट्रीट लाइट की चमक
जहाँ फुटपाथ पर कुछ
लाशें बिछीं हैं

पर कुछ जम्हाइयाँ
कुछ करवटें
कुछ खांसी से उखड़ती
चलती साँसें
अहसास कराती हैं
कि अब भी
उनमें कुछ जान
बाकी है।

✦

''कुदरत का खेल''

कैसा खेला खेल भयंकर
पर्वत-पर्वत ढह गये
बिसर गये परिवार पलों में
जल में लोग बह गये।

नभ ने रोकर भर दीं नदियाँ
धरती और पाताल
हर पत्थर चीख रहा है
आ गया उनका काल।

भू का वक्ष फटा जैसे ही
समा गये घरौंदे
पेड़ उखड़कर जड़ समेत
गिरे लुढ़ककर औंधे।

चलते-फिरते लोग बन गये
टूटे हुये खिलौने
शव बहते हैं तिनके जैसे
फैले विपदा के डैने।

मोहक दृश्य हुये विलुप्त
नष्ट हुये आवास
कुदरत का है रूप विद्रूप
सब कुछ हो गया नाश।

✦

''यह कैसा जीवन''

कितना है अस्थिर
ये जीवन
फिर भी प्रतिपल
मन में मंथन
छाते समय चक्र में
जब घन
ग्रहण ग्रसित कर जाते
बंधन स।

माया, मोह, कटुता के नाग
रखना ना इनसे अनुराग
इनका विष साँसों में घुलकर
जीवन बन जाता है झाग।

फिर भी...हाँ फिर भी.....
जकड़े रहते हैं
कितने बंधन
हर दिन इनकी होती
झन-झन
जब अंधकार में हो
डूबा मन
आस की ज्योति थिरकती
छन-छन।

यह कैसा जीवन ?

✦

''चंदा तुम रूठ ना जाना''

कोई सूरज की तारीफ करे तो
चंदा तुम ना होना गुमसुम।
सूरज की साँसों की गर्मी
करती है भू का उर्वर तन
और तुमसे शीतलता पाकर
कण-कण में होता परिवर्तन
है दोनों की ही हमें ज़रूरत
भू पर मुस्काना दोनों तुम।
कोई सूरज की तारीफ करे तो
चंदा तुम ना होना गुमसुम।

मौसम के कई रूप बदलते
कभी पतझर या फिर बसंत
पर तुम दोनों अटल सदा से
नभ पर करते साम्राज्य अनंत
तुम पर है सारा जग निर्भर
क्या होगा वरना क्या मालूम।

कोई सूरज की तारीफ करे तो
चंदा तुम ना होना गुमसुम।

निशा जभी फैलाये आँचल
तो रजत चाँदनी देती ताल
भोर की आभा जब आती है
किरणें भू पर फैलातीं जाल
संझा होते ही क्षितिज पार
जैसे घुल जाता है कुमकुम।

कोई सूरज की तारीफ करे तो
चंदा तुम ना होना गुमसुम।

✦

''संध्या बेला''

रंग बिखरा सांवला गोधूलि बेला में
खामोश सी दिशायें हो रहीं अनमनी
पंखुड़ियाँ फूलों की बिखरीं टूटकर
झकझोरे पेड़ों को पवन सनसनी।
तरु-तड़ाग में ना हो रही हलचल
आँखों को मूंदे सोई है कुमुदिनी
शाम का आँचल फिसला है धरा पे
रात की पलकें भी हो रही हैं घनी।
नभ पर मुस्कुराता है चाँद मंद-मंद
शाखों में उलझी-उलझी सी चाँदनी
आँचल संभाले काजल को डाल के
तारों की ज्योति में ठिठकी है यामिनी।

✦

शिखा वार्ष्णेय (ब्रिटेन)

गट्ठे भावनाओं के

जब भी कभी होती थी
संवेदनाओं की आंच तीव्र
तो उसपर
अंतर्मन की कढ़ाही चढ़ा
कड़छी से कुछ शब्दों को
हिला हिला कर
भावों का हलवा सा
बना लिया करती थी
और फिर परोस दिया करती थी
अपनों के सम्मुख
और वे भी उसे
सराह दिया करते थे
शायद मिठास से
अभिभूत होकर,
पर अब उसी कढ़ाही में
वही बनाने लगती हूँ
तो ना जाने क्यों
आंच ही नहीं लगती
थक जाती हूँ
कड़छी चला चला कर
पर लुगदी भी नहीं बनती अब
और बन जाते हैं
गट्ठे भावनाओं के
इंतजार में हूँ कि
कोई झोंका आकर बढ़ा जाये
कम होती आंच को
तो इन गट्ठों को गला कर
परोस सकूँ अपनों के समक्ष।

✦

ज़िद्दी वजूद

सुनसान सी पगडण्डी पर
जो हौले-हौले चलता है,
शायद मेरा वजूद है...
जो करता है हठ,
चलने की पैंया पैंया
बिना थामे
उंगली किसी की,
डर है मुझे
फिर ना गिर जाये कहीं
ठोकर खाकर,
नामुराद
ज़िद्दी कहीं का।

✦

हौंसले का टिकिट

हमने भेजी एक चिट्ठी आसमां को
कि चाहिए थोड़ी जगह तेरे जहाँ में
उसने लौटा दी चिट्ठी, कहा बैरंग है
पहले लगाओ टिकिट इसपे हौंसले का
फिर देखो ख़्वाब आसमान के

✦

कलम

एक डिब्बे में भरी
सुन्दर सुन्दर कलम,
लेती हैं जम्हाइयाँ,
कुछ बिसूरती हैं,
कुछ थक के सो गई हैं.
इस निगोड़े कीबोर्ड ने
उन सबको बेरोजगार कर दिया है.

✦

पक्की पहरन

रात के शामियाने में
ख़्वाबों सी सिकुड़ी बैठी
बुनती हूँ चांदनी के
कच्चे धागों की पहरन
देने को सूरज को रिश्वत
जो कल निकलेगा फिर से
कि वो दे दे थोड़ी धूप अपनी
सुखा दे ये सीले सपने
पर सुबह होते ही
टूट जाते हैं वे कच्चे धागे
बिखर जाते हैं फंदे
सूरज आता है
फिर चला जाता है
नहीं सुखा पाती
अपने सीले सपने,

अब सोचती हूँ
इसी सूरज की किरणें ले
बुनूँगी पक्की सी पहरन
जो नहीं टूट सकेगी
किसी से भी, कभी भी।

✦

उषा वर्मा (यॉर्क, ब्रिटेन)

कवि-कर्म

कभी सोचा न था
कवि कर्म
इतना कठिन होगा.
सरोकार ऐसे बदल जाएंगे।
बदली नजर चाँद की
विवश चाँदनी रो पड़ेगी
उतरी हिमालय से गंगा,
कोख़ में उसके कूड़ा ही कूड़ा,
कांप कर
यों ठिठक जाएगी।

धरती पर आते ही शिशु,
सांस लेने में
घबरा जाएगा,
धुआं बेपनाह धुआं
फेफड़ों में उसके
समा जाएगा।

मुरझाए शिशु मुख पर,
मां
मुस्कानों को खोजेगी
कभी सोचा न था।
काम से लौटते पैर,
उत्साह से
घर में न आएंगे
थकी ज़िंदगी को चाहिए,
साफ-सुथरी
अमृतदायिनी गंगा,
फेफड़ों में भरने को चाहिए,
स्वच्छ हवा।
होगी ऐसी दुश्वारी,
कभी सोचा न था।

✦

2. तुम्हारे आते ही

तुम्हारे आते ही
बेला महक उठा
मेघ भरे आकाश में
एक ध्रुव-तारा चमक उठा
हिमखंड पिघल कर
विस्तार पा गया
खेत खलिहानों में समा गया
इच्छाओं आकांक्षाओं के
तमाम पौधे लहलहा उठे
अग्निबाहु फैल कर तपिश के
तमाम राज खोल गया
और फिर तुम्हारे जाते ही
गुलाब की अरुणिमा
मेरी आंखों में बिछ गई
उस दिन जो संपूर्ण लगा था
क्यों रिक्त कलश सा ढरक गया
क्या तुम्हें मालूम है।

✦

पीछे देखना संभव कहां

पीछे देखना संभव कहां
आओ जीवन की राह खोजें
जिस तर्क का सहारा लेकर,
हम आगे बढ़े थे
उसे खा गई बाजार की साख।
वक्त का पहिया क्यों नहीं रुका?
हम धीरे-धीरे बनते गए रोबोट।
अच्छा, यह तो बताओ,
कौन छीन ले गया ?
हमारी संवेदनाओं को,
हमारे प्यार को,
जो तुम्हारे प्रति समर्पित था।
बिना बताए धीरे-धीरे छूट गया
वह अतीत
एक चमकती लकीर के पीछे भागा,
भागा तो,
पर मिला एकाकीपन।
कांपते पारे सा
मन का सूनापन।
विकल्पों का विस्तार
बचा एक रस जीवन।
रिश्ते जो रिश्ते नहीं थे
वे थे बाजार के लोहे,
लोहे के गठबन्धन।
क्या टूटेंगी ये इस्पात की जंजीरें?
ये कर्णभेदी आवाजें
क्या करें पीछे लौट जाएं?
आस्थाओं के कुहरे में
सजाने को अपनी अस्थियां
जहां आग हो, ऊष्मा न हो,
फिर पीछे देखना संभव कहां?
तो चलो,
रचें शब्दों के जाल
बहका दें दुनियां की भेड़चाल
जो न तारे देखते हैं, न सूरज, न आसमान
चले जाते हैं अपने पैरों को देखते हुए,
पर वे जो बेनूर ऊपर देखते हैं
चाँद को, तारों को, सूरज को
पर चलते नहीं। क्या फर्क है, उनमें जो पैरों को देख कर चलते हैं?
और वे जो बेनूर ऊपर देखते हैं
नया क्या है? प्रयोजन क्या है?
जीवन के आखिरी पड़ाव पर,
सब कुछ एक ही है,
एकाकार, निराकार. बेकार।

✦

सबेरा होने तक

जब सब कुछ बदल गया हो
दिशाएं हमें दिगभ्रमित करती हों।
हमारे चलने के पंथ,
दलदल से पांवों में फंस जाते हों।
कुछ लोग एक विश्वास को,
मणि-सा अंत:स्तल में
छिपा कर रखते हैं,
बार-बार उलट-पुलट कर निकालते हैं
उसकी रोशनी में मुस्कराते हैं।
ऐसे ही विकट समय में,
कुछ लोग सब कुछ,
भूल युद्ध में कूद पड़ते हैं।
खुद बेसहारा हैं. पर सहारा देते हैं।
अतीत से कटना एक संत्रास है,
अतीत में डूबे रहना
है उससे भी खतरनाक।
तब करनी है प्रतीक्षा,
दलदल सूखने तक।
जब तक सब बदल न जाये,
चुप रहना ही ठीक है,
सबेरा होने तक।

✦

लड़कियों के बेरोजगारी के दिन...

आएगा, राजकुमार एक दिन ज़रूर आएगा।
पहले लड़कियां विवाह न होने तक बेरोज़गार रहती थीं।
यह रोज़गार लड़कों से थोड़ा फर्क होता था।
सयानी लड़कियां मां बाप के लिए
अत्यंत चिन्ता का सबब होती थीं।
तब लड़कियां घर में बैठ कर
नए नए व्यंजन बनातीं, कुछ पेण्टिंग भी करती थीं।
प्राइवेट पढ़ कर कुछ क्वालिफिकेशन भी बढ़ाती थीं
पर उन्हें बिना पगार वाला रोज़गार(शादी)
बड़ी मुश्किल से मिलता था। पापा और पैसा बचाते थे
हर खर्च में किफायत करते थे।
पापा के चश्मे का नंबर बदल गया है
पर वे पुराने से ही काम चला रहे थे।
और वे सहेलियों में बैठ कर सपने देखती थीं,
कि एक राजकुमार आएगा, ज़रूर आएगा
ऐसी हमारी परम्परा है, सबकी शादी होती है।
कैसा भी ऑफर हो, इंकार नहीं कर सकती थीं।
मां बाप जहां भी भेज दें, बिना शर्त चली जाती थीं।
बेरोज़गार लड़का हो तो भी चलेगा।
उम्र पंद्रह साल ज्यादा हो तो भी चलेगा।
और तब हर लड़की बंधुआ मजदूर बन जाती थी।
कैसे होते थे वे लोग, वे दिन।
लेकिन अब लड़कियां सचमुच बेरोज़गार रह सकती हैं,
चाहें तो सारे जीवन स्वयं कमा कर खा सकती हैं।
जीवन अपनी तरह से जी सकती हैं।

(**नोट:** वागर्थ के एक अंक में एक कविता छपी थी 'लड़कों के बेरोज़गारी के दिन'। उससे प्रेरित होकर यह कविता मैंने लिखी थी। - उषा वर्मा)

✦

Tejinder Sharma (London - UK)

You are understandable

Why are you so easily
Comprehensible
Don't you know
He who is great,
To understand whom
A lifetime it takes.

A simple person
An easy poem
Uncomplicated story
A straightforward movie
A life ordinary
Who cares?

It's imperative
For an easy saying to be intricate
As complexity is the criterion
Of quality.

✦

Futility of a poem – Brahmin versus A Dalit

I do not have to write any poems
For History doesn't transform with poetries
Nor do the traditions get changed.

No, I am not remorseful
Nor do I carry any sense of guilt!
For, having born in a particular class of family
was not decision of my own.
Was this a choice either theirs or yours?
The wrongs which I have never committed
Why must I carry on my shoulders,
The burden of repentance of those!

They did what they thought was right
But I could not do, as them
Though they have also not penned any poems
And
I too will not write any of them.

Inscribing poems will only
vent my aggravations
This never will alter their fate,
Whose shadows even made my ancestors
Impure!
Talks are just talks,
Which can never change destiny's course.

I have to strive hard,
I must have to mingle with them,
I shall not beg for pardon
But will ask for a lifetime's bonding
From them.
I shall savor the taste of the morsels
Of the same bread
Shared by each of them.

I shall go to their dwellings
To realize their perceptions
I shall not get tainted by their touch.
Sitting with them
I shall enjoy my evenings
Not under any quota of reservations,
But for the sake of bonding of hearts.

No, I do not have to write any poetry
As, I have to make over a history.

✦

I wish to know them

I wish to understand relationships
I am striving still
Relations slip away
As they are like silk.
They slip past the hands
Of rugged human beings
And get lost

Some relations were my own
Since before even my birth
Some I made
And wanted them to be mine
But, when they remain your own?

They hurt, they pain
They say, but never consider you their own
They make you cry, they forget you
They make you habitual of all pains

There were some relations
Like a warm blanket in the chill
Like a breeze
Without electricity, in the scorching noon's.
Where have they disappeared all of a sudden
The relationships,
I wish to know.

✦

You ask me

You ask me
Whether I remember
My homeland or no!

Chaat of Delhi
Mumbai's bhel-puri
Do they come in my dreams or no!
Dosas, idlis and paani-puris
Do they still poke my taste-buds or no!

You ask me
Do I miss my friends or no!
I can read in your eyes
The question, whether
Yearning eyes of my mother
In the nights, brim my eyes
With tears or no

Your questions remind me
Time and again
That living in this nation
Have I turned a traitor to many things?

But it's not true my friend!
Whenever I pass by the South-hall
Chandni chowk of Delhi comes alive
The same aroma, the same flavor
and the same dialect
All is same and alike.

Ealing road assures me
That I am not far from Mumbai
The saree shops, V.D & Sons
Lentils and ingredients seem
To be brands of our own
The same pickles, soaps and herbal pastes
Nothing has changed.
Seeing them it seems
My homeland has
Come along with me.

This is also but true
At times it happens so
That I grow alone.
Even after years
I cannot utter
Incorrect English like here
Though, after even speaking correctly
I fumble for my nose
Hoping that out of shame
I have not
Got cut my nose.

I remember those eyes
Which would fill with joy
On receiving a telephone call
And would tell the whole neighborhood
That it was a call from his son
Even those would drift into memories
Who were just casual relations.

I stop
Get perturbed
And become thoughtful
Thereafter get slowly into
Whatever daily I do
I dress-up
Tie-up the laces of my shoes
And start walking as usual
Towards the railway station.

✦

Slow down your speed a bit

Walking with you I have grown tired
Slow down your speed a bit

Do not appear in the newspapers
Stop making foes a bit

Everyone gets jealous of your name
Stop showing in public a bit

All humans are not the same
Refrain criticizing sometimes a bit

You will not succeed changing anyone's nature
Slow down in your efforts a bit

✦

Why are relations not lasting

Today the eyes are heavy
The lids are not ready to open
The words from your lips
Have settled down on my lashes

Whatever you say
Or you do not
Nothing is insignificant
The veracity of the words is its reality

Making of relationships,
Its breaking, frittering away and decay
It makes you feel
Why relationships cannot be lasting

Glittering sunshine
Dense clouds are in thoughts that
In the horizon what shall ensue
The sunshine will infuse into the clouds

✦

प्राण शर्मा (कॉवेण्टरी - ब्रिटेन)

(1)

थक कर चकनाचूर हुआ था दूर सफ़र पर जाते-जाते
क्यों न भला खुश होता राही घर को वापस आते-आते

क्यों न तपस्वी जैसा लगे वो दुनियाँ वालों की नज़रों में
रूखी-सूखी खाता है जो हँसते-हँसते, गाते-गाते

कोई कब तक बोझ उठा कर जीवन का चलता जाएगा
पनहारिन भी थक जाती है जल के कलसे लाते-लाते

कितना निष्ठुर था परदेसी लौट गया जो देके दिलासे
मृग जैसे ओझल होता है अक्सर मन को भाते-भाते

झूठ है कितना सच है कितना प्यार में उसके राम ही जाने
रात बितायी उसने यूँ तो मेरी कसमें खाते-खाते

मुमकिन है के बनते-बनते काम किसी मानुष का बिगड़े
कभी हवा हो जाता ही है मेघ गगन में छाते-छाते

डोली में बैठी दुल्हन भी इतनी नहीं शरमाई होगी
'प्राण' खुशी शरमाई जितनी मेरे घर में आते-आते।

✦

(2)

दुनियाँ भर के धनियों से भी ज़्यादा मालामाल समझना
अच्छा मीत अगर मिल जाए अपने को खुशहाल समझना

जैसे-तैसे मेरे प्यारे अपना बढ़िया हाल समझना
सुख से वक्त बिताना है तो दुख को मत जंजाल समझना

प्रेम के पथ पर चलने वाले सोच-समझ कर प्रेमी बनाना
जिसके मन में प्रेम नहीं है उसको तू कंगाल समझना

मुमकिन है, अपना भी कोई वार करे पीछे से लेकिन
पीछे से हथियार चलाना, दुश्मन की ही चाल समझना

सपने झूठे कहने वाले, सपने भी सच्चे होते हैं
सपनों में नित चाँद दिखे तो अपना काल समझना

सब्र की दुनिया में आये हो, आज के बाद हमेशा को तुम
कश्मीरी सेबों के जैसे, अपने दोनों गाल समझना

अपनी मनवा पाया नहीं है, अपने ही लोगों से जो भी
'प्राण' उसका कम्बल को ओढ़े, रोगी जैसा हाल समझना।

✦

पूर्णिमा वर्मन (शारजाह - यू.ए.ई)

(1)

बाँधकर ढोया नहीं था आसमाँ
हमने पर खोया नहीं था आसमाँ

राह में तारे बहुत टूटे मगर
दर्द से रोया नहीं था आसमाँ

हाथ थामे चल रहा था रात दिन
थक के भी सोया नहीं था आसमाँ

फिर ज़मीं समझा रही थी रौब से
क्लास में गोया नहीं था आसमाँ

चाह थी हर एक को उसकी मगर
खेत में बोया नहीं था आसमाँ

किस तरह बूँदें गिरीं ये दूब पर
रात ने धोया नहीं था आसमाँ

✦

(2)

दर्द में कुछ इस तरह आया करो
ठहरा-ठहरा चैन बरसाया करो

जब हवाओं में उमस होने लगे
खुशबुओं के फूल चुनवाया करो

हर तरफ उड़ते हुए तूफान हैं
एक तिनका ओट रख जाया करो

जब धुआँ तनहाइयों का घेर ले
याद की चादर में सो जाया करो

ज़िंदगी में दूर तक जाना तो है
छाँव में पल भर को सुस्ताया करो

✦

श्रद्धा जैन (सिंगापुर)

(1)

जब हमारी बेबसी पर मुस्करायीं हसरतें
हमने ख़ुद अपने ही हाथों से जलाईं हसरतें

ये कहीं ख़ुद्दार के कदमों तले रौंदी गईं
और कहीं ख़ुद्दारियों को बेच आईं हसरतें

सबकी आँखों में तलब के जुगनू लहराने लगे
इस तरह से क्या किसी ने भी बताईं हसरतें

तीरगी, खामोशियाँ, बेचैनियाँ, बेताबियाँ
मेरी तन्हाई में अक्सर जगमगायीं हसरतें

मेरी हसरत क्या है मेरे आंसुओं ने कह दिया
आपने तो शोख़ रंगों से बनाईं हसरतें

सिर्फ तस्वीरें हैं, यादें हैं, हमारे ख़्वाब हैं
घर की दीवारों पे हमने भी सजाईं हसरतें

इस ख़ता पे आज तक 'श्रद्धा' है शर्मिंदा बहुत
एक पत्थरदिल के कदमों में बिछायीं हसरतें।

✦

(3)

किसी उजड़े हुए घर को बसाना
कहाँ मुमकिन है फिर से दिल लगाना

यकीनन आग बुझ जाती है इक दिन
मुसलसल गर पड़े ख़्वाहिश दबाना

वो उस पल आसमां को छू रहा था
ये क्या था, उसका चुपके से बुलाना

ये सच है राह में कांटे बिछे थे
हमें आया नहीं दामन बचाना

हवा में इन दिनों जो उड़ रहे हैं
ज़मीं पर लौट आएँ फिर बताना

गिरे पत्ते गवाही दे रहे हैं
कभी मौसम यहाँ भी था सुहाना

परिंदा क्यूँ उड़े अब आसमाँ में
उसे रास आ गया है कैदखाना।

✦

(2)

अजनबी ख़ुद को लगे हम
इस क़दर तन्हा हुए हम

उम्र भर इस सोच में थे
क्या कभी सोचे गए हम

ख़ूबसूरत ज़िंदगी थी
तुम से मिलकर जब बने हम

चाँद दरिया में खड़ा था
आसमाँ तकते रहे हम

सुबह को आँखों में रख कर
रात भर पल-पल जले हम

खो गए हम भीड़ में जब
फिर बहुत ढूँढे गए हम

इस ज़मीं से आसमां तक
था जुनूँ उलझे रहे हम

ज़ीस्त के रस्ते बहुत थे
हर तरफ रोके गए हम

लफ्ज जब उरियाँ हुए तो
फिर बहुत रुसवा हुए हम

जागने का ख़्वाब ले कर
देर तक सोते रहे हम

तेरे सच को पढ़ लिया था
बस इसी ख़ातिर मिटे हम।

✦

(4)

जाने वाले कब लौटे हैं क्यूँ करते हैं वादे लोग
नासमझी में मर जाते हैं हमसे सीधे सादे लोग

पूछा बच्चों ने नानी से–हमको ये बतलाओ ना
क्या सचमुच होती थी परियां, होते थे शहजादे लोग ?

टूटे सपने, बिखरे अरमां, दाग-ए-दिल और ख़ामोशी
कैसे जीते हैं जीवन भर इतना बोझा लादे लोग

अमन वफ़ा नेकी सच्चाई हमदर्दी की बात करें
इस दुनिया में मिलते हैं अब, ओढ़े कितने लबादे लोग

कट कर रहते-रहते हम पर वहशत तारी हो गई है
ऐ मेरी तन्हाई जा तू, और कहीं के ला दे लोग।

✦

(5)

पेड़ के फलदार बनने की कहानी रस भरी है
शाख लेकिन मौसमों के हर सितम को झेलती है

सैकड़ों बातें इधर हैं उस तरफ बस ख़ामुशी है
कैसे सपने देखती हूँ मैं ये क्या दीवानगी है

ग़र तुम्हारी बात पर हँसता है अब तक ये ज़माना
फिर समझ लेना अधूरी आज भी दीवानगी है

हों कभी शिकवे-गिले, तकरार, झगड़े भी कभी हों
रूठ कर ख़ामोश हो जाना तेरी आदत बुरी है

झूठ को सच, रात को दिन, उम्र भर कहते रहे, हम
तीरगी तो तीरगी है, रौशनी तो रौशनी है

नम हवाओं में तेरा एहसास ज़िंदा है अभी तक
तेरी खुशबू के तआक़ुब में भटकना ज़िंदगी है

रंग में दुनिया के आखिरकार हम भी ढल गए हैं
आईना भी अज़नबी है अब ज़हाँ भी अज़नबी है

अब मैं क्या अपना तआरुफ़ तुमको दूं ''श्रद्धा'' बताओ
ज़िंदगी ग़ज़लें मेरी, पहचान मेरी शायरी है।

✦

Grave Profits

✦ **Tejinder Sharma**

His face masked behind the smoke screen, Khalil Zaidi observed, "We have slaved away our lives in service. There has to be a way out. We shall not serve anymore. My friend, we have to find something new to do."

Lost in grave thoughts, Najam Jamal had a small sip of whisky. "What next?" Was the thought uppermost in their minds. Both of them were sick and tired of the drudgery of their routine. This was a dog's life. Something had to give.

For thirty years of their lives, Khalil and Najam had toiled away in the service of the company. The tales of their friendship go back a long time. Khalil does not drink and Najam is averse to smoking, but their habits have not come in the way of their friendship. Khalil Zaidi had joined the company as a young officer. His hard work and sharp mind had seen the company rise to the top-ten list of European financial institutions. Khalil commands a degree of respect amongst the London financial sector.

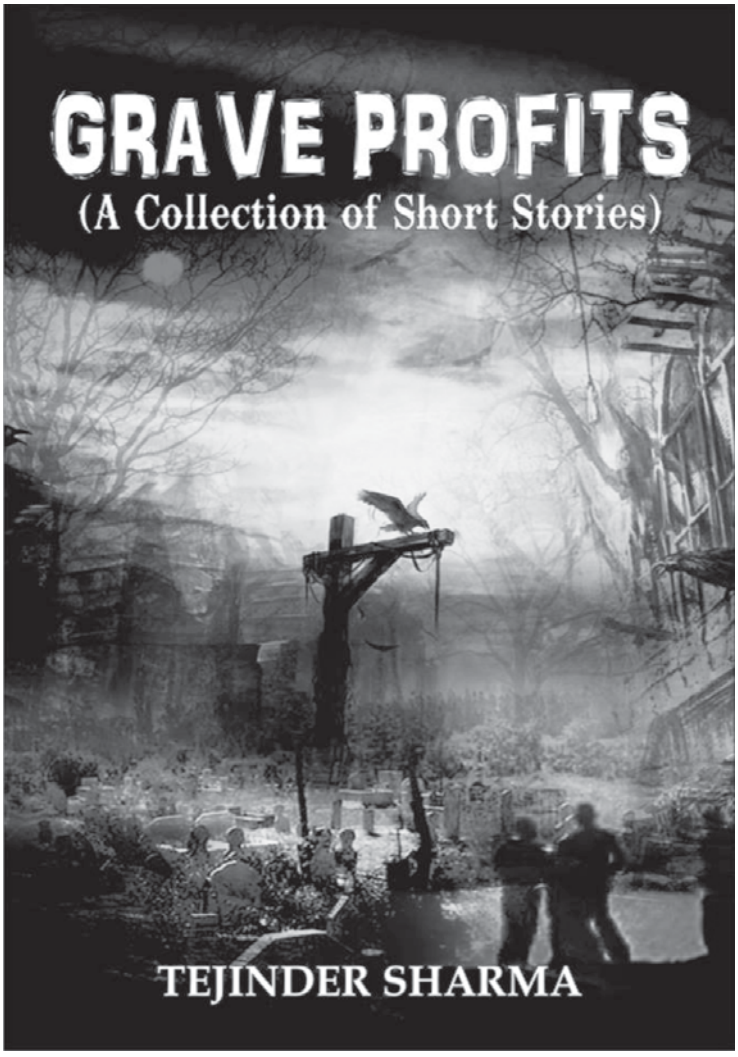

"Come to think of it Khalil dear, is it imperative that we work anymore? We have earned enough money to retire now. It is a huge temptation to spend the rest of our lives amongst our sons, daughters-in-law and grandchildren!"

"My friend, for the sake of others we put all our lives at stake. We took the company miles ahead. If we were to die tomorrow, no one is going to remember us. If we had put in the same amount of hard work for ourselves, the financial sector would have sworn by us."

"Khalil Bhai, the mention of death reminds me, have you booked the graves for Bhabijaan and yourself in Carpender's Park graveyard? The location, the look and the aura surrounding that graveyard is unique. All our lives, we have done nothing else but work. Let us find some peace in death." "Bravo my dear this is master-class, find peace in death! Remember that poet who said, where else shall we search if we do not find peace in death? My friend I am all for your idea, but your Bhabhi jaan has a bee in her bonnet about socialism. I will have a problem at my hands the moment she comes to know. Have you talked of it to your wife Abida? These daughters of Adam have always been a pain in the neck. Now you see..."

Najam cut him short, "Khalil Bhai we cannot do without them. They are a necessary evil. Moreover in this country we need them by our side to enjoy a social status. Japan takes the cake in this regard. Everyone keeps his wife and children away in the suburbs and lives with his work partner in the city flat. The very thought makes you feel good." It was obvious the whisky had done the trick.

"My friend, this blasted graveyard, can't it be exclusively for the Shias? Otherwise, after death we won't even know who we have as a neighbour in the next grave. After all, we don't want to be lying next to a Sunni or a Gujarati Topiwala. The very thought makes my skin crawl. If I had my way, I would have a graveyard with a hoarding saying loud and clear "Reserved for Shia Muslims."

"Now that surely is a remarkable point, Khalil Bhai. But this is not our Pakistan. Here we should be thankful to the white government for small mercies. We at least have a separate graveyard; otherwise we would have been condemned to be buried in the Christian graveyards. These people at the Carpender's Park have come up with a new scheme. For a ten pound monthly premium, they take the responsibility of giving you a grand burial. Their new pamphlet carries all the details. Bathing the dead body, putting on the new clothes, managing the coffin, Rolls Royce for the last ride and a marble plaque at the grave are all covered by this insurance."

"This, my friend, is brilliant. At least our children will not be feeling their pockets whilst burying us. I feel disappointed when I look at Irfan. Even at thirty-five years of age, he doesn't have the vaguest sense of responsibility. Yesterday he was talking of doing business in Karachi. He wanted me to arrange a hundred thousand pounds for him, as if pounds could be plucked from trees. Nadira has spoiled him. She is far too involved in social work. When she was needed by the children, she was busy paying homage to Karl Marx. That scoundrel Karl Marx died in an English home, yet all his life denounced Capitalism in his books, conclusively proving all Marxists live by double standards. The rascal ruined my family life. I have never been able to establish any communication with my children" sighed Khalil Zaidi.

It was all quiet for a while. Hauntingly quiet. Mild puff of the cigarette, the smoke leisurely rising upwards, a sip of whisky smoothly seeping down the throat, the crackling of the cashew nuts under the teeth – proved too much to handle for Najam. He burst out "Khalil Bhai, they have hit upon a brilliant idea. They say if someone were to die in an accident or fall victim to a blaze of fire and be disfigured, they would do some wonderful make-up so that the dead person would look young and attractive. People are likely to remember the face they see. We shall sell this idea to Nadira Bhabhi and Abida, they shall surely succumb to the temptation of looking dazzling in death… Stunningly beautiful like bride."

"There is no need to tell Nadira or Abida. My friend Najam, let us go ahead and book two graves each. Whenever the need arises we shall tell them."

"Oh that is sensational. I am in love with the idea. But if the need arises, how shall we tell them? Wake them up from the graves! What an idea, ha ha ha.

"Listen, ask them if they have a buy one get one free scheme. If they have such an offer, we can include our sons in the proposal. God has given us only one son each."

"Bhai Jaan, if Nadira Bhabhi gets a whiff of it, she will promptly jump at us shrieking: 'It smacks of favouritism, why leave out the daughters, what crime have they committed?'"

"You will never improve. Why indulge in scary talk? You know she was even prepared to marry Sumira into a Sunni family. What beggar's belief is the fact that she finds Shias, Sunnis, Aghakhanis and Bohras all alike. She says they are all Muslims and equal in the eyes of Allah. The indelible imprints of an Indian education still influence her thinking."

"Bhai Jaan, the Indian education is not that bad. After all Abida and myself are the products of the same educational system. In fact I am thinking of starting a business venture in Goa. A tourist resort is very appealing. To be honest, I still think of Meerut as my home city. It is forty years since we left India, yet Lahore still feels strange. This refugee stamp that is embossed on our foreheads makes us feel as unwanted as the sweepers and cobblers in India."

"You are surely intoxicated buddy. What are these mad ramblings? Remember Pakistan is our country. That is the long and short of it. This Hindu religion is a degenerate, vulgar and corrupt culture. The Hindu or the Indian education is all anti-Islamic. Look at their film industry, vulgarity personified. If I have my way, I would stand all Hindus in a queue and shoot them."

Khalil Zaidi's passionate outburst was of no interest to Najam. He was peacefully asleep. Probably, riding his winged fancy in his dreams, he had reached Meerut. That bus ride from Meerut to Delhi, that train journey and the first meeting with Abida, that first love culminating into marriage. Life was smoothly coasting along, like a train on the rail tracks.

Was it silken smooth for Abida and Nadira too? They both felt their husbands had no time for them. Their husbands provided money for the household expenses, but they made them account for every penny, as if they were company clerks answering to the boss. Neither of them ever felt as if they ruled supreme in their own homes. Their husbands were the lords. They were reminded time and again that they could not take even a small step without their

permission. Abida could openly talk away her agonies to Nadira Apa, but Nadira had to smoulder under the weight of her own disappointments.

Nadira had invested huge efforts and deliberate thought to bring about a marked change to her personality. She has pasted a permanent smiling mask to her face. Her husband's rebukes and reprimands, colourful language coupled with occasional backhanders had seemingly no effect on her. "Why do you smile all the time? Where did you learn the art of showing your teeth all the time? You don't react to my words!"

Nadira was perplexed. Her serious face left her husband sulking, her smiles confused him. He smelled intrigues and conspiracies lurking behind the shadows, for the way he treated her, all smiles and joys should have long melted away from her life.

Nadira had once suggested she take up a job. After all, she held a Masters degree from Lucknow University. Khalil Zaidi was flabbergasted. Arguments ensued. Calm was restored only after his fingers had left their imprints on her face. The episode resulted in Nadira spearheading an organisation that highlighted the plight of the migrant Pakistani girls that suffered maltreatment from their husbands and in-laws.

Khalil objected again, "strange are your ways madam. For once do something that can be a source of income to the household. But then why should you be bothered? You have a worker to slave away his life so that you can fritter away the earnings on your whims." Nadira has learnt not to react. The moment Khalil starts an argument, she leaves the room. She knows Khalil carries some psychological scars. He wants to control everything, every situation, every person. He is a control freak. He does it all the time at office and at home.

Abida and Nadira are both at home. Abida as usual is infront of the television, watching the film Lagaan. She is Aamir Khan's ardent fan. She watches all his films. She can have animated discussion on Aamir for hours. She does not like Pakistani films. They are far too loud for her liking. Her own husband is loud too, but that is something she can't rectify now. She is convinced Nadira Apa can do no wrong. To her all Nadira's words are etched in stone.

Nadira too has drawn a line between Khalil and herself. She does not interfere in whatever he does. But Khalil is disturbed by Nadira's new-found independence. Ever since he has taken charge of the household expenses, Nadira has stopped shopping for the little everyday essentials. Khalil sulks all the time, but fails to find a way to hurt her self respect.

Nadira is privy to Khalil's agenda. The ancient landlord blood in him instinctively reacts sharply to anyone within the fold talking with a head held high in his presence. Khalil had crossed all bounds of decency at the barbeque held at Parvez Ahmed's residence. The gathering was reflecting upon democracy, particularly the shallow democracy in Pakistan. Parvez himself has the same convictions. Things came to a boil when Nadira pronounced India to be the largest democracy in the world. Khalil was seeing blood. Nadira misread the situation and continued "Parvez Bhai correct me if I am wrong. Indian Prime Minister is a Sikh, they have a Muslim President and the leader of the Congress Party is a Christian. Is it possible in any other country in the world?"

Khalil's vitriolic outburst was a study in sarcasm. "You have become a Hindu. Go put *sindoor* in the parting of your hair, a huge *bindiya* on your forehead and convert to Hinduism at the Arya Samaj temple – but remember, I shall divorce you." The party was stunned into silence. Nadira too was stunned. Khalil shall never be able to find words to define the look she threw at him. Not in his whole lifetime. Then Nadira cocked her head to a side, rearranged her hair and pasted the smile on her face. Khalil fumbled, flustered and then sat down in the chair. The death like silence still prevailed other the gathering. Uncomfortable and ashamed, Parvez was looking at Nadira Bhabhi. He was feeling guilty for having started the argument. The sombre silence that engulfed the gathering seemed to be mourning the spirit of the evening.

The same mood permeated into their home. Normally Nadira does not open Khalil's mail. She had paid a heavy price for doing so once. This letter was addressed to Mr and Mrs Khalil Zaidi. She was sure this was an invitation. When she opened the letter she was immensely surprised. She was unable to comprehend the logic behind reserving a space for a grave so much in advance. That too in a far flung place. Has her own home not been reduced to a graveyard? In this home is Khalil himself not the devil incarnate from hell? She was unnerved at the prospect of lying next to Khalil even after death. Will she not find peace even after death?

Peace she had not found during the day either. Pakistani immigrant Aneesa had tried to commit suicide. She was admitted to the Royal General Hospital. She had to visit her and talk to the police too. She had to stop Aneesa from going to her grave. Having reassured Aneesa and done the necessary talking to the police, she munched a Subway sandwich while riding home.

There were noises in the kitchen indicating Abdul, the part-time cook had arrived to prepare

dinner. Khalil's favourite kebabs and lamb chops were being prepared. Since she started practising yoga, Nadira has turned vegetarian. After changing her clothes in the bedroom, Nadira went into the kitchen to oversee the preparations. Abdul has a marked tendency to remain silent and get on with his work. He gives short, cryptic answers when spoken to. A soft, ever present smile is a prominent feature of his personality. As ever he is silently busy with his work. At last Nadira enquired, "I hope your wife and daughter are both well."

"By the grace of Allah both are well Baa Ji" answered Abdul. Silence again. That Abdul has nothing to say often surprises Nadira. In a way it is good. He works for two houses and does not indulge in idle gossip about either.

Khalil has come back from work. These days he returns home tired. He is proud that he has provided all imaginable comforts and facilities for his family. Nadira drives a BMW and his son Irfan a Toyota Sports car. They have a palatial house in the posh Hampstead area. Vast green fields abound around the house and there is a hill in the distance. He has given Nadira a house as beautiful as a picture postcard. He expects her to be ever grateful. Nadira's concept of happiness is totally different. She can be happy in a one room flat-to her a palatial house is no criteria for happiness. If a seven bedroom house has the feel of a haunted graveyard, there is hardly any chance of happiness flickering around it.

"Khalil, how come you have thought of booking our graves? And that too so far away from our residence! It will be quite a cumbersome distance for our dead bodies to be taken to."

"Oh dear, once the casket is in the Rolls Royce what difference does it make whether it is taken to Hampstead or Carpender's Park? It is rather a posh graveyard. Many of my colleagues from the financial sector have opted for it. For sure we will live around the same status people after death."

"Khalil, all your life you have judged people by their wealth, you are not likely to change even after death. After death all bodies are reduced to dust, it hardly matters what name you give it, Abdul, Nadira or Khalil."

"Now Nadira, don't you start. Keep your socialism to yourself. I will not interfere in that and you don't poke your nose in this. I am arranging all this so that our children don't have to be burdened with the cost of the burial responsibilities. All necessities will have been taken care of."

"Go ahead with the arrangements if you want to, but why involve your bourgeoisie principles in this too. There is a graveyard in our area too. We will be buried there. After death it is all the same."

"Try to understand that after death I don't want to be lying next to a cook, a cobbler or a plumber. Najam has also booked the graves there. In fact it was Najam who told me all about it. I want to give you the best not only during your lifetime, but provide the very best for life after death too. There is no satisfaction like the satisfaction of being buried around the people of your class."

"Khalil why opt for the people of your class, why not for your own people? Don't you want to be buried in Pakistan amongst your own people? You should be happy there."

"Don't preach the ridiculous to me. I can see what you are up to. You want me to be buried in Pakistan near my own people, leaving the way clear for you to be buried in India with your own people. You will not succeed with your tricks, I am well aware of your thought process madam."

"For once listen to me Khalil, I shall not be buried in a five-star graveyard. Nor will you be. Do away with this kind of thinking."

"Begam, even the holy Quran has not ordained on any particular kind of graveyard. Only burial is mentioned there."

"This exactly is the problem Khalil. All the three religions with the heavenly books are bent upon reducing this planet earth to a graveyard. If it goes on like this, there will be no space on this earth for the dead of these religions."

"Nadira Ji, you have started posturing like this Hindus. You don't understand a thing. You will even go to the extent of saying Muslims should also be cremated like the Hindus." Whenever Khalil tries to control his temper he affixes Ji to Nadira's name.

"What's wrong with that? It is a neat and clean system. It saves space and the remains become a part of earth."

Unable to score the point khalil wanting to change the subject announces: "I'm hungry. We will discuss the rest tomorrow."

But there are no tomorrows. All turn to today. But Nadira has decided not to bury the topic. She rings up Abida "how are you Abida?"

"Oh dear, it is you Nadira Apa, how are you? You know Aamir Khan has married again. Saif Ali Khan has also divorced his first wife. Bollywood is hot with spicy gossip. Have you seen Sharoukh's Devdas? What a wonderful film!"

"Abdia, you must come out of the dream world of films sometime and face the stark real world. Do you know that Khalil and Najam have booked graves in the Carpender's Park graveyard?"

"How does it bother us? As far as I am concerned they can book four each instead of one. They can live in all four then. After all in real life they are not

comfortable without a seven bedroom house. A couple of yards of a single grave will be too small for them. I have stopped bothering about them now. Just keep a watchful eye. You reckon I don't know how much time Najam has been devoting to Bushra all these four years. Don't say they recite the holy Quran behind closed doors. For the past two years we have been living like a brother and sister. If I were a Hindu, by now I would have tied a *Rakhi* around his wrist."

Nadira was spellbound. It flashed through her mind that for the last five years, she had shared the bed with Khalil, without touching each other. Not only do they dream different, the language of their dreams is different too. On the same bed they are worlds apart. Is Khalil also... anyway it doesn't matter either way. "Abida, I am not talking of personal relationships. I am more concerned socially. Are they doing the right thing?"

"Aapa I am not the least bothered. All this is meaningless to me. How does it matter what graveyard we are buried in once dead? I am not going to ruin my present thinking of it. But if Najam dies before I do, I will bury him in the poorest of poor graveyards. No plaque shall adorn his grave. It will be the grave of an unknown. And if I were to die first who cares what happens afterwards?"

Abida is right, who cares? There are no gains to boast of while I am alive. What have I to show after a full year. Both the men are alive, but their graves are secured. Khalil and Najam are buried deep in their thoughts to start a new business. They have already forgotten the graves once having reserved them.

But the Carpender's Park graveyard has not forgotten them. Yet again there was a letter from them this morning. Because of devaluation of the currency, they had written about the increase in monthly instalments. Nadira's blood pressure had shot up a few degrees. Khalil and Najam are discussing their plans in the drawing room. Najam is the only one in London who can have a drink at Khalil's house. By the same token Khalil is the only one allowed to smoke at Najam's house. Both of them bring their own intoxicants – cigarettes and whisky.

"Khalil Bhai, I shall not do any business in Pakistan. Abida will never agree to go there and then I have to think of Bushra too. On top of it, the whole blasted nation is corrupt. One has to give so much bribe that it coaxes me to give a good hiding to the recipients. The whole set up is corrupt. If we decide to go into business, we must do so in England. Otherwise you go to Karachi and I will proceed to Goa. These days in all my dreams I find myself living in Goa. What a place it is Khalil Bhai, what wonderful people, one feels so safe there!"

"My friend you get tipsy too soon. Before a single move has been made, the Indian in you has come alive. You rascals with that typical Indian mentality, you can never improve. You are all the same under the skin, whatever your religion. You stand no chance."

"You are so broad-minded, why don't you suggest something exceptional?"

"That's what I am doing. Just listen..."

Before he had a chance to finish the sentence, Nadira stormed in and blurted: "Khalil I have asked you so many times to cancel the reservations of these graves. Can't you accede to this little request of mine?"

"*Arre Bhabhi,* has Khalil not mentioned their new brilliant scheme? The salient feature of the scheme entitles the victim of a crash or horrific death by fire burns to an exclusive make-up so that the dead body appears young and beautiful. Now you tell me, is there a woman in the world who would not like to look beautiful and young in death?"

"Now Najam Bhai I forbid you to speak to me. I know you sowed the seeds of this horrible idea in his mind. I will never forgive you. Are you going to ring up here and now Khalil or shall I?"

"Nadira why don'tyou understand, there will be cancellation charges now. Why are yoAu hell bent on causing a loss?"

"Ok then, I will make the call. Whatever the losses, I will compensate."

Angry and furious Nadira dials the number. Cigarette smoke and whisky smell have thickened the hauntingly eerie ambiance. Nadira has successfully established the contact. She is passing on the reference number. Khalil and Najam look helpless.

With final thanks Nadira disconnects the line. "I have found all the details Khalil and asked them to go ahead with the cancellations. And here is the good news, they say you submitted a sum of three hundred and fifty pounds for each grave, that is seven hundred pounds for two graves. Because of the high inflation, the value of the two graves has gone up to eleven hundred pounds. You have made a profit of four hundred pounds." Wide eyed Khalil exclaimed "a four hundred pound profit in just one year!"

He looked at Najam. Najam had the same bright spark in his eyes. They had found a new business!

●

(Translation by Gurcharan Singh from the original *Qabra Ka Munaafa* in Hindi by)

दुनिया चलने का नाम

✦ पंडित सुरेश नीरव

दुनिया रंग-बिरंगी हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठ हस्ताक्षर आलोक सेठी की यात्रा-वृतांतों पर आधारित आज के दौर की एक जरूरी किताब बनकर सामने आई है। वैश्वीकरण के इस दौर में आज शायद ही दूरदराज गांव में बैठा कोई किसी ज्योतिषी से अपनी हथेली में गुम विदेश जाने की लकीरें ढुंढ़वाता हो वरना विदेश यात्राएं अब कोई ठसक की बात नहीं रह गईं हैं। मगर यात्राओं का एक सलीका होता है, एक शऊर होता है जो इन यात्राओं को खास बनाता है। मैं फख्र के साथ कह सकता हूं कि आलोक सेठी को वह सलीका हासिल है। आलोक के लिए पर्यटन एक तीर्थयात्रा है। तीर्थयात्री जब सफर पर चलता है तो वह कभी घर को अपने कंधों पर लादकर नहीं चलता है। घर को घर पर छोड़कर ही वह इस मुकद्दस सफर की शुरूआत करता है। पिंजरे को पंख से बांधकर कौन परिंदा भला उड़ान भर सकता है? तो फिर क्षणिक ही सही एक संक्षिप्त-संन्यास को जो उपलब्ध नहीं हो पाता है, वह इन यात्राओं के मानी कभी समझ ही नहीं पाता है। दुनिया के अक्षांशों और देशांतरों में महज भटकने और थकने के लिए होती हैं उसकी यात्राएं। उसकी यात्राएं महज एक कवायद हैं अपने बॉयोडाटा में विदेश यात्रा का आंकड़ा बढ़ाने की। यात्रा तो गत्यात्मकता का दर्शन है। जिसे वेद चरैवेति-चरैवेति कहते हैं। उपनिषद् जिसे यायावरी कहते हैं। बुद्ध इसे ही प्रवज्या कहते हैं। एक खानाबदोशी फितरत का नाम है सफर। विराटता का संस्कार है यात्रा। यायावरी जिजीविषा के लिए यात्रा ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़े चेतना के चरण हैं। जहां होशपूर्वक पर्यटक अपने अहसास के परिवेश को सिर्फ देखता नहीं है, बल्कि उसका सूक्ष्म निरीक्षण करता है। वह पूरे परिवेश को इतनी शिद्दत से अपने भीतर उतारता है कि ये परिवेश मांस-मज्जा बनकर उसकी धमनियों और शिराओं में दौड़धूप करने लगता है। ये पर्यटन उसमें एक नया बोध जगाता है। दुनिया की भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की खुशबू उसकी शख्सियत का अभिन्न अंग बनकर, उसकी सोच को एक नए सांचे में ढाल देती है। लोकल से ग्लोबल हो रही इस सोच की खुशबू फिर लफ्जों के जरिए, दूर-दूर तक फैलकर अपने दोस्तों और पाठकों को मुदित-प्रमुदित करती है। वह अनायास ही वसुधैव कुटुंबकम् का सदस्य हो जाता है। सारी दुनिया एक कुनबा होकर उसकी सोच में रहने लगती है। सोच का यह आलोक ही (प्रकाश) मनुष्य को सेठी (श्रेष्ठी) बना देता है। सफर के संदर्भ में सचमुच आलोक सेठी आलोक सेठी ही हैं। जो कुछ भी हममें होकर भी हमसे बाहर है और जो बाहर होकर भी हमारे भीतर है, उस बहिरंतर यात्रा की बेशकीमती मिसाल हैं आलोक सेठी। दुनिया की जितनी लंबी यात्रा का रोमांच उनके बाहर है तजुर्बों की उतनी गहरी यात्रा उनके भीतर है। किताब की शक्ल में बहिरंतर यात्रा का प्रामाणिक दस्तावेज है ये-दुनिया रंग-बिरंगी। शब्दों के इस सफर में दुनिया का पूरा सफर ऐसे रह रहा है जैसे कि बीज में वृक्ष रहता है, फूलों में खुशबू रहती है और आंखों में सपने रहते हैं। ये किताब बड़े ही दिलचस्प अंदाज में पढ़नेवाले को अट्ठारह देशों की सार्थक सैर कराती है...एक ऐसी सैर जिसे पढ़कर परम सत्ता और प्रकृति दोनों के प्रति मन में अहो भाव जागता है। पर्यटन संबंधी नोट्स और परदेस-कुछ जरूरी बातें इस पुस्तक की उपयोगिता को और बढ़ा देती हैं। शायरमिजाज आलोक सेठी का लिखा हरेक यात्रा-संस्मरण पाठक को किसी देश विशेष की मानसिक यात्रा पर ले जानेवाला पासपोर्ट है। जितने खूबसूरत लेख हैं, पुस्तक भी उतनी ही खूबसूरत अंदाज में छापी गई है। इसे ही कहते हैं मणि-कंचन योग। हर लेख हमें सफर संबंधी कुछ-न-कुछ अनमोल तो सिखाता ही है एक भरोसेमंद सफर का आमंत्रण भी देता है। बस एक बार पढ़ तो लें...।

दुनिया रंग-बिरंगी (यात्रा संस्मरण) – लेखक : आलोक सेठी, **प्रकाशक :** क्वालिटी पब्लिशिंग कंपनी, **पता :** 04, आराधना नगर, भोपाल, **मूल्य :** 400 रुपये। ●

विश्व हिंदी दिवस 2014 — विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस

✦ गुलशन सुखलाल, मॉरीशस

औपचारिक समारोह

विश्व हिंदी सचिवालय ने 10 जनवरी को मॉरीशस के शिक्षा व मानव संसाधन मंत्रालय तथा भारतीय उच्चायोग मॉरीशस के संयुक्त तत्वावधान में विश्व हिंदी दिवस का भव्य आयोजन किया।

मॉरीशस के फेनिक्स स्थित इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के सभागार में आयोजित समारोह की गरिमा बढ़ाने मुख्य अतिथि के रूप में मॉरीशस गणराज्य के राष्ट्रपति, महामहिम श्री राजकेश्वर प्रयाग उपस्थित हुए। ऐसे सुनहरे अवसर पर उपस्थित हिंदी प्रेमियों की सूची में शिक्षा व मानव संसाधन मंत्री, माननीय डॉ. वसंत कुमार बनवारी; कार्यवाहक भारतीय उच्चायुक्त, महामहिम श्री अशोक कुमार; कला व संस्कृति मंत्री, माननीय मुखेश्वर चुनी; सचिवालय की शासी परिषद के सदस्य, श्री अजामिल माताबदल व अन्य महानुभाव भी हैं।

सभी अतिथियों का स्वागत करते हुए सचिवालय के कार्यवाहक महासचिव, श्री गंगाधरसिंह गुलशन सुखलाल ने विशेष रूप से 2013 की उपलब्धियों का ब्यौरा दिया तथा 2014 की योजनाएँ प्रस्तुत कीं। श्री सुखलाल ने विशेष रूप से सचिवालय की इस गतिविधि के लिए सभी सहयोगी संस्थाओं के प्रति आभार प्रकट किया तथा सचिवालय द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय कविता प्रतियोगिता के विजेताओं की भी घोषणा की।

इस उपलक्ष्य पर सचिवालय के आमंत्रण पर तोक्यो यूनिवर्सिटी ऑफ फॉरेन स्टडीज़, जापान से प्रो. ताकेशि फुजिइ ने मॉरीशस की यात्रा तय की। इस अवसर पर प्रो. फुजिइ का बीज वक्तव्य ''जापान में हिंदी भाषा और साहित्य का अध्ययन-अध्यापन: इतिहास, उपलब्धियाँ व स्मृतियाँ'' पर आधारित रहा, जिसे समारोह में उपस्थित सभी अतिथियों ने खूब सराहा।

कार्यवाहक भारतीय उच्चायुक्त महामहिम श्री अशोक कुमार ने विश्व हिंदी दिवस 2014 के उपलक्ष्य में भारत के महामहिम प्रधानमंत्री का संदेश पढ़कर सुनाया। तत्पश्चात महामहिम ने अपने उद्‌गार में सचिवालय की गतिविधियों व योजनाओं में भारत सरकार के निरंतर सहयोग का विश्वास दिलाया।

माननीय डॉ. वसंत कुमार बनवारी ने विश्व हिंदी सचिवालय के कार्यों तथा गतिविधियों व आयोजनों की सराहना करते हुए शिक्षा व मानव संसाधन मंत्रालय के सहयोग का विश्वास दिलाया। माननीय मंत्री जी ने मॉरीशस में शिक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए प्रौद्योगिकी की बात की जिसमें उन्हें सचिवालय तथा शिक्षा व मानव संसाधन मंत्रालय के संयुक्त प्रयासों का उल्लेख किया। वे कहते हैं : ''हमारी सरकार चाहती है कि देश में सभी विषयों के शिक्षण को आधुनिक बनाया जाए और मुझे खुशी है कि जहाँ तक हिंदी भाषा का सवाल है, मंत्रालय और सचिवालय एक साथ मिलकर उसके भविष्य का रास्ता दिखा रहे हैं।''

महामहिम श्री राजकेश्वर प्रयाग ने मॉरीशस के इतिहास में गढे हिंदी के संघर्ष की बात करते हुए नई पीढ़ी को हिंदी के पठन-पाठन की ओर अग्रसर होने का प्रोत्साहन दिया–''आपको अपने बच्चों को बताना होगा कि उनकी हिंदी ने इस देश का कितना मान बढ़ाया है. ..तब जाकर उनके मन में अपनी भाषा के लिए प्रेम बढ़ेगा।''

हिंदी की समृद्धि को रेखांकित करते हुए महामहिम जी कहते हैं : ''जो हिंदी नई टैक्नोलॉजी के साथ जुड़ी हुई एक आधुनिक भाषा बन रही है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण भाषा बन रही है...वहीं हिंदी अपने साहित्य में, अपने शब्दों में, अपने इतिहास में हमारी संस्कृति के मूल्य भी लिए हुए है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे पास ऐसी भाषा है जो परंपराओं के साथ-साथ नयेपन को भी जोड़ सकती है।

पुरस्कार वितरण : भारतीय उच्चायोग द्वारा आयोजित प्रतियोगिता

समारोह के दौरान हिंदी दिवस 2013 के उपलक्ष्य में भारतीय उच्चायोग द्वारा आयोजित निबंध व काव्य-पाठ प्रतियोगिता के विजेताओं को पुरस्कृत भी किया गया। यह पुरस्कार विश्व हिंदी सचिवालय द्वारा प्रायोजित किया गया तथा महामहिम राष्ट्रपति, माननीय शिक्षा मंत्री तथा महामहिम कार्यवाहक भारतीय उच्चायुक्त द्वारा भेंट किया गया।

अंतरराष्ट्रीय हिंदी कविता प्रतियोगिता

विश्व हिंदी दिवस 2014 के उपलक्ष्य में सचिवालय ने वर्ष 2013 में एक अंतरराष्ट्रीय हिंदी कविता प्रतियोगिता का आयोजन किया था। इस प्रतियोगिता को पांच भौगोलिक क्षेत्रों में बांटा गया था–1. अफ्रीका व मध्य पूर्व, 2. अमेरिका, 3. एशिया व ऑस्ट्रेलिया (भारत के अतिरिक्त), 4. यूरोप, 5. भारत। प्रत्येक क्षेत्र से बड़ी संख्या में लोगों ने प्रतियोगिता में भाग लिया।

लोकार्पण : विश्व हिंदी पत्रिका का 5वां अंक

इस वर्ष सचिवालय ने अपने वार्षिक प्रकाशन विश्व हिंदी पत्रिका के पाँचवें अंक के मुद्रित व वेबप्रारूपों का लोकार्पण किया। इस अंक में विभिन्न देशों से प्राप्त 41 लेख प्रस्तुत किए गए हैं। इस वर्ष की पत्रिका की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इस पत्रिका को प्रसिद्ध, वरिष्ठ, स्थापित मॉरीशसीय साहित्यकार श्री अभिमन्यु अनत को समर्पित किया गया तथा विशेष भाग हिंदी तथा सूचना-संचार प्रौद्योगिकी पर आधारित है। यह अंक सचिवालय की वेबसाइट www-vishwahindi-com पर उपलब्ध है।

सांस्कृतिक कार्यक्रम

श्री शेखर सेन द्वारा स्वामी विवेकानंद के जीवन पर एकपात्रीय नाटक का मंचन।

इस वर्ष के विश्व हिंदी दिवस की एक बार फिर अलग विशेषता रही, उसका सांस्कृतिक कार्यक्रम। इस बार विश्व हिंदी दिवस के अतिथियों को प्रसिद्ध भारतीय नाटककार व अभिनेता, श्री शेखर सेन द्वारा स्वामी विवेकानंद के जीवन पर एकपात्रीय नाटक देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

विवेकानन्द नाटक भारत और विदेश में दो सौ से अधिक प्रस्तुतियों के बाद मॉरीशस के हिंदी प्रेमियों के लिए मंचित हुआ। कहानी है 150 वर्ष पूर्व जन्मे उस महान विद्रोही संत के जीवन की जिन्होंने स्वामी कृष्णानन्द से भेंट के बाद भारतीय दर्शन को विश्व भर में फैलाया और शिकागो के अपने ऐतिहासिक भाषण से लेकर आज तक, आज भी भारतीय मनीष व दर्शन के प्रतीक रूप में पहचाने जाते हैं।

यह प्रस्तुति समारोह में उपस्थित अतिथियों व मीडिया द्वारा अत्यंत सराही गई।

इंदिरा गांधी भारतीय सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक, श्री संजय शर्मा; सांस्कृतिक कार्यक्रम के प्रायोजक, अजंता फार्मा के निदेशक श्री मजूमदार; महात्मा गांधी संस्थान के निदेशक श्री बिजय मधु; कला व संस्कृति मंत्रालय के स्थायी सचिव, श्री चेतनदेव भगत व प्रमुख संस्कृति अधिकारी, सुश्री अनुपमा चमन भारतीय उच्चायोग के द्वितीय सचिव (शिक्षा व भाषा) मीमांसक; श्री शांतनु मुखर्जी; हिंदी संगठन, हिंदी प्रचारिणी सभा, आर्य सभा मॉरीशस, मॉरीशस सनातन पुरोहित मंडल, हिंदी लेखक संघ आदि धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा भाषा प्रचारक संस्थाओं के प्रतिनिधि व सदस्य मॉरीशस के वरिष्ठ हिंदी साहित्यकारों व हिंदी छात्रों तथा आम जनता ने अपनी उपस्थिति से समारोह की शोभा बढ़ाई।

मंच संचालन श्री विनय गुदारी तथा श्री अरविंद बिसेसर ने किया।

(विश्व हिंदी सचिवालय की रिपोर्ट)

●

उद्‌भव सांस्कृतिक सम्मान समारोह 2013

✦ शिव सचदेवा

विगत दिनों 19 दिसंबर, 2013 को भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के आज़ाद भवन सभागार में उद्‌भव तथा कवितायन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संस्था द्वारा साहित्य, कला, संस्कृति, शिक्षा, पत्रकारिता, कानून तथा चिकित्सा आदि विभिन्न क्षेत्रों की प्रगति में योगदान देने वाले प्रखर व्यक्तित्वों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु उद्‌भव सांस्कृतिक सम्मान समारोह 2013 का भव्य आयोजन किया।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए सुप्रसिद्ध विचारक, चिंतक एवं वरिष्ठ पत्रकार पद्मश्री आलोक मेहता ने कहा कि यह समारोह कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। देश के विभिन्न भागों से पधारे व्यक्तित्वों की सफलताओं को उत्सव रूप में मनाना एक अच्छी परंपरा है, इससे समाज में सकारात्मक तथा रचनात्मक ऊर्जा का संचार होता है। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ राजनीतिज्ञ एवं समाजसेवी हारुन यूसुफ ने की। समारोह में विशिष्ट अतिथि थे कवि-पत्रकार बी.एल. गौड़, सर्वोच्च न्यायालय बार एसोसिएशन के उपाध्यक्ष वरिष्ठ अधिवक्ता वी. शेखर, सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् अशोक पांडेय, बालभवन पब्लिक स्कूल मयूर विहार फेज-2 के प्राचार्य बी.बी. गुप्ता तथा सजग समाचार के संपादक शिव सचदेवा। सुप्रसिद्ध साहित्यकार, कवि एवं उद्‌भव संस्था के महासचिव डॉ. विवेक गौतम के संयोजन-संचालन में सम्पन्न हुए इस आयोजन में आये हुए सभी अतिथियों का स्वागत आंचलिक कथाकार डॉ. अरुण प्रकाश ढौंडियाल ने किया। समारोह में उद्‌भव शिखर सम्मान से सम्मानित हुए व्यक्तित्व थे साइबर लॉ के वरिष्ठ अधिवक्ता पवन दुग्गल, दूरदर्शन के सहायक केंद्र निदेशक, एस.के.एस. त्रिपाठी, नई धारा के संपादक प्रो. शिवनारायण (पटना), महादेव जगन्नाथ जानकर (मुंबई), डॉ. एल. तोमर (अस्थि रोग विशेषज्ञ) तथा बाबा साहेब कोकाटे (महाराष्ट्र)। इस अवसर पर उद्‌भव विशिष्ट सम्मान मो. आसेफ़ोद्दीन खतीबजी (महाराष्ट्र), अशोक जाजोरिया (उप-संपादक गगनांचल), आचार्य यादकुमार वर्मा (दिल्ली), अल्ताफ़ अहमद (चेन्नई), जगदीश राज मल्होत्रा (दिल्ली) तथा डॉ. कार्तिकेय भार्गव (गुड़गांव) को दिया गया। समारोह में उद्‌भव मानव सेवा सम्मान से जिन्हें अलकृंत किया गया उनमें शांति प्रसाद जैन (दिल्ली) राजन पाराशर (हरियाणा), डॉ. करुणा पांडेय (बरेली), राम प्रसाद बाबू राव घोडके (महाराष्ट्र), डॉ. भवानी सिंह (शिमला), शिवी रस्तोगी (दिल्ली), हरीश वत्स (दिल्ली), जी. एस. कपूर (दिल्ली), शिवचरण सिंह 'पिपिल' (उत्तर प्रदेश), अमित शर्मा (दिल्ली) और कुणाल गुप्ता (दिल्ली) थे। धन्यवाद ज्ञापन पं. हरिराम द्विवेदी ने किया। इस अवसर पर गणमान्य लोगों में साहित्यकार-कलाकार संगीता गुप्ता, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी, कवितायन के महासचिव अधिवक्ता चंद्रशेखर आश्री, प्रो. लल्लन प्रसाद, अंतरराष्ट्रीय पत्रिका 'प्रवासी संसार' के संपादक राकेश पांडेय, ममता किरण, अनिल वर्मा 'मीत', डॉ. बी.एन. सिंह, पत्रकार एस.के. शर्मा, सी.पी.एस. वर्मा, आभा चौधरी, रवि कुमार शर्मा, शोभना मित्तल, आलोक उनियाल, दिनेश सोनी मंज़र, अनंत प्रचेता, बी.के. शर्मा, सीए अनिल गुप्ता, ओमप्रकाश गुगरवाल, विरेंद्र सैनी, अभिनव वत्स तथा वैभव वत्स प्रमुख थे।

●

भारतीय जीवन मूल्यों को अपनायें युवा — महेन्द्र चौधरी

✦ गोपाल अरोड़ा

12वें प्रवासी भारतीय दिवस के अवसर पर दिल्ली आये हुये युवा प्रवासियों को संबोधित करते हुये फिजी के पूर्व प्रधानमंत्री श्री महेन्द्र चौधरी जी ने कहा कि 'स्वयं को भारतवंशी कहलाना ही पर्याप्त नहीं है, जरूरी है कि पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्र में हम भारतीय मूल्य पद्धति का अनुसरण करें।'

श्री महेन्द्र चौधरी ने युवा सशक्तीकरण की बात करते हुये, युवाओं को राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने की बात कही। दरिद्रता को मानवता पर एक अभिशाप बताते हुये उन्होंने कहा कि गरीबी उन्मूलन के क्षेत्र में समाज के सभी वर्गों को मिलकर काम करना चाहिये।

फिजी के राजदूत श्री योगश जे. करण जी ने कहा कि यह एक सुखद संयोग है कि इस कार्यक्रम का आयोजन विश्व हिन्दी दिवस पर हो रहा है। उन्होंने कहा कि भारतवंशियों के कार्यक्रम में हिन्दी का प्रयोग अधिकाधिक होना चाहिये। उन्होंने यह भी बताया कि फिजी के स्कूलों में हिन्दी की पढ़ाई अनिवार्य कर दी गई है।

भारत सरकार के प्रवासी भारतीय मंत्रालय में निदेशक के पद पर कार्यरत श्री नौएल थॉमस ने 'भारत को जानो' कार्यक्रम के बारे में विस्तार से जानकारी दी।

जीवन में अध्यात्म के महत्त्व का उल्लेख करते हुये जब उन्होंने संत कबीर का भजन 'आया था किस काम को, तू सोया चादर तान' गाया, तो सभागार में उपस्थित सभी लोग झूम उठे।

इस कार्यक्रम का आयोजन अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद के तत्वावधान में पं० दीनदयाल उपाध्याय मार्ग के प्रवासी भवन के सभागार में 10 जनवरी, 2014 को संपन्न हुआ।

युवा प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुये भारत के पूर्व विदेश सचिव श्री जे. सी. शर्मा जी ने कहा कि छात्र जीवन के दौरान बना बन्धुत्व नि:स्वार्थ और स्थायी होता है। मॉरीशस के राजदूत श्री आर्य कुमार जगेसर जी ने कहा कि सूचनाक्रांति के विस्तार से युवाओं में परस्पर संवाद बढ़ा है, जो बहुत अच्छी बात है।

भारत के पूर्व विदेश सचिव और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद के अध्यक्ष श्री शशांक जी ने बताया कि परिषद 1978 से निरन्तर प्रवासियों के हित में कार्य कर रही है। उन्होंने कहा कि राष्ट्र निर्माण के क्षेत्र में युवाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। इस कार्यक्रम का सुरुचिपूर्ण संचालन प्रोफेसर गोपाल अरोड़ा ने किया और विख्यात समाजसेवी एवं परिषद के महासचिव श्री श्याम परांडे जी ने धन्यवाद ज्ञापन दिया।

कार्यक्रम में युवा प्रवासियों के अतिरिक्त दिल्ली विश्व विद्यालय के युवा विद्यार्थियों ने कार्यक्रम का भरपूर आनंद लिया और उनकी तालियों की करतल ध्वनियों से कार्यक्रम जीवंत हो उठा।

●